UNIVERSAL LIBRARY
OU_182177
UNIVERSAL LIBRARY

**OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY**

Call No. H 83.1 B74P Accession No. H3583

Author बोस, राजशेखर

Title प्रतिनिधि रचनाएँ १९६३

This book should be returned on or before the date last marked below.

'परशुराम'

[ बाङ्ला व्यंग्य कथा सम्राट् ]

# प्रतिनिधि रचनाएँ

भाषान्तरकर्ता

प्रबोधकुमार मजूमदार

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला : २
ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थाङ्क-१७०
सम्पादक-नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Checked 1969

Pratinidhi Rachanayen
'PARASHURAM'
[Satirical Stories & Personal Essays]
BHARATIYA JNANAPITH PUBLICATION
First Edition 1963
Price Rs. 3.00

---

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय
भारतीय ज्ञानपीठ, ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय एवं विज्ञापन केन्द्र
भारतीय ज्ञानपीठ, ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी
प्रथम संस्करण १९६३
मूल्य तीन रुपये

# राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला

भारतीय ज्ञानपीठके समस्त प्रकाशनोंसे और संस्थाकी गति-विधिसे जो पाठक परिचित हैं वे जानते हैं कि ज्ञानपीठने हिन्दी-प्रकाशनके क्षेत्रमें एक व्यापक साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणको निष्ठापूर्वक अपनाया है।

पालीमें 'जातकट्ठ कथा', तमिलमें 'थिरुकुरल', हिन्दीमें 'वैदिक साहित्य' और नागरी लिपिमें उर्दूके समूचे संकलनीय काव्य-साहित्यको प्रस्तुत करनेके मूलमें देशकी सांस्कृतिक उपलब्धिको समग्र और अखण्ड रूपसे जानने-माननेकी दृष्टि है।

अब 'लोकोदय ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत 'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' की योजना इस दिशामें ज्ञानपीठका अगला पग है। इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत ज्ञानपीठकी योजना है कि भारतीय भाषाओंमें लिखनेवाले सभी प्रमुख साहित्यकारोंकी रचनाओंके अलग-अलग ऐसे संकलन प्रकाशित किये जायें जिनमें स्वयं लेखकोंके द्वारा चुनी हुई उनकी विविध शैली-शिल्पोंमें लिखी सर्जनात्मक साहित्यकी प्रतिनिधि रचनाएँ हिन्दी अनुवादके रूपमें संग्रहीत हों। प्रसन्नताकी बात है कि इस योजनाके लिए भारतके सभी मूर्धन्य साहित्यकारोंका सहयोग ज्ञानपीठको प्राप्त हुआ है।

'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' के माध्यमसे देशके साहित्यकार स्वयं तो एक मंचपर आयेंगे ही, पाठकोंको विशेष लाभ यह होगा कि सभी ख्याति-प्राप्त लेखकोंकी बहुमुखी साहित्यिक प्रतिभासे परिचित होंगे, और कुछ अनुमान लगा पायेंगे कि हमारे देशमें समसामयिक साहित्यका स्वर क्या है, स्तर क्या है, उपलब्धि क्या है; और यह कि देशके साहित्य-

समीक्षक इस प्रकारकी रचनाओंको विश्व-साहित्यकी समान शैली-शिल्प-वाली रचनाओंकी तुलनामें क्या स्थान देते हैं, या कमसे-कम यह कि भारतीय भाषाओंमें इस प्रकारके साहित्यका तुलनात्मक मूल्यांकन क्या जानकारी प्रस्तुत करता है।

किन्तु किसी निष्कर्षपर पहुँचनेसे पहले पाठकों और समीक्षकोंको यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि इस प्रकारके स्फुट संकलनोंके आधार-पर तुलनात्मक मूल्यांकनकी अपना सीमाएँ हैं।

'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' का एक पक्ष यह भी है कि जो हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और अन्ततोगत्वा जिसे इस रूपमें देशमें सभी प्रकारसे समादृत होना है, उसका साहित्य-कोष इस प्रयत्न-द्वारा समृद्ध हो। हमारी भावना है कि इसे हिन्दीकी ओरसे अन्य सहोदरी भारतीय भाषाओंका अभिनन्दन-आयोजन भी माना जाये।

'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' के माध्यमसे अनुवादके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षोंपर विचार करनेका अवसर भी पाठकों और समीक्षकोंको मिलेगा। यह स्वयं एक राष्ट्रीय उपलब्धि होगी। इसका अर्थ यह कि अनुवादके रूप और प्रकृतिके सम्बन्धमें हम कोई विशेष आग्रह लेकर नहीं चले – केवल इतना ही कि मूलका भाव सुरक्षित रहे और अनुवाद सुबोध हो। मुहावरों, शब्द-बन्धों और भाषा-प्रयोगोंके क्षेत्रमें हिन्दीको अन्य भारतीय भाषाओंसे कुछ लेना है, लेना चाहिए, इस दृष्टिकोणको सामने रखनेके परिणाम-स्वरूप अनुवादमें यदि कहीं कुछ अप्रचलित या अटपटा-सा लगे तो वह इस दृष्टिसे विचारणीय है कि इसमें क्या ग्राह्य है क्या अग्राह्य। निर्णय भाषाविद् दें – विशेषकर वे जिनकी मातृभाषा वही है जो मूल लेखककी और साथ ही जो हिन्दीको राष्ट्र-भाषाके रूपमें समृद्ध करनेकी क्षमता रखते हैं।

सुविख्यात बाङ्ला-लेखक 'परशुराम', वास्तविक नाम श्री राजशेखर बोस, का यह प्रतिनिधि रचना-संकलन 'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' के

अन्तर्गत प्रकाशित हो रहा है, यह भारतीय ज्ञानपीठके लिए प्रसन्नता और गौरवका विषय है। पुस्तकमें संकलित रचनाएँ सब लेखकने स्वयं ही छाँटी थीं, और सम्भवतः उनका अपने हाथोंका किया हुआ यही अन्तिम संकलन है। इसमें उनकी कुछ चुनी-चुनी व्यंग्य कथाएँ भी सम्मिलित हैं और कुछ उसी स्वर-भावके निबन्ध भी!

यह संयोगकी बात है कि इस ग्रन्थमालामें श्री नार्लका संग्रह पहले आया। इसे मात्र मुद्रण-क्रमकी बात माना जाये। जिन अन्य साहित्यिकोंकी कृतियाँ इस ग्रन्थमालामें आयोजित हैं वे सब मूर्धन्य लेखक हैं। साहित्यमें किसका क्रम कहाँ हैं, यह निश्चित करना समीक्षकोंका काम है।

भारतीय भाषाओंमें साहित्यिक कृतित्वकी श्रेष्ठताका प्रश्न भारतीय साहित्यके मानदण्डका प्रश्न है। उसके लिए भारतीय ज्ञानपीठकी एक अलग योजना है जिसके अनुसार प्रतिवर्ष भारतीय साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ कृतिको एक लाख रुपयेके पुरस्कार-द्वारा सम्मानित किया जायेगा। कृतिकारके प्रति कृतज्ञता ज्ञापनार्थ।

२४ अप्रैल, १९६३

—लक्ष्मीचन्द्र जैन
*सम्पादक*

'परशुराम'
[ श्री राजशेखर बोस ]

# श्री परशुराम

बायरनके बारेमे किसीने कहा था, 'ही वोक वॅन मॉर्निङ् ऐण्ड फ़ाउण्ड हिमसेल्फ़ फेमस', परशुरामके सम्बन्धमे भी यही बात निस्सन्देह कही जा सकती है। बयालीस वर्षकी उम्रमे सन् १९२२ मे उनकी पहली कहानी 'श्री श्री सिद्देश्वरी लिमिटेड' बाङ्ला मासिक 'प्रवासी'मे प्रकाशित हुई; और वही 'क्लैसिक' बन गयी। इस पहली रचनाने ही उन्हे साहित्य-संसारके विशिष्ट लोगोंकी पंक्तिमे ला खडा किया। इसी सन्दर्भमे एक अजूबी बात और – वह यह कि उन्हे अपने नामको प्रचारित करनेकी तनिक भी स्पृहा नही थी। अच्छा-भला-सा नाम था उनका – श्री राजशेखर बोस। पर अपना सारा साहित्यिक काम उन्होने परशुरामके नामसे किया।

....तो १६ मार्च सन् १८८० को परशुरामका जन्म बर्दमान जिलेके बामुनपाडा गाँवमे मामाके घर हुआ था। पिता सरकारी मुलाजिम थे। जाहिर है कि तबादलेपर उन्हे यत्र-तत्र जाना पड़ता था। परशुरामको भी उनके साथ-साथ मुँगेर, खड़गपुर, दरभंगा और पटना जाना पडा और इन्ही सब स्थानोंपर उनका बचपन बीता। धीरे-धीरे, हर किशोरकी तरह, उनके सुख-चैनके दिनोंपर धुएंकी मोटी चादर फैलती गयी और एक दिन उन्होने सर्वथा नये धरातलपर पैर रखा: सन् १८९५ में दरभंगाके राजकोय विद्यालयसे हाई स्कूलकी परीक्षा उत्तीर्ण की और बादमे पटनासे इण्टरमीडिएट। सन् १८९७मे उच्च शिक्षाके लिए कलकत्ता चले आये। वहीं सन् १९०३ मे प्रेसीडेन्सी कॉलेजसे उन्होने रसायनशास्त्रमे प्रथम श्रेणीमे एम. एस-सी. किया। इसी बीच परशुरामका विवाह हुआ था और आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायसे प्रथम परिचय भी। यद्यपि आचार्य जगदीश-

चन्द्र वसुके सम्पर्कमे इससे पहले ही आ चुके थे किन्तु सर्वाधिक स्नेह मिला उन्हें प्रफुल्लचन्द्रजीसे ही।

सन् १९०३ मे परशुरामने 'बंगाल केमिकल' मे प्रबन्धकका पद स्वीकारा। अपनी प्रतिभा एवं निष्ठाके बलपर बंगाल केमिकलकी जो सेवाएँ उन्होंने की, उसका प्रतिफल भी तत्काल ही दिखा था।

अत्यन्त संयमी, मितभाषी, गम्भीर और एकान्त-प्रिय व्यक्ति थे परशुराम। जीवनमे उनका सम्पर्क इने-गिने लोगोसे रहा। कुछ अति निकटके मित्रों और कार्यालयसे सम्बन्धित व्यक्तियोंके अतिरिक्त उनका व्यक्तिगत जीवन प्रायः सम्पर्क-शून्य-सा था। सन्तानके नामपर एक पुत्री थी, जिसका विवाह उन्होंने बड़ी धूम-धामसे किया था। किन्तु दुर्दैव! कुछ ही दिनों बाद पुत्री और दामाद दोनोंकी एक साथ कुछ ही घण्टोके अन्तरसे मृत्यु हो गयी। दोनोंकी चिता एक साथ सजायी गयी थी और परशुरामने इसे भी देखा था धीर, अकुण्ठित और संयमी रहकर। पीड़ा अवश्य हूली होगी, पर परशुराम उसे भी चुपचाप पी, पचा गये। कोई देख-जान भी न पाया! उनके साहित्यमे भी यह सब बिलकुल साफ झलकता है: अपनी आन्तरिक यन्त्रणाको परशुरामने कभी किसीके सामने व्यक्त नहीं किया और न तो कथाके माध्यमसे ही उसे वाणी दी।

साहित्यकार-जीवन परशुरामको विरासतमे मिला। पिता चन्द्रशेखर साहित्य और दर्शनमे रुचि रखते थे। उनके लिखे 'वेदान्त-प्रवेश', 'सृष्टि', 'वेदान्त हानि', 'प्रलयतत्त्व' आदि अपने समयके विख्यात ग्रन्थ रहे। और इस सबका परशुरामके मनपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। और यह प्रभाव-बीज अँखुवाया और सहसा ही छतनार हुआ उनके 'बंगाल केमिकल' मे रहते। उनके कर्मी-जीवनका संघर्ष कही भी साहित्य-जीवनसे नहीं हुआ। 'बंगाल केमिकल'का गुरु दायित्व ग्रहण करते हुए भी उन्होंने बहुत सफल रचनाओं-द्वारा अपनेको उजागर किया। अबतक परशुरामके नौ कथा-संग्रहोंके अतिरिक्त अनेक कृतियाँ प्रकाशमें आ चुकी हैं, जिनमें

निबन्ध-संग्रह, अनुवादित कृतियाँ और शब्द-कोश है। परशुराम-द्वारा किये गये महाभारत, रामायण और मेघदूतके सटिप्पण अनुवाद बाङ्ला साहित्यमे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जाते है।

कथाकारके रूपमे तो परशुरामकी उपलब्धि इतनी ठोस, जनप्रिय, गम्भीर और व्यापक है कि उसे देखकर सहज ही आश्चर्य होता है। उनकी कहानियाँ इतने विविध क्षेत्रोके अनुभव, व्यक्तिमानसकी इतनी गूढ और सूक्ष्म जटिलताओंको खोलकर सामने रख देती हैं कि महसा लगता है, कथाकार अपने सभी चरित्रोंके संग-संग चौबीसो घण्टे घूमा है। जीवनके हर पहलूका ज्ञान, उनके प्रति सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टिबोध, मानव-चरित्रोंकी दुर्बलताओके प्रति विद्वेषहीन हास्य और उनकी आलोचना परशुरामकी कहानियोंमे सब कही उपलब्ध है। ऐसा भी लगता है कि जीवन और व्यक्ति-मनके विश्लेषणके प्रति सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टिबोध उपलब्ध करनेके बाद ही एक लम्बी उम्रके बीत जानेपर परशुरामने कहानी लिखना प्रारम्भ किया। जिस प्रकारका तटस्थ, संयमित, सहानुभूतिपूर्ण और यथार्थ चित्रण उनकी कहानियोमे सहज ही मिलता है, वह किसी साधारण कलाकारके बूतेकी बात नही। जीवनके अनेक छिपे हुए स्तरोंका – ऐसे स्तर जिनके बारेमे हम कभी सोच भी नही पाते, जिनके अस्तित्वका पता भी हमे नही रहता – उद्घाटन परशुरामने किया है।

असलमे परशुरामका क्षेत्र था हास्य और गहरे चुभते हुए व्यंग्यका। सम्भव है, इस हास्य और तीखे व्यंग्यको ही अपनी कहानियोंमे प्रस्तुत करनेका कारण उनके अपने आन्तरिक दुःख-बोध और गाम्भीर्यका रेचन हो। बात जो भी हो, पर सच यह है कि हास्य-रसात्मक चरित्रोंके चुनावमे परशुरामने बड़ी दूरदर्शितासे काम लिया है। उनका यथार्थबोध, जीवन और समाजके प्रति गहन दायित्व और सूक्ष्म विश्लेषण – ये सब कही छूटते नही और इन्हीके बीचसे उनका कलाकार अपनी तटस्थ दृष्टि अंकित कर देता है। इसके लिए उन्होंने ऐसे चरित्र लिये है जो साधारण

सामाजिक दृष्टिमें ऊपरसे सम्मानित और नॉर्मल हैं, जैसे डॉक्टर, क्लर्क, राजनैतिक नेता, समाज-सुधारक, व्यापारी आदि, किन्तु जो अन्दरसे खोखले, टूटे हुए, घूसखोर, दुर्बल, जुआरी या दीनहीन है। यही विशेषताएँ हैं जो परशुरामको भारतीय भाषाओंके अन्य हास्य-प्रधान कहानीकारोंसे अलग करती है। मनुष्यके चरित्र परिवेश और स्थितिको जिस रूपमे उन्होंने देखा, ठीक उसी रूपमे उतनी ही तीव्रता और गहराईके साथ अपनी कलमसे उकेर भी दिया है। यही कारण है कि उनका हास्य-व्यंग्य महज छूता ही नहीं, कोंचता और झकझोर देता है।

अपनी कहानियोके कारण परशुराम एक शाश्वत कलाकारके रूपमे माने जाते है। इसका कारण है कि उनके तपोनिष्ठ, ऋजु और सत्यवादी मनोविश्लेषण एवं आस्थाकी शक्तिने इतने लोकप्रिय और पूर्ण कलाकारके रूपमे ही उन्हे प्रतिष्ठित किया। मनुष्यके स्वभाव, आशा, आकाक्षा, नैराश्य, दु:ख और सुख, सबसे उनकी गाढी आत्मीयता थी।

प्रस्तुत कृति परशुरामकी कहानियो और निबन्धोका संकलन है। इनके माध्यमसे परशुरामने मानव-मनकी कोमलतम परतोंको छुआ है। पारिवारिक और सामाजिक जीवनके विशद धरातलपर रची गयीं ये कहानियाँ सामाजिक अव्यवस्था और खण्डित जीवन सन्दर्भोके किसी-न-किसी जलते प्रश्नपर प्रकाश डालती है।

परशुराम लोकप्रियताके उस शिखरपर पहुँचे है जहाँ सबका पहुँच पाना दुर्लभ नही तो कठिन अवश्य है। सन १९५५मे बाङ्ला कथा-साहित्यके सर्वश्रेष्ठ लेखकके रूपमें उन्हे 'रवीन्द्र पुरस्कार' मिला और सन् १९५८ मे साहित्य अकादेमीने पुरस्कृत कर उन्हे सम्मान दिया। उनकी कृतियाँ तमिल, तेलुगु, कन्नड़ भाषाओंमें अनूदित हो चुकी हैं और हिन्दीमे अब यह आपके हाथों है।

# अनुक्रम

## कहानियाँ


स्वयंवरा .... ९
प्रेमचक्र .... २५
खरा सोना .... ४३
षष्ठीजीकी कृपा .... ५१
रेवतीका पतिलाभ .... ६१
अक्रूर-संवाद .... ७४
उपेक्षिता .... ९१
तीसरी द्यूतसभा .... ९३
धनुमामाकी हँसी .... ११०
शिवामुखका चिमटा .... १२२
जटाधर बक्शी .... १३३
जटाधरकी मुसीबत .... १४२


## ललित निबन्ध


जीवन-स्तर .... १५५
साहित्यिकका व्रत .... १६४
मिलावटी और नकली .... १७१
रवीन्द्र परिवेश .... १७९
ईसाई आदर्श .... १८३
भाषा और संकेत .... १८७
रस और रुचि .... १९०

# कहानियाँ

# स्वयंवरा

चाटुर्ज्या महाशय पंचाङ्ग देखकर बोले, "रातको नौ बजकर सत्तावन मिनिटके बाद अम्बुवाचीकी निवृत्ति है। उससे पहले यह बारिश नहीं रुकेगी। अभी तो शाम ही है।"

विनोद वकीलने कहा, "यह तो ठीक पर घर कैसे लौटा जाये?"

गृहस्वामी वंशलोचन बाबूने कहा, "बारिश मद्धिम हो तब उसके बारे-मे सोचना। फ़िलहाल यहीं खाने-पीनेका बन्दोबस्त हो जाये। ऊदो, ज़रा अन्दर तो बता आ!"

चाटुर्ज्याजी बोल उठे, "हाँ मसूरकी खिचड़ी और तली हुई हिलसा!"

विनोद बाबूने तकिया खींचकर टेक लगाते हुए कहा, "वह तो मान लो बन भी गयी पर तबतक वक्त कैसे काटें? चाटुर्ज्याजी, कोई क़िस्सा-विस्सा सुनाइए न?"

चाटुर्ज्याजी क्षण-भर सोचते रहे, फिर सुनाने लगे, "पिछले साल मैं मुंगेरमे था तो एक शेरनीके चंगुलमे फँस गया।"

बिनोदबाबूने बीचमे ही टोका, "दुहाई चाटुर्ज्याजी, शेरका क़िस्सा बस और न सुनाइए!"

चाटुर्ज्याजी मुरझा-से गये, "तो क्या सुनाऊँ, भूत या साँपका क़िस्सा?"

"नही-नहीं, इस बरसातमे शेर भूत या साँपका नही, कोई मुलायम-सा प्रेमका क़िस्सा सुनाइए।"

"मैं क़िस्सा नहीं सुनाता। जो भी सुनाता हूँ, सब सच्ची घटनाएँ होती हैं।"

"अच्छी बात, तब एक प्रेमकी सच्ची घटना ही सुनाइए।"

नगेन बोल पड़ा, "हो चुका तब तो! चाटुर्ज्याजी प्रेमके बारेमें बोलेंगे!

कितनी उम्र हो गयी आपकी चाटुर्ज्याजी ? कितने दाँत और बाकी है ?''

''तो प्रेम चबाकर खानेकी चीज़ है क्या ? मूर्ख, प्रेम दाँतसे नहीं मनसे होता है।''

नगेन बोला, ''मन तो सूखकर अमचूर बन चुका। प्रेमके बारेमे आप जानें भी क्या ? सब भूल-भाल गये होंगे। प्रेमके बारेमे तो नौजवान लोग ही कुछ कह सकते है। तेरा क्या खयाल है ऊदो ?''

''नौजवान क्या रे, सीधी-सीधी भाषामे छोकरा कह ! तीन कोड़ी उम्र हो आयी : केदार चाटुर्ज्या तो प्रेमके बारेमें जानते नही और आवारा छोकरे जानेंगे ?''

विनोदबाबू बोले, ''आ-हा ! ब्राह्मणसे क्यों बिगाड़ करते हो, पूरी घटना सुन ही लो न ?''

चाटुर्ज्याने कहा, ''वर्णोमें श्रेष्ठ है ब्राह्मण! दर्शन हो, काव्य हो, प्रेम-तत्त्व हो—सभी ब्राह्मणके दिमाग़से निकला है। और ब्राह्मणोमे श्रेष्ठ है चाटुर्ज्या। जैसे बंकिम चाटुर्ज्या, शरत चाटुर्ज्या।

''और ?''

''और यह केदार चाटुर्ज्या। क्यों, क्या मै तुम लोगोंसे डरता हूँ जो नही बोलूँगा ?''

''बहरहाल, आप शुरू तो कीजिए।''

चाटुर्ज्याजीने कहना शुरू किया, ''पिछले सालकी घटना है। मैं एक रूपवती सुन्दरी नारीके चंगुलमें पड़ गया था।''

''अभी तो आप कह रहे थे शेरनीके चंगुलमे फँस गये थे ?''

विनोदने जोड़ा, ''एक ही बात है !''

चाटुर्ज्याने कहा, ''अरे मूरखचन्द, शेरनीके चंगुलमे फँसा था मुंगेर-मे और यह नारीवाली घटना हुई थी पंजाब मेलमे, टूँडलासे इधर ! अच्छा अब घटना सुनो—

"पिछले साल माघ महीनेमे चरण घोषने अपनी छोटी लड़कोको टूँडला पहुँचा आनेको कहा, जमाई वहीं काम करता था। मेरे लिए अच्छा संयोग था : पराये पैसेसे सेकण्ड क्लासमे सफ़र करनेको मिलता और लौटते हुए एक दिनको काशीवास भी। लडकीको तो बिना झंझट पहुँचा दिया। पर आते समय देखा कि टूँडला स्टेशनपर गाड़ीमे जगह नामको नहीं है। झुण्डके-झुण्ड आगरासे लौटते हुए अमेरिकन सैलानी फ़र्स्ट और सेकण्ड क्लासके आसनोंपर अधिकार किये बैठे है। ग़नीमत यह हुई कि जमाई रेलवेका डाक्टर था, इसलिए गार्डसे कह-सुनकर उसने मुझे एक फ़र्स्ट क्लासके डब्बेमे धकेल-धकालकर चढा दिया। गाड़ी भी तभी खुली।

"उस समय सवेरेके सात बजे होंगे; लेकिन चारों ओर कुहरा घिरा हुआ था। गाड़ीके अन्दर भी एक धुँधलका-सा फैला था। कुछ देर तो आँखोंमे धुन्ध छाया रहा, फिर धीरे-धीरे डब्बेके भीतरका दृश्य स्पष्ट हो उठा।

"देखते ही आँखें ठिठक गयीं। उस ओरकी बेंचपर एक दैत्य-सा लम्ब-तड़ंग साहब चित पड़ा आँखें मूँदे मुँह खोले लेटा था और बीच-बीचमें कुछ बड़बड़ा उठता था। दो बर्थोंके बीचमे फ़र्शपर दूसरा एक नाटा मोटा साहब औंधे मुँह सो रहा था और उसके सिरके पास एक खाली बोतल पड़ी लुढ़क रही थी। इधरकी बर्थपर कोई नहीं था लेकिन एक क़ीमती बिस्तर वहाँ बिछा हुआ था और एक अजीब-सी पोशाक उसपर पड़ी हुई थी—शायद भालूकी खालकी बनी हुई होगी! कई और भी चीजें पासको बिखरी पड़ी थीं। गाड़ी चल रही थी इसलिए भागनेका कोई उपाय न था। बर्थके सिरेपर एक कुरसी-जैसी जगह बनी हुई थी, उसीपर बैठा मै भगवती दुर्गाका नाम जपता रहा। किसी तरह समय बीतने लगा, दोनों साहब जैसे थे वैसे ही लेटे रहे और धीरे-धीरे मेरी हिम्मत बँधने लगी।

"अचानक बाथरूमका दरवाज़ा खोलकर एक रूपसी मूर्त्ति निकल आयी। दूरसे अनगिनती मेमोंको देखा है, लेकिन इतना निकट आमने-

सामने देखनेका अवसर कभी नहीं मिला था। मुखड़ा क्या था चीनी करौंदा, दोनों होंठ मानो पके हुए लाल मिर्चे; संगमर्मरसे तराशी हुई जाँघों तक झूलती लम्बी बाँहें। कन्धे तक बाल कतरे हुए, सिर्फ़ कानके पास पटसन-से दो गुच्छे बाल कुण्डली बनाये हुए थे। कमरमें डेढ़ हाथका एक अंगोछा लपेटे हुए थी—"

विनोदबाबूने टोका, "अंगोछा नहीं चाटुर्ज्याजी, उसे स्कर्ट कहते हैं।"

"कट-पट मैं नही जानता हूँ भाई, साफ़-साफ़ देखा कि बाँदीपोताका अंगोछा ऊँचा किये पहने थी और उसके नीचे गुलाबी रंगके केलेके तने-जैसे दो पैर निकले हुए थे। उनपर जुर्राब चढ़ी थी या नही, पता न चला। देहयष्टि अबतक छापेके अक्षरोंमे ही देखी थी, अब साक्षात् सामने थी। हाँ, यष्टि यानी छड़ी ही थी; सिरसे लेकर सीने-कमर तक एकदम सुडौल, कहो तनिक अनगढ़पन नहीं। वह हिल-डोल रही पल्लविनी लता-सी नहीं, फुलझड़ी-सी लगती थी। देखकर बड़ी भक्ति उमड़ी। माथेसे हाथ छुआ कर कहा, "सलाम मेम साहब!"

"फिक-से हँस पड़ी। लाल मिर्चोंके बीचसे कच्चे भुट्टेके दाने दीख पड़े। गर्दन हिलाकर बोली, घुत् मॉनिङ्।"

"फिर वह नृत्यरता अप्सरी-सी चंचल गतिसे आकर उसी बर्थपर बैठ गयी। मैं सकपकाकर कुरसी छोड़ उठ खड़ा हुआ। मेम बोली, 'सिट डाउन बाबू, डरो मत।'

"देवीका एक हाथ अभयदानकी मुद्रामे था और दूसरे हाथमे सिगरेट था। मैं समझ गया कि देवी प्रसन्न हो गयी है, अब मुझे कौन मार सकता है! अंग्रेज़ी अच्छी तरहसे आती नहीं थी, सो मिली-जुली हिन्दी-अंग्रेज़ीमे मैंने निवेदन किया, 'कहीं जगह न मिलनेके कारण ही मैने यह अनधिकार प्रवेश किया—हालाँकि गार्डका हुक्म ले लिया है, मेमसाहब क़ुसूर माफ़ करें।' मेमने फिर अभयदान दिया और मैं भी फिर ठीक-से बैठ गया।

"लेकिन मुक्ति न मिली। मेमसाहब बग़लमें बैठी ज़रा दाँत निकाले

टकटकी लगाये मुझे निहार रही थीं !

"इस केदार चाटुर्ज्याको साँपने दौड़ाया है, शेरने पीछा किया है, भूतने डराया है, लंगूरने दाँत निपोरे हैं, पुलिस-कोर्टके वकीलने जिरह की है : लेकिन ऐसी फ़जीहत कभी न हुई थी। साठ सालकी उम्र, रंग उजला साँवला भी नहीं, पाँच दिनकी बढी हुई हजामतसे चेहरा ऐसा बना था मानो कदम्बका फूल—लेकिन इन तमाम बाधाओंको पार कर शर्मने आकर मेरे कानों तकको बैंगनी रंगमे रँग दिया। जब मुझसे रहा न गया तो मैंने पूछा, 'मेमसाब क्या देखता ?'

"मेम हू-हू कर हँसती हुई बोली, 'कुछ नहीं, कुछ नहीं। नो अॅफेन्स। तुम कौन है बाबू ?'

"मेरे आत्मसम्मानपर धक्का लगा। क्या मैं बहुरूपिया हूँ या चिड़िया-खानेका जानवर ? सीना तानकर सिर ऊँचा किये मैंने कहा, 'आई केदार चाटुर्ज्या, नो जू गार्डन।'

"मेम, फिर हू-हू शब्द कर हँस पड़ी, बोली, 'बेंगॅली ?'

"मैंने गर्वके साथ जवाब दिया, 'यस्सर, हाई-कास्ट बेंगॅली ब्राहमिन।' जनेऊ निकालकर मैं बोला, 'सी ? आप कौन है मैडम ?"

विनोदबाबू फिर बोल पड़े, "छी, चाटुर्ज्याजी, मेमका परिचय पूछ लिया ? यह तो एटीकेटमे मना है।"

"क्यों न पूछूँ ? मेमने जब मेरा परिचय ले लिया तो मैं क्यों उसे छोड़ दूँ ? मेम बिलकुल नाराज़ न हुई, उसने बताया कि उसका नाम जोन जिल्टर है, वह अमेरिकाकी रहनेवाली है, इस देशमें पहले भी कई बार आ चुकी है। इण्डिया बड़ा अजोब देश है !

"मैंने हिम्मत बटोरकर दोनों साहबोंको दिखाते हुए पूछा, 'ये कौन हैं ?'

"मेम बड़ी सरला थी। बेंचपर लेटे लम्बे-तड़ंगे साहबकी ओर पाँचवीं उँगलीसे इशारा करती हुई बोली, 'दैट चैपी इज़ टिमॅथी टोपर,

कैलिफ़ोर्नियाका रहनेवाला, मुझसे शादी करना चाहता है। यह दस करोड डॉलरका मालिक है। वह साहब जो नीचे लुढ़का पड़ा है वह है क्रिस्टोफ़र कोलम्बस ब्लटो, यह भी मुझसे शादी करना चाहता है। उसके पास भी दस करोड़ डॉलर है।'

"मैने गम्भीर मुद्रामे कहा, 'कोलम्बसने अमेरिका खोज निकाला था।'

"मेम बोली, 'वह दूसरा आदमी था। यह अमेरिकामे रहते हुए भी कोई खोज न कर पाये। उस देशमे बड़ा सूखा पड़ा हुआ है : मेथिलेटेडस्पिरिटके सिवा वहाँ कुछ मिलता ही नही। इसीलिए ये लोग देश-त्यागी होकर शुद्ध वस्तुकी खोजमे दुनिया-भरका चक्कर लगा रहे है।'

"मैने पूछा, 'क्या ये लोग बड़े स्पिरिचुअलिस्ट हैं ?'

"मेमने कहा, 'वेरी।'

"तभी उस लम्ब-तड़ंग साहबने आँखें तरेरकर मेरी ओर घूरते हुए घूँसा तानकर कहा, 'यू-यू, गेट आउट, क्विक !' नाटा साहब भी पड़े-पड़े हाथ-पैर पटकने लगा।

"मैने भी अपनी लाठी सँभालकर फ़र्शपर ठुकठुकायी। मेम साहबने बिस्तरपर-से अपना परोंका बना हुआ सैण्ड्ल लेकर उससे उस लम्बे-तड़ंगे साहबके दोनों गाल थपथपाते हुए दुलराया, 'यू पग, यू पग !' फिर उस नाटेको एक लात जमाती हुई बोली, 'यू पिग, यू पिग !' दोनों फ़ौरन चुपचाप जा सोये। मेमने उनके सीनेपर एक-एक सैण्ड्ल रख दिया और अपनी जगह लौटकर बैठती हुई बोली, 'कोई डर नही बाबू, कोई डर नहीं।'

"पर कौन भरोसा ? अलिफलैलामे पढा था कि एक देव एक राजकन्याको सन्दूक़मे भरकर सिरपर लिये घूमा करता था। देवके सो जानेपर वह राजकन्या उसके सीनेपर एक ढेला रखकर जगह-जगहके राजकुमारोंसे मिलती और हर-एकसे एक अँगूठी वसूल किया करती थी। सो सोचा अब मेरी मौत है। यह मेम तो दो-दो देवोंके कन्धोंपर सवार घूम रही

है, अभी निन्यानवे अँगूठियोंकी माला निकाल लेगी !

"जिस बातका डर था वही हुई । मेरे हाथमें चाँदी और ताँबेके तारमे लिपटी मूँगा-जड़ी एक अँगूठी थी । मेम साहब उसपर नजर पड़ते ही बोलीं, 'हाउ लव्ली ! देखें बाबू कैसी अँगूठी है ?'

"मैने डरते-डरते हाथ बढ़ा दिया, मानो उँगलीके अकौतेपर नश्तर लगा रहा हूँ । मेम चट अँगूठी उतारकर अपनी उँगलीमें पहनती हुई बोली, 'बिउचीफु····!'

"हरे राम, यह मेरी त्रिसन्ध्या जप करनेवाली अँगूठी ! इस मलेच्छ औरतने अपवित्र कर दी ! मेरी आँखें डबडबा आयीं पर बड़ा कुतूहल भी हुआ । बोला, 'मेमसाहब, आपके पास और कितनी अँगूठियाँ है ? नाइण्टी-नाइन ?'

"मेमने बर्थके नीचेसे एक सन्दूक खींचा और उसमें-से एक अनूठी पेटी निकालकर मुझे दिखायी । आँखें चौंधिया गयीं । उसमें छोटी-बड़ी अन-गिनत दराजें थीं : किसीमें गलेका हार, किसीमे कानोंके झुमके, किसीमें कुछ और । एक अँगूठियोंको ट्रे भी थी । उसमें बीस-पचीस अँगूठियाँ थी ! मेरे सामनेको करती हुई बोली, 'जिसे चाहो ले लो बाबू !'

"मैं बोला, 'यह कैसी बात ? मेरी अँगूठी कुल-जमा दो रुपये चार आने की है । मैंने इसे आपको प्रेजेण्ट किया । सावधानीसे रखिएगा, वेरी होली अँगूठी !'

"मेम बीली, 'यू ओल्ड डीयर ! लेकिन अगर मै तुम्हारी भेंट स्वीकार कर लूँ तो मेरी भेंट भी तुम्हें लौटाना नहीं चाहिए ।' यह कहते हुए मेरी उँगलीमें उसने चुन्नीकी अँगूठी पहना दी । मैने कहा, 'थैंक्यू मेमसाहब, मैं आपका गुलाम हूँ, फ़ॉरगेट भी नॉट !' मन-ही-मन बोला : चिन्ता मत कर, यह अँगूठी घरवालीके लिए रही !

"ट्रेन इटावा पहुँची । केलनरके खानसामाने चाय-रोटी-मक्खन लाकर

पूछा, 'टी हुजूर ?' मेमने ट्रे रख लिया। उसके बाद मेरी लाठीसे लम्बू और नाटू दोनोंको कोंचते हुए बोली, 'गेट अप् टिमी, गेट अप् ब्लटो !' वे जंगली सूअरोंकी तरह क्या घुरघुराते रहे कुछ सुनायी नहीं पड़ा। पर अनुमानसे इतना समझमें आया कि अभी शायद उनके उठनेका समय नहीं हुआ था। मेमने मुझसे पूछा, 'क्यों चैटर्जी, पिओगे ? कोई एतराज़ तो नहीं ?'

"बड़ी मुसीबतमे फँसा। म्लेच्छ नारीके हाथों बनी चाय; पर गमक फैल रही थी; और सर्दी भी तगड़ी थी ! शास्त्रमें चाय पीना मना है, ऐसा कहीं भी नहीं लिखा। इसके अलावा रेलगाड़ी-जैसे बृहद् काष्ठपर बैठकर सर्दी भगानेके लिए दवाके तौरपर अगर चाय पी जाये तो निश्चय ही उसमें कोई दोष नहीं। बोला, 'मैडम दुलारी, तुम जब अपने हाथों चाय दे रही हो तो क्यों नहीं पिऊँगा। लेकिन रोटी रहने दो।'

"चायसे मनके किवाड़ खुल जाते हैं; पीते-पीते अनजाने ही बहुत-सी रहस्यकी बातें निकल आती हैं। अश्वत्थामाने जिस तरह दूधके बदले चावलका धोवन पीकर आनन्दसे नृत्य किया था, सीधा-सादा बंगाली भी उसी तरह चायसे ही शराबके नशेका रंग लेता रहा। बंकिम चैटर्जीने तारीफ़ करते हुए चाय पीना नहीं सीखा था, ज़ुकाम-उकाम हो जानेपर अदरख-नमक डालकर पीते थे—और उतनेमे ही लिख पाये थे : 'क़ैदी मेरा प्राणेश्वर है !' आजकल चायकी बदौलत बंगालमें भावकी बाढ़ आयी है—घर-घरमे चाय : घर-घरमें प्रेम। उस युगमें कवियोंकी माँग थी : उपवन हो, चाँद हो, मलय हो, कोयल हो तब पंचशर चलेगा। अब कोई झंझट नहीं : बस हैण्ड्ल-टूटे दो कप चाहिए, एक फटा-सा ऑएल-क्लॉथ, एक चीड़की बनी मेज़, आमने-सामने दो तरुण-तरुणी, और बीचमें धुँआ उगलती केतली। ग़नीमत इतनी ही कि उम्रमें साठा था, तभी जान बच गयी।

"मेमसे मैंने पूछा, 'क्यों मेमसाहब, यह जो दो हुजूर ज़मीनपर औंधे-

सीधे लुढ़के पड़े है, ये दोनों ही तो आपके पाणिप्रार्थी है। आप इनमें किस भाग्यवान्का वरण करेंगी ?'

"मेम बोली, 'वह एक समस्या है। मैंने अभी कुछ तय नहीं किया। कभी लगता है टिमी ही लायक़ पात्र है : काफ़ी स्वस्थ और सुपुरुष है, खूब प्रेम भी करता है। लेकिन शराब पीते ही उसका दिमाग़ खराब हो जाता है। यह दूसरा ब्लटो, हालांकि नाटा और मोटा है और उम्र भी कुछ ज्यादा हो गयी है, पर मेरा बड़ा आज्ञाकारी है; मनका भी कोमल है। ज़रा-सी शराब पी लेनेपर रो पड़ता है। बड़ी मुश्किलमे फँसी हुई हूँ—ये दोनों ही तुले हुए है। बहरहाल, अब भी कुछ घण्टे मेरे पास हैं—हादडा पहुँचनेसे पहले ही फ़ैसला कर लूँगी। क्यों चैटर्जी, तुम ही बताओ न कि इनमे-से किससे शादी करनी चाहिए ?'

"मैंने कहा, 'आपने इन लोगोंकी चाल-ढाल जैसी बतायी उससे तो यही ज़ाहिर होता है कि दोनों ही अच्छे पात्र हैं। पर ये लोग ऐसे बेहोश-से क्यों पड़े है ?'

"मेम बोली, 'वह कुछ नहीं। थोड़ी ही देर बाद दोनों ठीक हो जायेंगे।'

"मैंने कहा, 'अगर आपका किसी एकपर खास झुकाव न हो तो इसकी ज़िम्मेदारी अपने माँ-बापको सौंप दीजिए।'

"मेम बोली, 'मेरे माँ-बाप नहीं है, खुद ही अपनी गार्जियन हूँ। अच्छा चैटर्जी, अगर तुम्हे ही इसकी सारी ज़िम्मेदारी सौंप दूँ तो ? तुम ही अच्छी तरहसे दोनोंको ठोक-बजाकर देख लो। मुग़लसराय उतरो उसके पहले ही अपनी राय मुझे बता देना। सोचा था कि एक सिक्का उछालकर सन्-मूरत कर लूँगी, पर अब तुम हो तो उसकी ज़रूरत नहीं।'

"बात कोई बुरी नहीं थी। मित्रों और सम्बन्धियोंके लिए अबतक कितने ही दूल्हा-दुलहन तय किये थे, पर ऐसा अजीब दूल्हा चुननेका भार कभी नहीं मिला था। दोनों करोड़पति थे, दोनों शराबी। एक लम्बाईमें

बड़ा था तो दूसरा वजनमें। दोनोंकी विद्या-बुद्धिका अबतक जो परिचय मिला वह भी सामने था। वर भाड़में जाये, जब मेमको ही कोई एतराज़ नहीं तब जिस-किसीका भी नाम ले लिया जाये ! मैं अगर समझता कि मेम मेरी बात मानेगी तब बताता : हे माँ लक्ष्मी, जब तुमने सिर ही मुड़ा लिया तो बाकी काम भी निबटा लो—इन दोनों होनहार पतियोंको झाड़ू मारकर नरक भेज दो !

"गप लड़ाते-लड़ाते दिनके क़रीब साढ़े-नौ बज गये। कुछ ही देर बाद गाडी एक छोटे-से स्टेशनपर ठहरनेवाली थी। मैंने सोचा, साहब लोग और मेम तब नहारी खानेके लिए खानेवाले डब्बेमें जायेंगे। अभीतक निगाह नहीं पड़ी थी, अब मैंने देखा कि चाय पीनेके बाद मेमके होंठ फीके पड़ गये हैं—समझ गया रंग कच्चा है। मेमने एक सोनेकी डिबिया खोली, उसमें-से छोटा-सा शीशा निकाला और एक लाल सलाई और पाउडरकी पोटली। होंठोंपर सलाई घिसकर और नाकपर ज़रा पाउडर थपककर उसने चेहरेकी फिर मरम्मत कर ली।

"गाड़ी रुकी। मेम बोली, 'चैटर्जी, मैं ब्रेकफ़ास्ट लेने जा रही हूँ। टिमी और ब्लटो यहीं रहे, तुम जरा निगाह रखना, जागनेपर कहीं मार-पीट न करने लगें। अगर सँभालते न बने तो जंजीर खींच लेना।

"अहा, कैसा सीधा-सरल काम सौंप गयी ! आध घण्टे बाद जब गाड़ी कानपुर ठहरेगी तब मेम इस डब्बेमें लौटेगी। तबतक मेरी मौत है ! मैं लाठीको तैयार रखे दुर्गाका नाम जपने लगा।

"लम्बा साहब उठा। जम्हाई ली, आँखें मलीं, उँगलियाँ चटकायीं। फिर मेरी ओर एक बार घूरते हुए देखा; पर बोला कुछ नहीं, लड़खड़ाते पैरों बाथरूम चला गया।

"उसके जाते ही वह दूसरा नाटा साहब मेंढक-सा उछलकर छप्प-से मेरे पास आकर बैठ गया। मैं डरके मारे चिल्लानेवाला ही था कि उसने पहले ही मेरा हाथ पकड़कर हिलाते हुए कहा, 'गुड मॉर्निङ्, सर, मैं हूँ

क्रिस्टोफ़र कोलम्बस ब्लटो !'

"मैने भी हिम्मत बटोरकर कहा, 'सलाम हुजूर !'

"वह बोला, 'मेरे पास दस करोड़ डॉलर हैं। हर मिनिटपर मेरा रोजगार—'

"मैने कहा, 'हुजूर दुनियाके मालिक हैं, यह मुझे मालूम है।'

"ब्लटो मेरे सीनेपर एक उँगली रखते हुए बोला, 'लुक हियर बाबू, मै तुम्हे पाँच रुपया बख्शिश दूँगा।'

"क्यों हुजूर ?'

"मिस जिल्टरको तुम्हे राज़ी करना ही होगा। मैं तुम लोगोंकी सब बातें सुन चुका हूँ। तुम्हारे ऊपर ही सारी ज़िम्मेदारी है, तुम्ही लड़की वाले हो। वह टिमॅथी टेलर—वह बड़ा पाजी आदमी है, उसकी सारी जायदाद मेरे पास रेहन पड़ी हुई है ! पक्का शराबी, भिखमँगा, उसके साथ शादी होनेपर तो मिस जिल्टर मारे पछतावेके ही मर जायेंगी।'

"यह कहते-कहते ब्लटो फफक-फफककर रोने लगा। फिर बोतलकी तलीमे बची शराब पीकर बोला, 'बाबू तुम जन्मान्तर मानते हो ?'

" 'जरूर मानता हूँ।'

" 'मै पिछले जन्ममे एक प्यासा पपीहा था और यह मेम थी एक हसीन पनडुब्बी। हम दोनों—'

"उसी समय बाथरूमके खुलनेकी आहट सुनायी पड़ी। ब्लटो झट पाँच उँगलियोसे पाँच डॉलरका इशारा करता फिर अपनी जगहपर खर्राटे भरने लगा।

"लम्बा साहब, जिसे मेम टिमी कहती थी, आकर अपनी बर्थपर जमकर बैठ गया। तब ब्लटोने जागकर उठनेका अभिनय किया : जम्हाई ली, आँखें मलीं और मेरी ओर एक करुण दृष्टि डालता बाथरूम चला गया।

"अब टिमीकी बारी थी। ब्लटोके जाते ही उसने लपककर मेरा हाथ

पकड़ लिया। मैं पहले ही बोल पडा, 'गुड् मॉर्निङ् सर !'

"टिमीने मेरा हाथ मरोड़ दिया।

"मेरे मुँहसे निकला, 'ऊफ़् !'

"टिमी बोला, 'तुम्हारे हाथका मैं चूरन बना दूँगा चूरन····'

"मैने डरते हुए कहा, 'यस् सर !'

" 'तुम्हें पीसकर जेली बना दूँगा।'

" 'यस् सर।'

" 'मिस जोन जिल्टरसे मैं शादी करके ही रहूँगा, समझे। मैं सब सुन चुका हूँ। तुमने अगर मेरे ही लिए नहीं कहा तो मेरे हाथसे तुम बच नहीं सकोगे।'

" 'यस सर।'

" 'मेरे पास बेइन्तिहा धन-सम्पत्ति है। पाँच होटल, दस जहाज़-कम्पनी और सूअरके सूखे गोश्तके पचीस कारखाने। ब्लटोके पास क्या है ? शराबकी एक चोर-भट्ठी : वह भी मेरे रुपयेसे ! ब्लटो—एक शराबी, लम्पट, नाटा, बदज़ात !'

"ब्लटो शायद आड़से सब सुन रहा था। अचानक घूँसा ताने हुए सामने आकर बोला, 'कौन शराबी, कौन लम्पट, कौन नाटा-बदज़ात है ?'

"सभी लोगोंका विश्वास है कि गाने और गाली-गलौज हिन्दी-उर्दूमें ही जमते है। यह मान लेता हूँ कि हिन्दीमें गाली-गलौजका प्रसादगुण बहुत ज़्यादा है। पर अगर निरी आवाज़ और धूमधड़ाका चाहते है, तो विलायती गालियाँ सुनिए। खास-तौरसे अमेरिकन। एक-एक शब्द मानो तोपका गोला हो जो कानोंमें घुसकर सीधा दिलमें पैठ जाता है। अंग्रेज़ी मुझे अच्छी तरहसे आती नहीं, सारी गाली-गलौजका मतलब भी नहीं समझ पाता हूँ, लेकिन उससे रस लेनेमें कोई भी दिक़्क़त न हुई।

"देखा, एक मामलेमें साहब लोग हम लोगोंसे कमज़ोर हैं—वे वाक्युद्ध ज़्यादा देर तक नहीं चला पाते। दो मिनिट गुज़रते-न-गुज़रते ही उन दोनों

में हाथापाई हो गयी। मैं भौंचक होकर देखने लगा। गाड़ी कब कानपुर आकर ठहर गयी पता भी न लगा।

"तेज़ क़दमोंसे मेमसाहब आ पहुँचीं। उस गज-ग्राहकी लड़ाईको रोकना क्या उनके बूतेका था! बोलीं, 'टिमी डियर डोण्ट,—ब्लटो डार्लिंग डोण्ट—प्लीज़—प्लीज़ डोण्ट!' कुछ भी असर न हुआ। मामला तूल पकड़ते देख मैं गाड़ीसे उतरा और दौड़ने लगा।

"फ़र्स्ट क्लास सेकेण्ड क्लास सभी खाली थे। डाइनिङ् कारमें सब खाना खा रहे थे। किससे कहूँ? सफ़ेद फ़्लैनलका पतलून पहने एक साहब प्लैटफ़ॉर्मपर चेहलक़दमी करते हुए सीटी बजा रहा था। हाँफते-हाँफते उसीसे जाकर मैंने कहा, 'कम् सर लेडीको बड़ी मुशीबत है।' साहब हुश-से एक तीखी सीटी बजाकर मेरे साथ दौड़ा।

"मेम उस वक्त मेरी लाठीसे दोनोंको दनादन पीट रही थी। लेकिन उन्हे जैसे इसकी कोई परवाह न थी—लगातार जूझे जा रहे थे। आगन्तुक साहबने मेमसे पूछा, 'हेलो, जोन, क्या मामला है?' मेमने झटपट मामला समझा दिया। साहबने टिमी और ब्लटोको रोकनेकी कोशिश की, लेकिन वे उसे भी मारने घूम पड़े। नये साहबने भी हाथका जौहर दिखाया।

"बाप रे, घूँसेका भी क्या धमाका था! टिमी दूर लुढ़का, उसका सर दरवाज़ेसे टकराया। चौदह भुवनोंका अँधेरा उसे दिखने लगा। ब्लटो एक कोंक्-सा शब्द करके बेंचके नीचे चारों खाने चित पड़ गया। बिलकुल ठण्डा।

"ज़रा-सा विश्राम कर मेमने नये साहबके साथ मेरा परिचय कराया, 'यह है मशहूर मुक्केबाज़ मिस्टर बिल बौण्डर। और यह हैं मिस्टर चैटर्जी, वेरी डियर ओल्ड फ्रेण्ड!'

"साहबने मेरा चेहरा देखकर कहा, 'सम् बियर्ड?'

"मेम बोली, 'रहने दो दाढ़ी, आप बड़े ही ज्ञानी व्यक्ति हैं।'

"साहबने मेरा हाथ अच्छी तरहसे झकझोरकर कहा, 'हा-डू-डू ? काफी सर्दी है, है न ?'

"झट मेरे दिमाग़में एक लहर दौड़ गयी। मेम साहबसे चुपके-से कहा, 'सुनिए मिस जोन, इतने गोलमालसे क्या फ़ायदा ? टिमी और ब्लटो दोनों दुरुस्त हो चुके हैं। मेरा कहना है कि आप इस बिल साहबसे ही शादी क्यों न कर लें ? उम्दा आदमी है।'

"मेम बोली, 'राइटो! मुझे यह बात अबतक सूझी ही नहीं।···आइ से बिल, मुझसे शादी करोगे ?'

"बिल बोला, 'रादर कौन कहता कि नही करूँगा ?'

"राधामाधव कहो ! साहबोंकी क़ौम ही बड़ी बेहया होती है। बिलको टोकते हुए मैंने कहा, 'ठहरो तो साहब, अभी यह सब कैसे ? मैं हूँ ब्राइड-मास्टर, लड़कीवाला। तुम्हारे खानदानका पहले पता लगालूँ, उसके बाद राय दूँगा।'

"बिल बोला, 'मेरे बाबा मोची थे। मेरा बाप भी बचपनमे जूता टाँकता था।'

"मैंने कहा, 'उससे कुल-मर्यादा नही घटती। तुम्हारा रोज़गार कितना है ?'

"बिलने ज़रा हिसाब लगाकर बताया, 'मिनिटमें दस हज़ार, घण्टेमे छह लाख। पर फ़िक्र नहीं, मौसीके मर जानेपर मेरा रोज़गार बढ़ जायेगा। उनके पास लोने पानीके पचीस बड़े-बड़े तालाब है जिनमे तिमिंगिल भरे पड़े हैं।'

"मैं बोला, 'रहने दो, अब और बतानेकी जरूरत नहीं। मैंने राय दे दी ! आगे बढ़ आओ। हम तुम्हे आशीर्वाद देंगे, रीएल हिन्दू स्टाइलमे।'

"लेकिन अच्छत-दूर्वादल कहाँसे आता ? मै खिड़कीसे गरदन निकाल-कर चिल्लाया, 'ऐ कुली, झट कुछ घास नोच लाओ तो, पैसा मिलेगा !'

"अंग्रेज़ी आशीर्वाद तो मुझे मालूम न था, उनसे बोला, 'एतराज़ न

हो तो बँगलामे ही कहूँ ?'

" 'बेशक, बेशक ।'

साहबके सिरपर मुट्ठीभर घास छोड़कर मैंने कहा, 'जीते रहो ! धन काफ़ी है ही, पुत्र भी होगा, लक्ष्मी जो सौप रहा हूँ ! लेकिन ख़बरदार लड़के, बहुत दारू-शराब न पीना वरना ब्रह्मशाप लगेगा !' साहबने फिर एक बार मेरा हाथ हिलाया और मानो कलाई तोड दी ।"

"मेमसे कहा, 'माँ लछमी, तुम्हारे होंठोंका सिन्दूर अक्षय हो ! वीर-प्रसविनी बननेकी कोई ज़रूरत नहीं—वह आशीर्वाद हम लोगोंकी अबलाओंके लिए रहने दो । गरीब काले आदमियोंके दुःखका कारण तुम मत बनो : चन्द सीधे-सादे बच्चोंको लेकर अपनी घर-गिरस्ती करो !'

"मेमने अचानक मुँह उठाकर मेरी उस पाँच दिनकी बिना बनी हजामतसे भरी दाढीके ऊपर—"

विनोदबाबू बोल पड़े, "अरे राम राम ! छी-छी !"

चाटुर्ज्याजीने कहा, "हाँ, देवी चौधरानी उपन्यासमे ऐसा ही लिखा है।"

"क्यों चाटुर्ज्याजी, लाल मिर्चोंका स्वाद कैसा लगा ?"

"उसमे कोई कड़वापन न था । अरे वही उन लोगोंका रिवाज है । वे लोग उसी तरह अपनी भक्ति-श्रद्धाका निवेदन करते हैं, उसमें शरमानेकी क्या बात है ।"

चाटुर्ज्याजी कहने लगे, "उसके बाद देखता हूँ कि लम्बू और नाटू दोनों मुँह काला किये डब्बेसे उतरे जा रहे है, दो कुली उनका सामान उतार रहे थे ।

"गाड़ी खुली । बिल और जोन एक-दूसरेका हाथ पकड़कर नाचने लगे । मै आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा ।

"जोन बोली, 'चैटर्जी, इस आनन्दके समय तुम ऐसा ग्लम बनकर मत बैठे रहो । आओ हमारे साथ नाचमे शरीक हो जाओ !'

"मै बोला, 'मदर लछमी, मेरी कमरमे बाई है । वैद्यने नाचनेको

मना किया है।'

"'तब तुम गाना गाओ, हम ही नाचते हैं।'

"क्या करता! पठानोंके चंगुलमें फँसा था। एक 'रामप्रसादी' शुरू कर दिया।

सारा रास्ता इसी तरह चला। आखिरमें मुग़लसराय आया। मेम बोली, 'कलकत्ते जाकर ही उनकी शादी होगी। मैं तीन दिन बाद ग्रैण्ड होटलमे उनसे अवश्य मुलाक़ात करूँ। काफ़ी शेक-हैण्ड्स, काफ़ी अनुरोध—उसके बाद मैं उतरकर काशीधामकी गाड़ीपर सवार हो गया। अगले दिन फिर कलकत्तेकी ओर।"

विनोदबाबू बोले, "क्यों चाटुर्ज्याजी, घरवालीने सब बातें सुन ली है?"

"क्यों नहीं सुनेंगी! सती लक्ष्मी है वह और उम्र भी पचासके ऊपर पहुँच चुकी। तुम लोगोंकी नवीनाओंकी तरह नासमझ नही कि मारे डाहके चकनाचूर हो जायें। मैंने घर लौटते ही सब-कुछ उन्हे बता दिया।"

"चाटुर्ज्या, गृहिणीने सुनकर कहा क्या?"

"तत्काल एक उड़िया नाई बुलाकर उससे कहा, 'ज़रा बूढ़ेका चेहरा तो अच्छी तरहसे छील दे, म्लेच्छ औरतने जूठा कर दिया है!' और उस चुन्नीवालो अँगूठीको गंगाजलसे धोकर उन्होंने अपनी उँगलीमें पहन लिया।"

"शादीकी दावत कैसी रही?"

"वह दुःखकी बात न ही सुनो तो अच्छा। ग्रैण्ड होटल जानेपर पता लगा कि वहाँ दोनोंमे-से कोई भी नहीं है। एक ख़ानसामाने बताया कि शादीके अगले दिन ही मेम भाग गयी, साहब उसे ढूँढ़ने गया है।"

# प्रेमचक्र

"अब भी बता हाबला ?"

"हाँ हाँ, मैं बता रहा हूँ मामा, तुम साफ़ कर दो।"

"लेकिन लोग क्या कहेंगे ?"

"अच्छा ही कहेंगे।"

"तेरी मामी ?"

"तुम देख लेना मामी खुश होगी।"

"तू एक बार ऊपर जाकर पूछ तो आ।"

"सो तो मैं जा रहा हूँ। तुम तबतक भिगोकर नरम कर लो।"

हाबला ऊपर गया। मैं ब्रश घिसने लगा। हुक्म मिलते ही 'जय काली माईकी' कहकर हथियार चला दूँगा !

लेकिन अच्छे कामोंमें बड़ी अड़चनें आती हैं। हाबलाका छोटा भाई बंका आँधीकी नाईं कमरेमें दाखिल होता बोला, "यह क्या हो रहा है मामा ?"

"होना क्या है, मूँछें साफ़ करूँगा !"

बंका बोला, "मूँछें अभी रहने दो। झट एक कहानी लिख दो। एक मासिक पत्रिका निकाली है—'चिरन्तनी।'"

"कितने महीने निकलेगी ?"

"हमेशा। यह पत्रिका मरनेवाली नहीं है, तुम देख लेना। बाक़ायदा एस्टीमेट बनाकर चारों ओर देख-भालकर उतरा जा रहा है। पचीस मशहूर लेखकोंके साथ कण्ट्रैक्ट किया है। हर अंकमें उन्नीस कहानियाँ : पाँच सीधा प्रेम, दस टेढ़ा प्रेम, चार लोमहर्षक। पहला अंक क़रीब-क़रीब छप हो गया, सिर्फ़ आखिरी फ़र्मेकी रचना मिली नहीं इसलिए तुम्हारी

शरणमे आया हूँ। झटपट एक लिख दो।"

"क्यों ? तू अपने कण्ट्रैक्टरोंके पास जा।"

"उनकी खुशामद करनेका अब समय नही रहा, तुम ही एक लिख दो ! आज ही चाहिए, हाँ।"

तभी हाबला लौटकर आया। मुँह फूला हुआ था। बोला, "मामी राज़ी नहीं।"

"क्या बोली ?"

"बोली, 'खबरदार ! शक्ल-सूरत यों ही माशाअल्लाह है, मूँछोका सफ़ाया कर देनेपर तो और भी खूब दीखेगी !' लेकिन मामा, दिल छोटा करनेसे काम नहीं बनेगा। बदला लेना होगा, घोर बदला। मै कहता हूँ तुम दाढ़ी रख लो, मुँह-भर दाढ़ी, कमर तक लटके, बिलकुल निरंजन सिह की तरह।"

बंका बेचैनीसे बोल पडा, "ओह, क्या मूँछ और दाढ़ी लगा रखी है। इससे भी बडी-बड़ी वस्तुओंका सर्जन करना है। मामा, तुम सब बखेड़े छोड़कर कहानी लिखो।"

हाबला बोला, "तुम लोगोंकी उस पत्रिकाके लिए, शायद ?"

बंकाने कोई जवाब न दिया। वह अपने दादाकी परवाह नही करता, क्योंकि हाबला ज़रा पुराने ढर्रेका है और बंका बिलकुल गद्दर-तरुण। मै बोला, "बंकाकी पत्रिकामे एक फ़र्मा खाली है, तू एक रचना दे न हाबला ?"

हाबला बोला, "कविताकी ज़रूरत हो तो दे सकता हूँ। पुण्टूकी शादीके लिए एक लिख रखी है, उसीमे ज़रा हेरफेर करके दे दूँगा।"

शादीको तुकबन्दियाँ लिखनेमे हाबलाका हाथ सधा हुआ है। उसके दोस्त कहते है कि इस विभागमें वही इस समय सम्राट् है। हाबलाका घराना भी क्या है रावणका-सा वश : चचेरे, ममेरे, फुफेरे आदि सम्बन्धियों का अन्त नहीं, और उन सभीका धक्का चिरञ्जीव हाबुलचन्द्र सँभालता है!

सालमें पाँचेक हृदयवाणी, दो गण्डे मर्मोच्छ्वास, छह-सात प्रीति-उपहार उसे लिखने ही पड़ते है। भाषा, छन्द, भाव सब कुछ स्टैण्डर्डाइज कर डाला है उसने। आज कितना सुहावना प्रभात है, नील नभमे पूर्ण चन्द्रका उदय हुआ है, मलय मृदु हिल्लोलें लेता प्रवाहित है, गुच्छेके-गुच्छे कुसुम खिले हैं, हृदयमे शाहाना रागिनी बज रही है। यह सब क्यों हो रहा है? क्योंकि आज हमारी स्नेहास्पदा पुष्टूरानीके साथ चिरञ्जीव चमेली रञ्जन बी० एस्०-सी०का शुभ-विवाह हो रहा है। इसलिए हे विभु, तुम पर्याप्त मात्रामें मधुलेपन कर इन दोनों हृदयोंको जोड़ दो।

लेकिन बंकाको यह पसन्द नहीं। बोला, "रबिश! ये पुराने जमाने की तुकबन्दी बिलकुल नही चल सकती।"

मै बोला, "खूब चलेगी। इसी कवितामें जरा फेरफार कर दूँ, बस आधुनिक बन जाये। दो-चार भूमा, दो-तीन देन, ज़रा-सी रुद्र-सिहरन, और जरा रुन-झुन—"

बंका झुँझलाकर हाथ-पैर नचाते हुए बोला, "नही, नही, नही! वे सब सड़ी-गली कविताएँ एकदम नही चल सकतीं। मामा, तुम कहानी लिखो; खूब पेचीदा प्लॉट होनी चाहिए, और जल्दी देनी होगी।"

मैने कहा, "अच्छा, ऐसा ही होगा।"

"तसवीर भी चाहिए।"

"मारा! कहता क्या है रे! मेरी चौदह पुश्तोंमें किसीने कभी तसवीर नहीं खिचायी।"

"वाह, घोष कम्पनीमे तुम ही जो तसवीर बनाया करते थे?"

बात झूठी न थी। चार बार बी. ए मे फ़ेल होनेके बाद पिताजीके आग्रहपर कुछ दिन एञ्जीनियर घोष कम्पनीमे प्लान (नक़शा) बनाना सीखा था। कितनी तरहके औज़ार थे और कितनी तरहके रंग! मै मनके आनन्दमे सेट-स्क्वाएरसे तालाब बनाता और कम्पाससे चाँदा मछली आँकता। घोष साहब देखकर भी अनदेखा कर देते थे—पितृबन्धु जो थे।

बंकाने तभीसे यह मान लिया है कि मैं एक आर्टिस्ट हूँ। मानने दो, अगर कोशिश करनेपर एक ही साथ लेखक और चित्रकार बन सकूँ तो बुरा क्या है! बंकासे कहा, "कल शामको आना, देखूँगा क्या कर सकता हूँ।"

अगले दिन शाम होते-न-होते ही बंका आ धमका। साथमें अपनी छोटी बहन चिगड़ीको भी लेता आया था। वह फ़र्स्ट-ईयरमे पढ़ती है, कहानी और चित्रोंकी बड़ी पारखी है। मैंने पूछा, "हाबला नहीं आया?"

बंकाने जवाब दिया, "दादा बेहद बिगड़ गये है। बोल रहे थे, देखूँ मुझे छोड़कर तेरी पत्रिका कैं रोज़ चलती है। दादा मलेरिया-वध काव्य लिखने लगे हैं, 'शेवड़ाफुली-हितैषी' मे क्रमशः प्रकाशित होगा। जाने दो, तुम अपनी कहानी झटपट पढ़ तो डालो मामा! अभी प्रेसमे देना है, चित्रोंका ब्लॉक भी बनवाना है। लो शुरू कर दो!"

शुरू किया :

"स्थान : नैमिषारण्यका ऋषिटोला। काल : सत्ययुग। पात्र : तीन ऋषिकुमार—हारित, जारित और लारित। पात्रा : तीन ऋषिकन्याएँ—समिता, जमिता और तमिता।"

बंकाने टोका, "सत्ययुगमें क्यों चले गये? आधुनिक युग होनेपर अच्छा रहता, प्रेमके पथपर बाधाएँ नहीं मिलतीं। अगर वर्त्तमान युग-धाराके साथ तुम्हारा परिचय न हो तो बौद्ध या मुग़ल-युग भी चला सकते थे।"

मैं बोला, "तुझे ख़बर भी कुछ है? अगर हृदयका बाधाहीन विस्तार और कल्पनाका बेरोक प्रवाह दिखाना हो तो सत्ययुगमे ही प्लॉट भिड़ानी पड़ेगी।"

चिगड़ी बोल उठी, "जैसे कच और देवयानी!"

"बिलकुल। चिगड़ी, तू तो सब-कुछ जानती है।"

चिगड़ीने खुश होते कहा, "मामा, तुम किसीकी बातपर मत जाओ,

सत्ययुग ही चलाओ !"

"निश्चय, सत्ययुग हो चलाऊँगा। आगे सुनो। हारित समितासे प्रेम करता है, लेकिन समिता जारितको चाहती है। उधर जारित जमिताके लिए पागल है, पर जमिताका सारा आकर्षण लारितकी ओर है। लारित स्वयं तमितासे प्यार करता है, लेकिन तमिता है कि हारितकी दीवानी है।"

बंका बोला, "बड़ी पेचीदा प्लॉट है, याद रखना भी मुश्किल है।"

"बिलकुल नहीं। एक नम्बर चित्र देखो।"

चिगड़ी बोली, "ओह, तुमने कर क्या डाला मामा ! यह तो इटर्नल ट्रायेंग्लका बाप हो गया—होप्लेस हेक्सेगॅन ! क्यों मामा, बीचमें यह क्या बनाया है, चमगीदड ?"

"चमगोदड़ नही, आप है स्वयं कन्दर्प। अतनु जो है, इसलिए उनके अग-प्रत्यंग साफ़ दिखायी नही पड़ रहे है। लेन्ससे देखो तो पता लगेगा कि उनके दोनों हाथोंमें धनुष है जिसकी प्रत्यंचाका एक प्रान्त खुला है और उसीसे दाहिने-बाँयें ऊपर-नीचे सपासप चाबुक चला रहे है और प्रेमचक्र सन-सन घूम रहा है।

चिगड़ी बोली, "सन-सन पुरानी भाषा है। या तो सायँ-सायँ लिखो या शीं-शीं।"

"ठीक है। प्रेमचक्र सांय-सांय या शीं-शीं घूम रहा है। इस चक्रके बाहर एक और मूर्ति है : वे है भुण्डिल मुनि। ब्रह्मचर्य-काल पूरा करनेके बाद गृहस्थ बननेके लिए कुछ दिनों तक इन्होने कोशिश की थी, लेकिन कोई ऋषिकन्या इनसे ब्याह करनेको तैयार न हुई क्योंकि भुण्डिल जैसे मोटे थे वैसे ही गम्भीर, और उनकी उम्र भी करीब चार हज़ार बरसकी थी : यानी इस कलियुगके हिसाबसे चालीस बरसकी। अन्तमे वह समझ गये कि यह दृश्यमान विश्व निरी माया है और नारी उस मायासागरके बुल्ले-जैसी है : उसका आकार है पर वस्तु वह नहीं। तब वे आश्रम छोड़ जगलमे जा नाककी नोकपर दृष्टि गड़ाये कठोर तपस्यामे लीन हो गये। दो नम्बर

चित्र देखो।"

"चिगड़ी बोली, "मामा, इस बार हम लोग अपने वार्षिक उत्सवपर तुम्हारी कहानीका नाटक प्रस्तुत करेंगे। सरसी-दीदी अगर भुण्डिल मुनिका पार्ट अदा करें तो कितना सुन्दर लगेगा! मूँछोंकी ज़रूरत नहीं, ज़रा-सी दाढ़ी लगा देनेसे ही काम बन जायेगा। उसके बाद क्या हुआ मामा, पढ़ो।"

"एक समय वसन्त-समागमसे सारी वनभूमि रमणीक बन उठी थी; अशोक, किंशुक, कुरुवक, पुन्नाग आदि वृक्ष पुष्प-भारसे नमित हो गये थे; भ्रमरकी गूंज और कोयलकी तानसे बूढ़े-बूढ़े तपस्वी तक तग आ गये थे; तभी एक मधुर अपराह्णमें समिता, जमिता और तमिता, तीनों सहेलियाँ गोमती-किनारे हवा खाते हुए मनकी बातें बतिया रही थी। ठीक उसी समय तीसेक हाथ पीछे आम्र-काननकी ओटमें हारित, जारित और लारित घासपर बैठे गप्प लड़ा रहे थे।"

चिगड़ीने टोक दिया, "ऋषिकन्याओंका वेश कैसा था यह नहीं लिखा मामा?"

"लिखा है, लिखा है।—सत्ययुगमें वस्त्र बड़े ही अनमोल थे। ऋषि-कन्याएँ एक सीधा-सादा मोटा वल्कल पहनती थीं और एक महीन-सा वल्कल ऊपर शरीरपर तिरछे ढंगसे बाँधती थीं!"

चिगड़ी बोली, "बड़ी आर्टिस्टिक पोशाक है! क्यों मामा, भला स्टेजपर अगर ब्राउन रंगकी जॉर्जेट पहनी जाये तो क्या वह वल्कल-सी नहीं लगेगी?"

"बिला शक लगेगी। उसके बाद तो सुन!—ऋषिपत्नियोंका वेश भी ऐसा ही था। सिरपर घूँघट काढ़नेका कोई सरंजाम न रहता, लज्जा प्रकट करनेकी ज़रूरत पड़ती तो ज़रा-सी जीभ निकालकर दिखा देती थीं। ऊँचे क्लासके मुनि-ऋषि, जो राग-द्वेष, शीतोष्णादि द्वन्द्वोंसे ऊपर उठ जाते थे, उन्हें किसी चीजकी भी जरूरत नहीं पड़ती थी, लेकिन वे लोकालय नहीं

जा पाते क्योंकि देखते ही कुत्ते भूँकते थे। साधारण ऋषि वल्कल ही पहनते थे, पर लडके-बच्चोंके लिए बेलकी लकड़ीके लंगोटकी व्यवस्था थी।

बंकाने पूछा, "बेलकी लकड़ीका ?"

"हाँ बड़े-बूढे कहते थे, तुम लोगोंका यह समय ब्रह्मचर्यका है, बहुत विलासिता ठीक नही। तुम लोग वेद पढोगे, गायें चराओगे, लकड़ी काटोगे, बन-जंगलोंमे हरदम घूमते-घामते वल्कल फाड़ डालोगे। कहाँतक जुटावें ? उससे अच्छा कि काठका लंगोट पहन लो, तुम्हारे बेटे-पोतों तक टिका रहेगा।"

बंकाने कहा, "लेकिन काछ कैसे लगायेंगे ?"

"क्या मुश्किल ! तीन नम्बर चित्र देखो।"

चिंगड़ी बोली, "अच्छा, रोल-टॉप टेबुलकी तरह !"

"बिलकुल सही। चिंगड़ी, तेरा दिमाग़ खूब साफ़ है।"

चिंगड़ी बोली, "लेकिन मामा, तुम्हारी इस कहानीका नाटक नहीं खेला जा सकेगा।"

बंकाने कहा, "तू बेलकी लकड़ीके बारेमे सोच रही होगी ? जारुलकी लकड़ीसे भी काम चल जायेगा, फुट-लाइटसे बिलकुल बेल-सा लगेगा।"

चिगड़ी बोली, "पढ़ते चलो मामा।"

"जारित कह रहा था, साथी, अब तो प्राण रहता नहीं।

"लारित बोला, यही तो देख रहा हूँ कैसी जिद्दी हैं ये लड़कियाँ। अरे अगर हमसे प्यार ही करती है तो फिर इतनी गपड़चौथ क्यों ? लेकिन एक बात कहे बगैर नही रहा जाता। तमिताके लिए मर रहा हूँ भइया, लेकिन यह सोचते हुए कि जमिता भी मुझे चाहती है मुझे आनन्द होता है। हाय, अगर दोनों ही मिल जाती !

"हारितने गरदन हिलाते हुए कहा, बिलकुल ठीक। पंचशरकी कैसी विचित्र लीला है !

"लारित बोला, क्यों हारित भाई, ज़बर्दस्ती पकड़कर उनसे राक्षस-

विवाह कर लें तो कैसा हो ?

"हारित बोला, वाह रे बेवकूफ़, हम लोग ऋषि-सन्तान जो है ! या तो ब्राह्म-विवाह या गान्धर्व-विवाह इसके अलावा दूसरी विधि ही नहीं है। चल उन्हे एक बार समझाकर देखें।

"उधर नदीके किनारे टहलती हुई जमिता कह रही थी, सहेली, जवानी तो बीती ही जा रही है !

"तमिताने जवाब दिया, जाये तो जाये पर द्विचारिणी नहीं बन सकतीं। दिल जिसे चाहता नहीं उसे माला कैसे पहनाऊँ ? लेकिन लारित बेचारेके लिए मुझे सचमुच दुःख होता है। मुझे वह चाहता ही क्यों है ?

"जमिता बोली, अगर इतनी ही हमदर्दी है तो गलेमे माला क्यों नहीं डाल देती ? मेरी भी कैसी मुसीबत है ! क्यों उस दिन बनारसी वल्कल पहन बैठी ? जारित बेचारेकी आँखें देखती ही रह गयीं। लेकिन लारित-दाकी क्या कोई पसन्द ही नहीं ? न जाने कैसा आदमी है !

"तमिता बोली, बिगड़ती क्यों हो जमितादी ? जारितदाको मैं कोई छीने थोड़े ही ले रही हूँ। उसे जीवन-भर भाई-दादा कह सकती हूँ, देवरजी कह सकती हूँ; पर प्राणनाथ तो सिर्फ़ हारितदाको ही कह सकती हूँ।

"एक उसाँस छोड़ती हुई समिता बोली, पर हारितदा तो मुझे ही चाहता है। कैसी मुसीबतमे फँसे है !

"अचानक उसी समय तीनों मित्र वहाँ आ पहुँचे। हारितने पूछा, क्यों जो वरवर्णिनियो, क्या हो रहा है ?

"तमिता ज़रा जिह्वाविलास करती बोली, आइए, आइए, नमस्कार !

"हारितने कहा, अब और कितने दिन कष्ट दोगी, तुम्हे दया नहीं आती ? समिते, एक बार हाँ कर दो !

"जारित भर्राये स्वरमे बोला, जमिते, कुछ तो बोलो !

"लारितने हाँक लगायी, तमिते, मैं तुम्हारे लिए मर रहा हूँ प्रिये !

"तमिता ज़रा उस ओरको खिसककर बोली, ओ हारितदा, देखो

न क्या कहता है !

"हारित बोला, कुछ बेजा नहीं कह रहा। तुम लारितको धन्य करो, जमिता जारितको करे और समिता मुझे।

"समिता बोली, ऐसा हो हो नहीं सकता। अपना दिल मैं सौंप चुकी हूँ, उसमे कोई हेर-फेर नहीं हो सकता।

"हारित बोला, क्या कोई समझौता नहीं हो सकता ? भगवान् कन्दर्प से कहा जाये कि वह बीच-बिचौवल कर दें।

"जमिता और तमिता पहले इस प्रस्तावपर राज़ी न हुईं। लेकिन समिताने उन्हे समझा दिया—देखा तो जाये कि कन्दर्प करते क्या है, हम लोग कोई अपना इरादा तो बदल नहीं रहे हैं !

"कन्दर्प निकट ही थे, पाँच मिनिटके आवाहनपर आकर दर्शन दे दिया। सब सुनकर बोले, देखो यह झगड़ा तुम लोग आपसमे सुलझा लो। मेरी शक्ति ही क्या ! प्रजापतिकी आज्ञासे ये पाँचों बाण मुक्त करता हूँ, इनकी चोट अगर तुम्हे पसन्द न हो तो मैं लाचार हूँ !

"लारितने सुझाया, आप प्रेमचक्रमे एक उलटा चक्कर लगा दीजिए न !

"हारितने कहा, वाह रे गदहे ! उससे तो मुसीबत उलटी हो जायेगी, प्रेमचक्र दक्षिणावर्त्त न घूमकर वामावर्त्तमें घूमेगा : मैं तमिताको चाहने लगूँगा, तमिता लारितको चाहने लगेगी—इस तरह दशा विपरीत हो जायेगी और उससे किसी भी पक्षकी मनोकामना पूरी न होगी !

"समिताने कन्दर्पसे कहा, आप बडे ही वाहियात आदमी है, छह मासूम तरुण-तरुणियोंको नाहक़ चक्कर लगवा रहे है। इसमें कौन-सा मज़ा मिल रहा है आपको ?

"जमिताने गरदन टेढ़ी करके कहा, हम लोग भी शाप दे देंगे तब मज़ेका पता चलेगा !

"तमिता घूँसा तानकर बोली, दो-चार जमा दो न लारितदा !

"गड़बडी देखकर कन्दर्प झट वहाँसे भाग खड़े हुए।

"साँझ बीतनेको आयी तो हारित बोला, आज हम लोग बिदा लें, रातको बृहदारण्यक पूराका-पूरा कण्ठस्थ करना है। कल तिपहरको फिर आकर हम अपनी अर्जी पेश करेंगे।

ऋषिकुमारोंके चले जानेके बाद समिताने काफ़ी देर सोचने-विचारनेके बाद कहा, देखो कन्दर्पके जीवित रहते इस प्रेमचक्रका चक्कर रुकेगा नही। चलो, हम लोग महादेवके पास चलें और अनुरोध करें कि वे फिरसे मदन-दहन करें।

"जमिता बड़ी हिसाबी लड़की थी। बोली अँहँ। पञ्चशरकी भस्म कहीं भुवन-भरमे फैल गयी तो और मुसीबत होगी: जहाँ-तहाँ कुकुरमुत्ता-सा प्रेम उग खड़ा होगा। एकदम समाप्त न कर देने तक छुटकारा नही।

"तमिताकी हाज़िर-दिमाग़ी सबसे चढ-बढ़कर। वह बोली, भगवान् राहुसे कहा जाये। वह चट लील जायेंगे।

"समिता और जमिता उछल पड़ी और बोलीं, यही सबसे बढ़िया होगा। चलो, अभी राहुके पास चलें।"

बंका बोला, "कहानी न घण्टा! शास्त्रकी बात ही माने लेता हूँ कि राहु एक ग्रह है जो आकाशमे रहता है। लेकिन ये लड़कियाँ उसके पास कैसे जा पायेंगी? सब गाँजेकी उड़ान है!"

चिगडीने धमकाकर कहा, "क्या कहते हो, छोटदा! कुछ यह भी ख़याल है कि बात सत्ययुगकी है? चलो, पढ़ते चलो मामा।"

"राहु उस समय आकाशके एकान्तमें बैठा पञ्चाग देख रहा था। लड़कियोंको देखकर पूछा, क्या चाहिए? झट बताओ, मेरे पास समय कम है।

"समिताने हाथ जोड़कर कहा, प्रभु हम लोग प्रेममे पड़े है।

"राहु, मुसकरा पड़े। बोले, क़समसे, सच? पर मुझसे प्रेम क्यों? मै तो शून्य-पथपर दौड़ा करता हूँ, चाँद-सूरज खाता हूँ—प्रेमका मैं जानता ही

क्या हूँ ? देखती हो हो मेरे पास मुण्ड-ही-मुण्ड है : इससे क्या प्रेम हो सकता है ! प्रेमके लिए तो इन्द्र आदि देवताओंके पास जाओ, उनका यही पेशा है।

"समिताने निवेदन किया, प्रभु, आपको हृदयार्पण कर सकें ऐसा सौभाग्य हम लोगोंका कहाँ। हम लोगोने मनुष्यसे ही प्यार किया है, पर कन्दर्प महाराज सभी कुछ उलटे-पुलटे दे रहे है। उनका जबतक ध्वंस न हो तबतक हमे चैन नहीं। आप कृपया उन्हे लील जाइए।

"राहुने सिर हिलाते हुए कहा, बरदाश्त नहीं होगा, बरदाश्त नहीं होगा। चाँद तक मै सटक नही पाता हूँ, लीलते-न-लीलते मुँहमे-से खसक जाता है। कन्दर्पको खानेपर तो पेट ही भारी हो जायेगा।

"तमिता बोली, आपके पास पेट तो देख नहीं रही हूँ।

"राहुने घुडकी दिखाते हुए कहा, हाँ तुझे सब मालूम है जैसे ! आध्यात्मिक उदरके बारेमे सुना है कभी ? मेरे पास वही है।

"जमिताने कहा, तो फिर प्रभु, हम तीनोंका भक्षण कर लें। अब जीते रहनेमे कोई सुख नही।

राहुने उदास मुसकराहट बिखेरते हुए कहा, हाज़मेकी वह ताकत क्या अब रह गयी ? सिर्फ़ हलका पथ्य खाकर जिन्दा हूँ : कभी जरासे चाँदके लच्छे तो कभी गरम-गरम एक गस्सा सूरज। अच्छा, पासको तो आओ, तुम-सबका ज़रा गाल तो चाट ही लूँ !

"तमिता बोली, भला कैसी बातें करते है !

"तो करने क्या आयीं ? जाओ भागो, मेरे भोजनकी लग्न आयी।

"राहुने अपनी लपलपाती मूँछोंसे झट पूर्णचन्द्रको पकड़ा, और उसपर ज़रा मक्खन लगाकर दाँत गड़ा दिये। चार नम्बर चित्र देखो। लड़कियाँ वह करुण दृश्य सह न सकीं, भाग खड़ी हुई।

"महामुनि औड़व नैमिषारण्यके बड़े आश्रमके कुलपति है। उनके दस

हज़ार शिष्य हैं और बीस हजार धेनु। यज्ञशालामें रोज़ ढाई-सौ मन नीवार धानका चावल पकता है और तीन-सौ टोकरी उडुम्बरकी सब्ज़ी। औड़व बड़ी ही गम्भीर प्रकृतिके ऋषि है, आश्रमवासी उनकी धाकसे काँपते है।

"सवेरेको हारित, जारित और लारित वेदाध्ययन करने आये। औडव-ने जलद गम्भीर स्वरमे पुकारा, हारित!

"जी।

"यह सब क्या सुन रहा हूँ? तुम लोग आश्रमकन्याओंके पीछे-पीछे घूमते हो? जानते हो, यह तपोवन है, खेल-कौतुककी जगह नहीं? यह समय तुम लोगोंके ब्रह्मचर्यका है इसका भी कुछ खयाल है?

"सत्ययुगमे लोग प्रायः झूठ नही बोलते थे। हारितने हाथ जोड़कर स्वीकार किया, प्रभु हम लोगोंने अपराध किया है!

"तो प्रायश्चित्त करो। तीनों गोमुखीतीर्थ चले जाओ, निरन्तर गो-सेवा, सद्योजात गोमयका आहार, गुनगुने गोमूत्रका पान—यही व्यवस्था है। इससे चित्तशुद्धि, पित्तशुद्धि, और पापमोचन सब एक साथ होगा। साल-भर नैमिषारण्यकी चौहद्दीमे मत आना।

"हारित, जारित और लारित गुरुदेवकी चरण-वन्दना कर विषाद-भरे मनसे बिदा लेकर चल दिये।

"एक दिन प्रातःकाल कन्दर्प भगवान् हिमालयकी तलहटीमे कही एक किन्नर-मिथुनका शिकार करने गये थे। घूमते-घामते अचानक उन्होने देखा कि एक बहुत बडी दीमककी बाँबी टीले-सी उठी हुई है और अनगिनत कीड़े उसके ऊपर लिजलिजा रहे हैं। कन्दर्पको कुछ सन्देह हुआ। तोरके दो-एक कोचे मारते ही उस बाँबीकी पन्द्रह इंच मोटी मिट्टीकी तह खिसक गयी, साथ ही भोतरसे मनुष्यका क्षीण स्वर सुन पड़ा—अहा कुसुमशर कितना असह्य होता है!

"कन्दर्प बोले, भुण्डिल मुनिका गला सुन रहा हूँ लगता है?

"वल्मीकमें-से निकलकर भुण्डिल बोले, मेरी तपस्या क्यों तोड़ी तुमने?

भस्म कर दूँ तुम्हे ?

"कन्दर्प बोले, अरे ठहरो भी महाराज, गुस्सा ज़रा टालो। कितने तो दुबले हो गये हो ! लो, यह मकरन्द इतना-सा सेवन करो। क्यों, अब कुछ दम आया ? शक्ति लग रही है ! बहुत खूब, लो थोड़ा और लो। हाँ, बस। यह तपस्या हो किसलिए रही थी ?

" भुण्डिलने उत्तर दिया, तपस्या लोग किसलिए करते है ? मोक्ष पानेके लिए।

"अब तपस्या रहने दो। कुछ दिनोंके लिए छुट्टी ले लो, थोड़ी मौज उड़ाओ।

"भुण्डिलने सोचकर देखा कि ऐसा तो सभी महामुनि करते आये है : पराशर, विश्वामित्र, व्यासदेव। उसमे दोष क्या ? बोले अच्छा, तैयार हूँ, पर साल-भरसे ज़्यादा नही।

"कन्दर्प बोले, बस ? खैर, ऐसा ही होगा। मै वर दे रहा हूँ, भुवन-मोहन रूप धारण कर लो। साल-भर बाद अपनी यही मूर्त्ति वापस पा जाओगे; तब जितनी चाहे तपस्या करना, कोई बाधा न देगा।

"भुण्डिलके सिरसे लेकर पैर तक तरुणाईका एक प्रवाह दौड़ गया। खिचड़ी जटा खिसककर सिरपर भौंराले-घुँघराले बाल उग आये। एक अदृश्य उस्तरेने सर्र-से सारा चेहरा रोयाँशून्य कर दिया—सिर्फ़ दोनों ओर दो बड़ी-बड़ी घनी कलमे रह गयी। गन्दे हिलते हुए दाँत पट-पट झड़कर दोनों जबड़ोंमे दन्तरुचिकौमुदी खिल पड़ी। कटिसे शुभ्र पट्टवास लिपट गया, कन्धेपर पीत उत्तरीय आ झूला, गलेमे मल्लिकाकी माला, हाथमे मोहन मुरली और अंग-अंगपर दिव्य कान्तिका पलस्तर चढ़ गया। भुण्डिलने एक छलाँग मारी और हुँकारा, भो विश्व चराचर, शृण्वन्तु मै हूँ, तुम लोग भी हो : अबकी बार देख लूँगा।

"कन्दर्प बोले, बड़ी पक्की बात ! अच्छा, अब उस सुन्दर नैमिषा-रण्यकी ओर तो नज़र दौड़ाओ।

"भुण्डिलने ऐसा ही किया। खुशीसे डगमगाते-से बोले, अहा!

"क्या देखा?

"तीन परम सुन्दरी तरुणियाँ गोमतीमें नहा रही हैं।

"प्राणोंमें पुलक आ रहा है?

"आ रहा है।

"दिलमे तरंगें उठ रही हैं?

"उठ रही है।

"चित्त चुलबुला रहा है?

"हाँ।"

चिगड़ी बोल पडी, "मामा, इस जगहपर बड़ा ग्रैण्ड लिखा है!"

"हँऽऽहँऽऽ अभी क्या है! आगे और भी मधुर और मर्मस्पर्शी पायेगी, सुन—

"कन्दर्प बोले, भुण्डिल।

"जी।

"कौन-सी पसन्द आयी?

"तय नहीं कर पा रहा हूँ।

"अच्छी बात! वह जो तन्वी दीर्घवदना, कमल-कोरकवर्णी, राज-हंसीकी-सी ग्रीवावाली है—वह?

"अति सुन्दर!

"और जो सुमध्यमा, चम्पकगौरी, मदमुकुलिताक्षी, भरावदार देह, लाल-लाल होंठोंवाली है—वह?

"क्या कहना है!

"और वह तीसरी जो नाटे क़दकी, साँवली, चंचला, चकितमृगनयना, पीनांगी, पुष्टकपोला है—वह?

"वह भी वढ़िया है।

"बताओ तो, किसे चाहते हो?

"जी, तीनोंको ही।

"कन्दर्पने भुण्डिलकी पीठ थपथपायी और कहा, शाबाश भुण्डिल, शाबाश! अब देर मत करो, सीधे नैमिषारण्य चले जाओ और गोमतीके किनारे बैठकर अपनी यह बाँसुरी टेरो।

"समिता, जमिता और तमिता तिपहरको गोमती किनारे बैठी नैमिषारण्यका नामी भुना चिउड़ा खा रही थीं। अचानक बाँसुरीकी एक करुण और बेसुरी-सी तान सुन पड़ी। समिताने इधर-उधर नजर दौड़ायी तो देखा कि एक आदमी कश्यप घाटपर बैठा उनकी ओर देखते हुए बाँसुरी बजा रहा है।

"समिता बोली, कौन है यह तरुण? पहले तो कभी देखा नहीं।

"जमिता बोली, बाँसुरी क्यों बजा रहा है? कैसा उदास राग छेड़ा है!

"तमिता बोली, पर देखनेमें बहुत सुन्दर है।

"समिताने पूछा, तेरे हारितदासे भी सुन्दर?

"तमिताने भौंहे नचाते हुए कहा, तुम भी कैसी बातें करती हो दीदी? हारितदा, जारितदा और लारितदासे सुन्दर क्या कोई हो ही नही सकता?

"लड़कियाँ अनमनी होकर कनखियोंसे देखने लगीं।—क्यों चिंगड़ी, कनखियोसे देखना कैसे खींचा जाता जानती है?"

चिंगड़ो बोली, "बहुत आसान। एक अण्डा-सा बनाओ। सिरपर मनमाने बाल बना दो। माथेपर निन्यानबे लिख दो, उसके नीचे एक करवट लिये हुए विसर्ग और उसके नीचे पाँच। अगर दाँत दिखाना चाहते हो तो चवालीस बिठाइए, और अगर मोना लिज़ाकी-सी मुसकराहट चाहते हो तो आठ लिखो।

"वाह, ठीक। पाँच नम्बर चित्र देखो। उसके बाद सुनो।—"

"एक बरस देखते-देखते बीत गया। हारित, जारित और लारित

प्रायश्चित्त पूरा करके तीव्र आशा और उत्कण्ठा लिये नैमिषारण्य लौटे। उन लड़कियोंके क्या हालचाल हैं ? क्या अब भी वे लोग अपनी ज़िदपर अडी हैं ? इस एक बरसके विरहसे भी क्या वे प्रेमका सीधा रास्ता ढूँढ़े नहीं पा सकी हैं, क्या उनके मनमें प्रतिदानकी स्पृहा अब भी नहीं जागी ? हो भी सकता है !

"लेकिन जो समाचार उन्हे मिला वह दिलके टुकड़े-टुकड़े कर देनेवाला था। समिता, जमिता और तमिता तीनोंने ही भुण्डिलको माला पहना दी थी। हाय रे कन्दर्प, क्या यही तेरे मनमे था ? प्रेमचक्रपर इतने दिनोंसे यों ही चक्कर लगवाता रहा ? हाय-हाय, क्यों उन लोगोने लड़कियोंके ही मतपर हामी नहीं भर दी ! इस बुरेसे तो वह भी भला था। और इन तीनों लड़कियोंकी रुचिकी भी बलिहारी—अन्तमे यह भुण्डिल !

"हारितने सिर पीटते हुए कहा, ओह स्त्री-चरित्र कितना कुटिल है ! स्त्री जातिपर भूले भी पतियाना नहीं चाहिए।

"जारितने हाथ हिलाते हुए कहा, हाँ एकदम वाहियात !

"लारित अपनी दाढ़ी नोचते हुए बोल पड़ा, तीन सालसे नाहक ही चक्करपर-चक्कर कटवा रही थीं !

"तीनों उद्भ्रान्त प्रेमी भुण्डिलके घरकी ओर बेतहाशा दौड़े। इस धूर्तकी पिटन्नस करके मनकी जलन मिटानी होगी, फिर चाहे महामुनि औड़व भस्म ही कर दें और तिर्यग्योनिमे भेज दे !

"भुण्डिलकी कुटियामें कोई न था, सिर्फ़ आँगनमे एक आश्रम-व्याघ्री तृण-भोजन कर रही थी और तीन मृगछौने उसका स्तन-पान कर रहे थे। यह स्निग्ध शान्त आश्रम-सुलभ दृश्य देखकर ऋषिकुमार होशमे आये कि अहिंसाके आगे और सभी कुछ बेकार है। हारितने शेरनीको ज़रा चुमकारा, फिर अपने साथियोंसे कहा, जो होना था सो तो हो चुका, सभी कहीं तो दैव ही बलवान् है। का तव कान्ता कस्ते पुत्रः ! अब व्यर्थकी ऋषिहत्या करके क्या बनेगा; चलो हम लोग गोमुखी तीर्थ हो लौटकर ब्रह्म-प्राप्तिकी

कोशिश करें।

"संसारसे वीतराग होकर वे लोग फिर उत्तर दिशामें चल पड़े। थोड़ी दूर जाते-न-जाते देखते क्या है कि एक बरगदके नीचे एक वल्मीकका ढूह है और समिता, जमिता और तमिता उसपर अनवरत झाड़ू चला रही है।

"एक लजायी हुई मलिन मुसकराहट बिखेरती तमिता बोली, आइए, आइए नमस्कार! कुशलसे तो है? कब आये?

"हारित बीचमें ही पूछ उठे, भद्रे, यह क्या हो रहा है?

"सिर झुकाये समिताने जवाब दिया, वह इस दीमकोंके ढूहमें है। कल शामतक स्वाभाविक दशामें थे: कितनी गपशप, कितनी हँसी, कैसे-कैसे गाने! पर जैसे ही सूर्यास्त हुआ वैसे ही अचानक उनका सारा शरीर सिहरा और क्षण-भरमें शक्ल-सूरत काली मोटी और भोंडी हो गयी, साथ ही सिरपर ढेरों जटाएँ और मुँह-भरमें भद्दी दाढी और मूँछें। हम तीनों तो डरकर भागीं। उसके बाद ढूँढ़ते-ढूँढ़ते देखा कि सारा बाह्यज्ञान खोये तपस्यामें यहाँ लीन है। बहुत पुकारनेपर एक बार ज़रा आँखें खोलकर देखा और धमकाते हुए कहा, खबरदार, भस्म कर दूँगा। फिर देखते-देखते सारे बदनपर दीमक छा गयी और मिट्टीका यह पलस्तर चढ़ गया। देखिए न एक ही दिनमें सिरसे पैरतक दब गये है। हम लोग और करें भी क्या, एक-एक झाड़ू लिये निरन्तर दीमक हटा रही हैं।

"हारित बोला, नहीं नहीं, ऐसा मत करो। इससे उनकी तपस्यामें विघ्न होगा। दीमक बड़ा उपकारी प्राणी है, ऋषि-मुनियोंकी तपश्चर्याका प्रधान अङ्ग: बाह्य विषयोंको रोककर मनको अन्तर्मुखी करनेमें इसका सानी नहीं।

"जारित बोला, इसके अलावा कहीं पलस्तर टूटनेपर हवा अन्दर चली जायेगी तो बिगड़कर भस्म ही कर डालेंगे।

"लारित बोला, ओफ़्, कितना मायावी और हृदयहीन तपस्वी है: तीन-तीन तरुणियोंको चौपट कर डाला।

"तमिता सिसकती हुई बोली, अजी सब सत्यानाश उस बाँसरीने किया।

"जमिताने गद्‌गद कण्ठसे पुकारा, ओ हारिद्दा, जारिद्दा, लारिद्दा !

"हारित बोला, डरती क्यो हो, हम तीनो ही यहाँ है। उन्हे अब तंग मत करो, कल्पान्त तक समाधिस्थ होकर रहे। तुम लोग हमारे साथ हिमालय चलो, वही आश्रम बनायेंगे।

"लेकिन हारितदा, हम तो सती है।

"हम लोग कहाँके असत् है। चल-चल बेला ढली जा रही है !"

बंका बोला, "रुके क्यों मामा, इसके बाद ?"

"इसके बाद और है नही। तेरी मामीने आगे लिखने न दिया।"

"ओह, मामीको भी न जाने कब अक़्ल आयेगी ?"

चिंगड़ी बोली, "मामीकी सच बडी ज्यादती है। सत्ययुगमे क्या नहीं हो सकता था ? बहरहाल, तुम्हे तो मामा याद होगा ही, जबानी बता दो, हम लोग लिखे ले रहे है।"

"अँऽ हुँऽ, एकदम खिचड़ी बन गयी है, तेरी मामीकी धमकीके मारे !"

बंका बोला, "तुम्हारे पास मॉरल करेज बिलकुल नही। लाओ मुझे आगे मैं ही कुछ करूँगा।"

# खरा सोना

सर्वज्ञ पिनाकीने कहा, "प्लेटॅनिक लव कैसा होता है जानते हो ? दो हृदयोंकी परस्पर गाढ़ी प्रीति जिसमे स्थूल सम्बन्ध कोई नही है। चण्डीदासने जैसा कहा है : "रजकिनी प्रेम निकषित हेम काम-गन्ध नाहि ताय।"

पिनाकी बाबू उम्रमे बड़े है इसलिए अड्डेके सभी लोग उनकी इज्जत करते है। लेकिन उपेन दत्त तार्किक व्यक्ति है, पिनाकीकी सर्वज्ञता उनसे सहन नही होती। बोल पड़े, "क्यों सर्वज्ञजी, दो मित्रोमे अगर गाढ़ी प्रीति हो तो क्या आप उसे प्लेटॅनिक लव कहेगे ?"

पिनाकी बाबू बोले, "ऐसा क्यों कहूँगा, यह सम्बन्ध स्त्री-पुरुषमे होना चाहिए।"

"ओः, ऐसा कहिए। जैसे पोते और दादीमे, नातिन और बाबा मे, बुआ और भतीजेमे। इनमे अगर गहरी प्रीति हो तो उसे प्लेटॅनिक कहिएगा न ?"

"ओफ़् ओः, तुम तो महज़ बेकारकी बहस करते हो ! समझाता हूँ, लो सुनो। मान लो, एक पुरुष है एक नारी। उनके वैध या अवैध मिलन में कोई बाधा नहीं। फिर भी वे दिलके प्रेमसे ही सन्तुष्ट है। यह हुआ प्लेटॅनिक प्रेम।"

"अच्छा। मान लीजिए तीस सालका एक सुदर्शन गुरु और बीस बरस की कोई सुन्दरी शिष्या। ऐसे क्षेत्रमे मामूली प्रेम अकसर हुआ करता है। पर मान लीजिए गुरु देखनेमे बदसूरत है और उनकी पत्नी बड़ी खूबसूरत है, या शिष्या कुरूपा है पर उसका मति बड़ा सुदर्शन है। गुरु और शिष्या मे मामली प्रेम नही हआ लेकिन भक्ति और स्नेह काफ़ी हआ। इसे तो

प्लेटॅनिक लव कहिएगा न ?"

सर्वज्ञ पिनाकी बिगड़कर बोले, "जाओ तुम्हारे साथ बात नहीं करना चाहता हूँ। किसी बातको गहराईसे समझनेकी इच्छा नहीं है, सिर्फ़ हँसी-मखौल !"

सिर खुजलाते हुए उपेन दत्त बोला, "जी नहीं, मैं सिर्फ़ एक अच्छी-सी डेफ़िनीशन ढूँढ़ रहा था।"

ललित सान्यालने कहा, "अजी उपेन, मैं बहुत सीधे ढंगपर बताये देता हूँ। प्लेटॅनिक प्रेमका अर्थ है बेलाग प्रेम, जैसे राजलक्ष्मी-श्रीकान्तका सम्बन्ध। क्यों यतीश दादा—तुम तो बहुत बडे साहित्यिक हो, काफ़ी पढाई-लिखाई भी कर चुके हो—तुम ही समझा दो न प्लेटॅनिक प्रेम क्या चीज है ?"

यतीश मित्रने कहा, "सब बातें क्या समझायी जा सकती है ? जैसे ब्रह्म : वह तो शब्द और मन दोनोंके परे है। धर्म, सौन्दर्य, रस, कला : इन्हे भी साफ़-साफ़ समझाया नहीं जा सकता। लाल रंग, मीठा स्वाद, मछाँध : ये भी अनिर्वचनीय है, इन्हे समझाकर बताना असम्भव है, उदाहरण ही दिये जा सकते हैं। प्रेम भी ऐसा ही कुछ है।"

उपेन बोला, "अच्छी बात है, तो उदाहरण देकर ही समझा दो कि प्लेटॅनिक लव क्या है।"

सर्वज्ञ पिनाकी बोले, "उदाहरण तो दिया ही था—रामी और चण्डीदास।"

यतीश बोला, "वह तो केवल चण्डीदासकी अपनी उक्ति है, उन दोनों का सम्बन्ध वास्तवमें कैसा-क्या था इसके कोई गवाह-सबूत तो है नहीं। अच्छा, मैं बातको ज़रा साफ़ करनेकी कोशिश करता हूँ। प्रेम या लव जो कुछ भी इसे कहा जाये उसका अर्थ बड़ा व्यापक और अस्पष्ट है। हम लोग कहा करते हैं—ईश्वर-प्रेम, विश्व-प्रेम, देश-प्रेम, पत्नी-प्रेम, बन्धु-प्रेम। पण्डितोंके विचारसे बैंगन, टमाटर, आलू, मिरचा और धतूरा सब

एक ही श्रेणीमे आते है; क्योंकि इनके फूलों-फलोंके अंग-प्रत्यगमें समानता है, भले ही गुणोंमें भेद है। उसी तरहसे भक्ति, श्रद्धा, आदर, प्रेम, स्नेह ये सब भी एक ही जातिके हैं। लेकिन प्रेम कहते ही प्रायः नर-नारीकी आदिम आसंग प्रवृत्ति ही समझी जाती है। भक्ति-श्रद्धा अगर बैंगन-टमाटर हो, स्नेह अगर आलू हो, तो प्रेमको मिर्च कहा जा सकता है। प्लेटॅनिक लव या रजकिनी प्रेम उसीका एक रूप है, जैसे पहाड़ी बड़े मिर्चमे कड़ुवापन नहीं होता, सिर्फ़ मिर्चकी ज़रा गन्ध रहती है!

ललित बोला, "समझा। जैसे मछाँध न होनेसे कंगाली-भोजन या बंगाली-भोजन कुछ भी नहीं हो सकता उसी तरह, कामगन्ध न रहनेपर मामूली या प्लेटॅनिक कोई भी प्रेम होनेका उपाय नहीं है। चण्डीदासका निकषित हेम खालिस सोना नहीं है, कमसे-कम एक आना-भर मिलावट उसमें ज़रूर है।"

यतीश बोला, "तुम्हारी बात शायद सही हो, तनिक भी लिप्सा न होनेपर प्रेम उत्पन्न नहीं होता। इसका विचार मनोविद्गण करेंगे, मेरा कुछ भी कहना अनधिकार चेष्टा होगी। मैं एक अनोखा इतिहास जानता हूँ। घटनाका आरम्भ मामूली प्रेमके रूपमे होता है पर दैवयोगसे वह आगे चलकर प्लेटॅनिक बन जाता है। बात गम्भीर होते-होते अन्तमे ऐसे ढगसे पेचीदा बन जाती है कि प्लेटो या चण्डोदासके लिए भी अवर्णनीय हो जाये। पर फ्रॉएडके शिष्योंके लिए तो कुछ भी असाध्य नहीं, वे विश्लेषण करके किसी भी बातकी एक व्याख्या दे ही सकेंगे।"

उपेन बोला, "मैं व्याख्या सुनना नहीं चाहता, तुम वह इतिहास ही सुनाओ, यतीशदा।"

यतीश मित्र बोलने लगे—

"अखिल शीलकी याद है तुम लोगोंको? सात-आठ साल पहले मेरे साथ इस अड्डेमें दो-एक बार आया था। वह और मैं एक-साथ पढ़ते थे।

मैं बी० एल्० पास करके वकील बना और उसने एम्० ए० पास करके कॉर्पोरेशनमें नौकरी कर ली। कॉलेजमें उससे दो क्लास नीचे निरंजना तलापात्र पढ़ती थी। लड़की देखनेमें हसीन न भी कही जाये पर शक्ल-सूरतसे कुछ बुरी भी न थी। उसने टेनिस और वॉलीबॉलके खेलमें नाम किया था और उसकी सेहत भी बड़ी अच्छी थी। एक दिन अखिलने मुझसे कहा कि वह निरंजनासे प्रेम करता है और उससे शादी करना चाहता है। लेकिन अखिलकी बेवा माँ ब्राह्मण पुत्रवधू घर लानेको राजी न थी। निरंजनाके पिता सर्वेश्वर तलापात्रको भी आपत्ति थी। उन्होंने कहा कि ब्राह्मण कन्याके साथ बनिया दूल्हेका ब्याह होनेसे सन्तान चाण्डाल होगी—शास्त्रमें ऐसा लिखा है।

मैंने अखिलसे कहा, ऐसी दशामें जो सनातन मार्ग है उसीका सहारा लो। निरंजनाको रोने-धोनेको कहो, खाना कम कर दे और जहाँतक हो सके दुबली बन जाये। तुम भी घरपर उतरा-उतरा चेहरा लिये रहना, बाल रूखे-बिखरे हों, नाममात्र भोजन करो—भले ही रेस्तराँ जाकर बाक़ी पूरा कर लेना। उन दोनोंने मेरा नुस्ख़ा मान लिया और उसका नतीजा भी निकला। अखिलकी माँ और निरंजनाके बाप राजी हो गये। तय हुआ कि दो महीनेके बाद शादी होगी।

निरंजना कलकत्तेमें अपने चाचाके यहाँ रहकर कॉलेजमें पढ़ती थी। उसका पिता सर्वेश्वर तलापात्र बम्बई सरकारमें किसी बड़े पदपर थे और बीच-बीचमें कलकत्ता आया करते थे। भावी विवाहके स्वप्नमें अखिल कुछ दिन तक मस्त बना रहा। उसके बाद एक दिन वह मुझसे बोला, देखो यतीश, इधर कुछ दिनोंसे निरंजना न जाने कैसी गम्भीर बन गयी है—कारण पूछता हूँ तो कुछ बताती नहीं। अखिलको ढाढ़स देनेके लिए मैंने कहा, वह कुछ नहीं, माँ-बापको छोड़कर जाना होता है इसीलिए ब्याहसे पहले बहुत-सी लड़कियोंका जी ज़रा उचाट हो जाता है।

उसके बाद एक दिन शामको अखिल हड़बड़ाया हुआ मेरे पास पहुँचा

और एकदमसे बोला, भाई सर्वनाश होनेको है ! सर्वेश्वर बाबू अचानक कलकत्ते आकर निरंजनाको बम्बई ले गये है। निरंजनाके चाचाके पास गया था, वे गम्भीर बने हुए थे, मेरे एक सवालका भी जवाब न दे पाये – अच्छी तरहसे बोले ही नहीं। मैंने निरंजनाको अभी-अभी तार किया है, खत लिखकर भी जानना चाहा है—कि मुझसे कुछ भी कहे-सुने बगैर उसके ऐसे चले जानेका क्या मतलब है ? क्या उसका ब्याह अब किसी औरके साथ होगा ?

मैंने अखिलसे कहा, घबराओ मत, दो रोज़ सब्र करके देख ही लो न कि निरंजना क्या जवाब देती है। इसके चार-पाँच दिन बाद अखिल आकर बोला, यह लो निरंजनाकी चिट्ठी, इसका मतलब तो कुछ भी नही समझ पा रहा हूँ।

निरंजनाने अखिलको लिखा था—तुम्हारे साथ मेरी शादी हो ही नही सकती, मुझे तुम एकदम भूल जाओ। इसका कारण अभी नहीं बता सकूँगी, सिर्फ इतना-भर जान लो कि किसी दूसरे पुरुषसे भी मै शादी नही करूँगी। तुम मुझे खत मत लिखना, बम्बई भी मत आना, मैं तुम्हारे साथ मुलाकात नहीं कर सकूँगी। समयपर सब-कुछ जान ही लोगे।

अखिल पागल-सा हो गया। मैं उसे शान्त करनेकी कोशिश करने लगा, बोला, धीरज रखो, निरंजनाने बताया ही है कि बादमे सारी बातें वह स्वयं बता देगी। लेकिन अखिल धीरज धरनेवाला आदमी नहीं—निरंजनाको रोज़ खत लिखने लगा। किसी खतका कोई जवाब न आता। अन्तमे वह बम्बईकी ओर भागा। दस रोज बाद वहाँसे लौटकर उसने जो कुछ मुझे बताया वह बड़ा ही अजीब था।

सर्वेश्वर तलापात्रने पहले तो अखिलको भगा दिया था, निरंजनाके साथ मुलाकात करनेकी इजाजत ही नही दी। लेकिन अखिलका पीड़ा-भरा कण्ठ-स्वर सुनकर निरंजना दुमंज़िलेसे नीचे उतर आयी और पितासे बोली, बाबू, तुम दूसरे कमरेमें चले जाओ, अखिलसे जो कहना है मैं ही

कहे देती हूँ। बेचारेको नाहक तकलीफ़ देनेसे क्या फ़ायदा! सब कुछ खोलकर कह देना ही अच्छा होगा।

यह क्या निरंजना थी? उसे अब पहचानना मुश्किल था। सिरके बाल छोटे-छोटे कतरे हुए थे, पायजामा और कुरता पहने हुए थी, और लम्बाईमे छह इंचके लगभग बढ़ गयी थी। उसकी आवाज पहलेसे मोटी हो गयी थी, मूँछें निकलती आ रही थीं और छाती एकदम सपाट हो गयी थी। अखिल ताज्जुबसे उसे देखने लगा।

निरंजनाने जो रहस्य प्रकट किया वह यह था: निरंजना अब मर्दमे बदलती जा रही थी। सन्देह काफ़ी रोज़ पहले ही हुआ था पर तमाम लक्षण अब उभर रहे थे। डाक्टर किर्लोस्कर उसका इलाज कर रहे है। तरह-तरहके ग्लैण्ड खिला रहे है और हर्मोन्सका इंजेक्शन दे रहे है। उन्होने कहा है कि सम्पूर्ण रूपान्तर होनेमे अधिकसे-अधिक छह महीने और लगेंगे।

अखिलने व्याकुल होते कहा, नहीं निरंजना, तुम पुरुष मत बनो, नहीं तो मैं मर जाऊँगा। दवा-दारू बन्द कर दो बल्कि डॉक्टरसे कहो कि वे ऐसा इन्तज़ाम करें जिससे तुम्हारे नारीत्वकी रक्षा हो।

निरंजना बोली, ऐसा होनेका कोई उपाय नहीं है। मैं पुरुष बनकर ही जनमी थी, इतने दिनों लक्षण दबे पड़े थे, अब वे सब उभर उठे है। अगर इलाज बन्द करूँ तो भी मेरा परिवर्त्तन होता रहेगा—सिर्फ़ दो-तीन साल देर हो जायेगी। इससे तो झटपट मर्द हो जाना ही बेहतर है।

अखिलने रोते-रोते कहा, मेरा क्या होगा निरंजना? तुम मर्द ही बन जाओ पर तुम्हारा डॉक्टर क्या मुझे औरत नहीं बना सकता? तो भी हम लोगोंका मिलन सम्भव होता।

निरंजना बोली, बावले हो गये हो? तुम तो पूरमपूर मर्द बनकर ही जनमे हो, उसमे कोई फ़र्क़ नहीं आ सकता। यह किताब दे रही हूँ—फ़ाउलर्स 'सेक्स फ़ैक्टर्स'—पढकर देखना।

अखिल बोला, तुम औरत हो चाहे मर्द, तुम्हारे साथ मेरे दिलका सम्बन्ध तो बदल नही सकता। मैं तुमसे अलग नहीं हो सकता हूँ।

निरंजना बोली, मन छोटा मत करो। ऐसा इन्तजाम करूँगा जिससे तुम और मै एक साथ रह सकें। पिताजीने कहा है कि मेरा इलाज खत्म होते ही मुझे इन्दौर बैंकके सेक्रेटरीकी पोस्टपर बिठा देंगे। पिताजीकी बड़ी धाक है, मैं हठ करूँ तो तुम्हे भी वहींपर एक अच्छा-सा काम दे देंगे। तबतक तुम यहाँ हमारे हीं घर रहो।

अखिलने कलकत्तेकी नौकरी छोड़ दी और बम्बई जाकर निरंजनाके साथ रहने लगा। सर्वेश्वर बाबू दयावान व्यक्ति थे, एतराज़ नहीं किया। द्रुपद राजाकी लड़की शिखण्डिनी जिस तरह पुरुषत्व पाकर महारथी शिखण्डी बन गयी थी, निरंजना भी कई महीनेके बाद पूर्ण पुरुष मिस्टर तलापात्रके रूपमे इन्दौर बैंककी सेक्रेटरी बन गयी। सर्वेश्वर बाबूकी कोशिश से अखिल शील भी उसी बैंकका असिस्टेंण्ट सेक्रेटरी बन गया। दोनों एक ही साथ रहने लगे।

पिनाकी सर्वज्ञने कहा, "बिलकुल गाँजा-ही-गाँजा है! तुम क्या यह कहना चाहते हो कि इसीका नाम निकषित हेम है?"

यतीश मित्रने कहा, "जो नहीं, स्टेनलेस स्टील कह सकते है। सोने की आब नहीं, लोहेका ज़ंग नहीं और फ़ौलादकी धार भी नहीं।

उपेन दत्त बोले, "उसके बाद क्या हुआ?"

"उसके बाद सब उलट-फेर हो गया। एक दिन निरंजन बोला, "अजी अखिल, अब अकेलापन-जैसे कुछ सुहाता नहीं, दुनिया भी बड़ी अजीब और बोदी-बोदी लगती है। माँ और पिताजी दोनों शादीके लिए बार-बार कहते हैं। मैं बताऊँ सुनो।—सेठ मुलकचन्दकी दो जुड़वाँ बेटियाँ हैं—देखा है न? उनकी माँ बंगालिन हैं। दोनों ही लडकियाँ बड़ी अच्छी हैं। आओ, तुम एकसे, और मैं दूसरीसे, शादी कर लें। सेठजीसे पूछा

था, वे राजी है और दोनों लड़कियोंको भी कोई एतराज नहीं है।"

शादी हो गयी। लेकिन कुछ दिनोंके बाद ही दोनो बहनोमे भयंकर झगड़ा छिडा, मानो वे दोनों आपसमे सौत हों। इस कारण दोनों दोस्तोमे भी मन-मुटाव हो गया। अखिल दूसरी नौकरी पकड़कर दिल्ली चला गया, निरंजन इन्दौर ही मे रहा। अब वे एक-दूसरेका मुँह तक नहीं देखते है।

उपेनदत्त बोल पडा, "चलो, जान बची।"

# षष्ठीजीकी कृपा

षष्ठी-पूजाके बाद सुकुमारीने अपने बच्चेको पीढ़ेपर लिटाकर पतिको प्रणाम किया और उसके पैरोंकी धूल अपने सिरसे लगा ली। सुकुमारीकी उम्र चौबीस है और उसके पति गोकुल गोस्वामीकी चौवन।

गोकुल बाबूने कहा, "वाह क्या खूब तुम लग रही हो सुकू, मानो उर्वशी नहाकर समुद्रसे निकल आयी हो।"

सुकुमारीने हाथ जोड़कर कहा, "तुम्हारे पैरों पड़ूँ अब मुझे छुटकारा दो। सात बरस हुए तुम्हारे घरमें आये, इस बीच छह सन्तानोंका प्रसव मैंने किया है। पाँच जाती रही, एक यह जीवित है। मुझसे अब नहीं होता, मेरा स्वास्थ्य गिर रहा है। फिर अगर बच्चा पेटमें आया तो मैं भी मरूँगी और यह मुन्ना भी मरेगा।"

गोकुल बाबूने हँसते हुए कहा, "राम कहो, मरोगी क्यों! सन्तान जनमती और मरती ही है, सब भगवान्‌की इच्छापर है, यानी पिछले जन्मके कर्मोंका फल। मैं साफ-साफ़ देख पा रहा हूँ कि तुम्हारा फलभोग समाप्त हो गया है, मुसीबतें टल गयी है, अब कोई डर नहीं है।"

गोकुलचन्द्र गोस्वामी शेवडागाछीके सब-रजिस्ट्रार है। बड़े आरामकी नौकरी है, काम कम और घरके नजदीक ही कचहरी। गोकुल बाबू पण्डित व्यक्ति है, कई शास्त्रोंके ज्ञाता है, बँगला-अंग्रेजीके उपन्यास भी काफ़ी पढ चुके है। माली हालत अच्छी है, देवोत्तर जायदाद है, बेनामीमें लेन-देनका कारोबार भी करते है। सात बरस पहले आप हिमालयके सभी तीर्थोंका

---

१. सन्तानोत्पत्तिकी देवी जिनकी कृपापर ही बच्चोंका जीना-मरना निर्भर करता है।

पर्यटन करनेके बाद मानसरोवर और कैलासका दर्शन भी कर आये थे। लौटकर उन्होंने ऐलान किया कि उनका जन्मान्तर हुआ है, पहली स्त्री-पुत्र-कन्याओंके साथ रिश्ता नहीं रखा जा सकता है, और वे नयी गृहस्थी बसायेंगे। उन्हे कोई बाधा नही उठानी पड़ी और ग़रीब घरकी लड़की अनाथिन सुकुमारी उनके घरमें आ गयी। पहली पत्नी कात्यायनी अपने तीन लड़कोंके साथ भाईके घर कलकत्ते जा बसी। पतिसे माहवारी कुछ मिल जाता है, बस इसके अलावा कोई और रिश्ता नहीं है। दो लड़कियो की शादी पहले ही हो गयी थी—वे ससुरालमें रहती है।

पतिका आश्वासन सुनकर सुकुमारी बोली, "झूठी तसल्ली देकर मुझे भुलानेकी कोशिश मत करो। अखबारमें मैंने पढा है कि परिवार-नियोजन का उपाय निकला है, दिल्लीके मन्त्री भी इसे अच्छा समझते है। तुम इतनी-इतनी खबरें रखते हो, यह नहीं जानते? कलकत्ते जाकर मन्त्रियोंसे ही सीख आओ!"

गोकुल बाबूने कहा, "वे ठेंगा जानते है!"

"तो मुख्य-मन्त्रीसे पूछ लेना; वे तो, सुनती हूँ, बहुत बड़े डाक्टर भी हैं।"

"तुम क्या बावरी हो गयी हो सुकू? छी छी छी, निष्ठावान ब्राह्मण वंशकी कुलवधूके मुँहमे यह कैसी बातें! स्वल्पविद्या भयङ्करी—जरा-सा पढ़-लिख क्या लिया कि अखबारोंसे ये पाप-चिन्ताएँ तुम्हारे मनमे आने लगीं! बनावटी ढंगसे जन्म-रोध करना महा-पाप है, यह तुम्हे मालूम है? जनवृद्धिके लिए ही भगवान्ने स्त्री-पुरुषका सर्जन किया है। गर्भ-धारण करना स्त्री-जातिका विधि-निर्दिष्ट कर्त्तव्य है। भगवान्के इस विधानपर तुम क्यों हाथ चलाती हो?"

"मैं तो सुनती हूँ आजकल यह घर-घरमें चलता है। मेरी भी जान के लाले पड़े हुए हैं इसीलिए कह रही थी। मैं बेवकूफ़ हूँ, कुछ भी नहीं जानती हूँ, न्याय-अन्याय भी नहीं समझती, पर भगवान्पर कौन हाथ नहीं

चलाता? भगवान्‌ने नंगा भेजा था—कपड़ा क्यों पहन रहे हो ? दाढ़ी क्यों बनाते हो ? दाँत क्यों नक़ली लगाये हुए हो ?

"राधा माधव ! यह सब बातें मुँहमें भी न लाना सुकू, जीभ गल जायेगी !"

"दिल्लीके मन्त्रियोंकी जीभ तो नहीं गल जाती।"

"गलेगी, गलेगी, पापकी मात्रा पूरी होनेपर गल जायेगी। शास्त्रमें जो व्यवस्था है उसका पालन करनेपर भगवान्‌का विधान लाँघना नहीं होता, उसके बाहर जानेसे ही महा-पाप होता है। सिर्फ़ यह जान लो कि भाग्यके हाथसे कोई नही बच सकता। तुम्हारा सन्तान-भाग्य बुरा था, इसलिए इतने दिनों तक दुःख झेलती रही हो; भाग्य पलटनेपर ही तुम सुखी होगी। जो होनहार है उसे सिर झुकाकर मान लेना पड़ेगा। यह सब बड़ी ऊँची बातें है, किसी दिन तुम्हे समझा दूँगा।"

सुकुमारी निराश होकर चुप हो गयी।

छह महीना गुज़रते-न-गुज़रते सुकुमारी फिर गर्भवती हो गयी और साथ ही बीमार भी पड़ी। डॉक्टरने बताया कि बड़ा बुरा ऐनोमिया है, तिसपर कई तरहके उपसर्ग भी हैं : कलकत्ते ले जाकर अगर अच्छा इलाज कराया जाये तो शायद बच भी जाये। डॉक्टरकी बात हँसकर उड़ाते हुए गोकुल बाबूने कहा, "तुम ज़रा सोच मत करो सुकू, ज्योतिषीजी महाराज की जन्त्री धारण करो और विधु डॉक्टरका ग्लोब्यूल खाती जाओ : दो रोज़मे चंगी हो जाओगी।"

दुर्गापूजासे पहले गोकुल बाबूने सुकुमारीसे कहा, "सुकू, बहुत दिनोंसे बाहर नहीं गया हूँ, देह और मन कुछ ठिकाने नहीं हैं। दशहरेकी छुट्टीके साथ सात रोजकी छुट्टी और ले ली है। मुख्तार नरेश बाबू दल बनाकर रामेश्वर तक जा रहे हैं, मैं भी उनके साथ घूम आऊँगा। तुम किसी तरह-का सोच मत करना सुकू—महरी है, बच्चा नौकर गुपे भी रहा, ग्वालिन-

बहू रोज़ दोनों वक़्त तुम्हे देख जायेगी। मै कालीपूजाके समय तक लौट आऊँगा।"

गोकुल बाबूके जानेके कुछ दिन बाद ही सुकुमारीने एकदम बिस्तर ले लिया। किसी तरह तीन हफ़्ते बीते। उसके बाद एक दिन शामके वक़्त उसे लगा कि दम घुटता जा रहा है, कमरेमे लालटेन जलती होते भी कुछ दिखायी नहीं पड़ रहा। मुन्ना बगलमे ही लेटा हुआ था। उसके सिरपर हाथ रखकर सुकुमारीने मन-ही-मन कहा, "हे माँ जगदम्बा, मै तो जा रही हूँ, मेरे बच्चेको कौन देखेगा? हे माँ षष्ठी, दया करो, दया करो, मेरे मुन्नेकी रक्षा करो!"

अचानक कमरेको आलोकित करती षष्ठीदेवी सुकुमारीके सामने आविर्भूत हुईं। मधुर स्वरमे उन्होंने प्रश्न किया, "क्या चाहती हो बच्ची?"

सुकुमारी बोली, "मेरी जान निकली जा रही है माँ। सुना है कि तुम्हारी इच्छासे बच्चे जनमते हैं, और तुम्हारी दयासे ही जीते है, जो सर्वभूतमें मातृरूपमें अवस्थान करती हैं तुम वही देवी हो। माँ, मैं तो चली, मेरे बच्चेको देखना!"

सुकुमारीके माथेपर कमलहस्तका प्रलेप देकर देवीने कहा, "तुम्हारे बच्चेकी व्यवस्था मै कर रही हूँ, तुम निश्चिन्त होकर सो जाओ।" सुकुमारी सो गयी।

षष्ठीदेवीने पुकारा, "मेनी!"

खूब बड़ी एक बिल्ली[1] सामने आकर खड़ी हो गयी। श्वेतशुभ्र शरीर, केवल सिरके पासके रोएँ काले, बीचसे पतली माँग निकली हुई, पूँछपर बूड़ीकी तरह गोल-गोल धब्बे। पीछेके दोनों पैरोंपर खड़ी हो सामनेके दोनों पैरोंको जोड़ती हुई मेनी बोली, "क्या आज्ञा माँ?"

"तू इस मुन्नेका भार ले ले!"

---

१. षष्ठीदेवीका वाहन।

"मै तो बिल्ली हूँ माँ।"

"तू इनसान बन जा।"

पलक मारतेमे मेनीका रूपान्तर हो गया। एक सुन्दर युवती आविर्भूत होकर बोली, "माँ, मै मुन्नेका भार ले रही हूँ। पर मेरे बच्चे! उनकी अब क्या दशा होगी? पहलेवालोके लिए नहीं सोचती हूँ: वे तो सयाने हो गये है, गृहस्थोके घरोंमे जूठन खाकर, चोरी करके, या छछून्दर, चूहा, झीगुर पकडकर जैसे होगा पेट पाल ही लेंगे; लेकिन जो चार दूधमुँहे बच्चे है, जिनकी अभीतक आँखें भी नहीं खुली है—उनका क्या होगा?"

"तू बीच-बीचमे बिल्ली बनकर उन्हे खिलाती-पिलाती रहना।"

"लेकिन घरवाले क्या सोचेंगे? गुसाईं अगर देख लेगा तो भारी गोलमाल खड़ा कर देगा।"

"तेरे लिए कोई डर नही। अगर देख ही ले तो गुसाई भी बिलौटा बन जायेगा।"

"फिर आदमी भी तो बन जायेगा?"

"नहीं नही, वह बिलौटा हमेशाके लिए बन जायेगा और कोई फ़साद खड़ा नहीं कर पायेगा। तुझे भी ज्यादा दिन तक बँधा नही रहना पड़ेगा, इस बच्चेका कोई हिसाब-किताब बन जाये बस तुझे छुट्टी मिल जायेगी।"

देवी अन्तर्धान हो गयीं। सुकुमारीका मुन्ना जागकर रोने लगा, मेनी ने उसे सीनेसे लगा लिया। भूखा बच्चा प्रचुर स्तन्य पाकर आनन्दसे किल-किला उठा।

एक किरायेकी घोड़ा-गाड़ी मकानके सामने आकर ठहरी। गोकुल बाबू लौट आये है, परसो उन्हें दफ़्तरमें कामपर लगना होगा। पाँव नीचे धरते ही उन्होने शोर मचाना शुरू कर दिया: "गुपे, कहाँ गया रे, सामान वग़ैरा उतार ले न! महरी क्या अभीसे चली गयी? तुम कहाँ हो? कहींसे कोई आहट नहीं मिल रही! सुकू, कहाँ हो जी, एक-बार

निकल आओ न बाहर !

कोई भी नहीं आया, यह देखकर गोकुल बाबूने गाड़ीवानकी सहायता से खुद ही अपना बक्सा-बिस्तर उतारकर किराया दिया। उसके बाद—"सुकू अच्छी तो हो ? मुन्ना तो अच्छा है ? चिट्ठी क्यों नहीं लिखी तुमने ?" —कहते-कहते अन्दर दाखिल हुए।

टिमटिमाती लालटेनकी रोशनीमे गोकुल बाबूने देखा, एक बड़ी सुन्दर-सी लड़की मुन्नाको गोदमे लिये खड़ी है। प्रश्न किया, "तुम कौन हो जी ?"

मेनी बोली, "मेरा नाम मेनका है, उनके दूर रिश्तेकी बहन हूँ। खबर मिली कि सुकुमारी दीदी बेहद बीमार हैं, अकेली हैं, मुन्नेकी देख-भाल करनेवाला कोई नही है—सो झटपट चली आयी।"

गोकुल बाबूने कृतज्ञ होकर कहा, "ज़रूर आओगी मेनका ! तो, जब आयी हो तो रह भी जाओ। तुम्हारी दीदी कैसी है ? हाय, बिलकुल बेहोश सो रही है, क्या बुखार बढ गया है ?"

"दीदी अभी-अभी गुजर गयी है।"

गोकुल बाबूने सिर पीटकर बिलखना शुरू कर दिया, "तुम मुझे अकेले छोड़कर कहाँ चली गयी जी, मुन्नेका क्या होगा, इत्यादि इत्यादि !" मेनी बोली, "चुप हो जाइए जमाई बाबू, रोना-धोना बादमें होगा। देरी मत कीजिए, लोगोंको बुलाइए और दाह-संस्कारका बन्दोबस्त कीजिए। गोकुल बाबूने ऐसा ही किया।

दो दिन बाद गोकुल बाबू बोले, "बड़ा भाग्य है कि तुम आ गयी हो मेनका, इसीलिए दो जून खानेको भी मिल रहा है और बच्चा भी ज़िन्दा है। बड़ी अच्छी लड़की हो तुम ! मै कहना चाहता हूँ कि यहींपर आकर जब हमारा भार तुमने सँभाला है तो पक्की तरहसे ही सँभालो, घरवाली बनकर घरकी शोभा बढ़ाओ !"

मेनी बोली, "वाह आपको तो एकदम सब्र ही नहीं हो रहा है।

जल्दबाज़ी क्यों कर रहे हैं, लोग क्या कहेंगे ? दीदीके लिए शोक ज़रा घटने दीजिए, अशौच काल समाप्त हो जाये, श्राद्ध-शान्ति हो जाये—उसके बाद इसका ज़िक्र कीजिएगा।"

श्राद्ध हो चुकनेपर गोकुल बाबूको चैन कहाँ ! मेनकाके चाल-चलनपर कुछ सन्देह भी उन्हे लग रहा था। जब उनसे नहीं रहा गया तो उससे बोले, "क्यों जी मेनका, तुम्हारा चाल-चलन तो मुझे कुछ अच्छा नही लग रहा है। तुम अनब्याही लड़की हो पर तुम्हारे स्तनमें दूध कहाँसे आ गया ? मैंने देखा है कि तुम मुन्नाको स्तन-पान कराती हो। कोई बच्चा-वच्चा हो चुका है क्या ? साफ़-साफ़ बतला दो, कितनी भी सुन्दरी तुम क्यों न हो पर बुरी लड़कोसे मैं ब्याह नहीं कर सकता।"

मेनी हँसकर बोली, "अच्छा, छिप-छिपकर देखा भी है क्या ? डरो नहीं गुसाँईजी, मेरे चरित्रमे तुम दोषका नाम भी नहीं पकड़ पाओगे। मै बिलकुल शुद्ध हूँ—जिसे अपापविद्धा कहा जाता है, मैं वही हूँ। इतने शास्त्र पढ़े हुए हो, लेकिन पयस्विनी कन्याओंके बारेमे नही जानते ? मैं वही हूँ। बीच-बीचमें दूध आ जाता है, तीन-चार महीना रहता है, फिर दिनों बन्द रहता है। अपने भाग्य सराहो कि ऐसी कन्या तुम्हारे घर आयी जिससे तुम्हारा अधमरा बच्चा जी गया—बेचारा अपनी माँका दूध तो पी ही न पाया !

गोकुल बाबूके मनकी हिचकिचाहट दूर न हुई। लेकिन मेनकाके रूपने उनपर जादू डाल रखा था। सोचा : स्त्रीरत्नम् दुष्कुलादपि ! जो कुछ लिखा है, होगा, पर मेनकाको छोड़ नहीं सकता हूँ। और दो महीने बीतते न बीतते ब्याह हो ही गया।

गोकुल बाबूकी अशान्ति बढ़ने लगी। मेनका रोज़ रातको चोरी-चोरी कहाँ जाती है ? इतवारके दिन दोपहरको भी दो-तीन घण्टे वह ढूँढ़े नहीं मिलती, कौन जाने रोज़ ही निकल जाती हो ! गोकुल बाबू स्त्रीके गुलाम

हो गये थे : तीसरी स्त्री, सो भी रूपवती ! उससे वह बिगाड़ नही करना चाहते थे। फिर भी एक दिन बिना कहे न रह सके तो बोले, "क्यों जी, तुम बीच-बीचमे कहाँ गायब हो जाती हो ?"

गोकुल बाबूने तय किया कि चुप रहना ठीक नही, यह जानना ही होगा कि वह किसके पास जाती है। उन्होंने एक टॉर्च खरीदकर सोनेके कमरेमे एक ऐसी जगह रख ली जिससे मेनकाको पता न लगे और वह जब चाहे झट जलाकर देख सकें। रातको सोनेका बहाना किये वह लेटे रहे। मेनका आधीरात होनेपर बिस्तरसे उठकर चुपचाप बाहर निकली, गोकुल बाबूने भी नगे पैरों उसका पीछा किया।

आँगन पार करती पिछले दरवाजेसे निकलकर वह घरके पिछवाड़े एक छप्परमे जा घुसी। वहाँ लकड़ीका कोयला और कण्डे रखे जाते थे। मेनका सफ़ेद रंगकी साड़ी पहने हुए थी इसलिए अँधेरेमे भी वह दीख रही थी, लेकिन छप्परके अन्दर जाकर वह अचानक आँखोंसे ओझल हो गयी। टॉर्चकी रोशनी फेंकनेपर गोकुल बाबूने देखा : मेनका कही नही है, एक सफ़ेद बिल्ली लेटी हुई है और चार बच्चे दूध पी रहे है।

चारो ओर रोशनी घुमा-घुमाकर गोकुल बाबूने पुकारा, "मेनका ! मेनका !"

मेनी बोली, "क्यों ? चिल्लाओ मत, हमारे बच्चे डर जायेंगे।"

मेनकाका रूपान्तर देखकर गोकुल बाबूका दिमाग़ चकरा गया, हाथसे टॉर्च गिर पड़ी। लेकिन अँधेरेमे भी उनकी दृष्टि-शक्ति कुछ ख़ास कम नहीं हुई वे आश्चर्यचकित भी नही हुए, सिर्फ़ मर्माहत होकर इतना बोले, "राधा-माधव, ब्राह्मणके घर जारज सन्तान !"

मेनी बोली, "अरे वाह रे मेरे ब्राह्मण ! अपना मुँह तो तुम देख नहीं पाते, जरा पीछे ही हाथ बढ़ाकर देखो न एक बार !"

गोकुल बाबूने पीछे हाथ बढ़ाकर देखा एक लम्बी-सी पूँछ निकल आयी है। पर इससे भी वह आश्चर्यित नहीं हुए, बहुत नाराज़ होकर बोले,

"बदचलन औरत, बता तेरे कितने चाहनेवाले है ?"

"उसका हिसाब मेरे पास नहीं है।"

"तो अभी मेरे घरसे निकल जा।"

"तुम मुझे घरसे निकालनेवाले कौन हो गुसाँई ? नही जानते हो कि हम लोगोंका मातृसत्ता-प्रधान समाज है, जिसे मैट्रियार्की कहा जाता है। हम लोगोंकी गिरस्तीमे मर्द सरदारी नहीं कर सकते, वे बिलकुल अकेले हैं, बस क्षण-भरके साथी।

गोकुल बाबू भीषण गर्जनके साथ मेनीको काटनेके लिए लपके। एक छलाँगमे बग़ल काटकर मेनी चिल्ला पड़ी, "उरराँओ!" (मार्जार-भाषाविद् श्री दीपंकर बसु महाशय कहते है कि ऐसी ध्वनि कर मार्जार-जननी अपनी दूरस्थ सन्तानोंका आवाहन करती है।)

मेनीकी रुचिमें बड़ा वैचित्र्य था, उसने हर किस्मके पतिसे विभिन्न प्रकारके अपत्य लाभ किये थे। उसकी पुकार सुनकर क्षण-भरमे सफेद, काले, भूरे मटमैले चितकबरे इत्यादि विभिन्न रंगोके बिलौटे भागते हुए वहाँ आ पहुँचे और पूछने लगे, "क्या हुआ अम्मा ? क्या हुआ ?"

मेनीने कहा, "इस बदज़ात बिलौटेको भगा दो।"

मेनीके सात जवान बेटोने शेरकी तरह लपक-झपटकर बिलौटा दशा-प्राप्त गोकुल बाबूपर हमला कर दिया। वे घायल होकर करुण स्वरमें रोदन करते, लँगड़ाते-लँगड़ाते भाग गये।

तीन दिन बाद गोकुलचन्द्र गोस्वामीकी प्रथमा पत्नी कात्यायनी देवीको यह चिट्ठी मिली :

"पूज्या बड़ी दीदी, मैं आपकी अभागिन छोटी बहन—तीसरी सौत मेनका हूँ। कल रातको गुसाँईजी मेरे साथ झगड़कर घर छोड़ कही चले गये है। जाते वक़्त जनेऊ तोड़कर सौगन्ध खा गये हैं कि कभी लौटकर नहीं आयेंगे—गिरस्तीसे वह ऊब गये हैं। उनकी धन-सम्पत्ति देखना मेरे

बसका नहीं। आप चिट्ठी मिलते ही अपने बच्चोंको लेकर यहाँ चली आइए और अपनी सम्पत्तिपर अपना अधिकार जमाइए। सुकू दीदी एक बच्चा छोड़ गयी है, उसकी अब उम्र नौ-दस महीनेकी होगी। प्यारा-सा बच्चा है, देखते ही उसपर आपकी ममता आ जायेगी। मैं अब यहाँ नहीं ही रहूँगी, आपके आते ही सारी ज़िम्मेदारी सौंपकर मायके चली जाऊँगी। आपकी सेविका—मेनका।"

कात्यायनी अविलम्ब अपने लड़कोंको लेकर पतिगृह लौट आयीं। सुकुमारीके लड़केको गोदमें लेकर दुलराते हुए कहा, "यह तो मेरा ही छोटा मुन्ना है!"

मेनका भी अजीब लड़की है! उसमें तनिक लालच भी नहीं। कत्यायनीने बहुत चाहा भी अपनी छोटी सौतके लिए कुछ माहवारी खर्चका ही बन्दोबस्त कर दे, पर मेनका अपनी बातपर अड़ी हुई यही कहती रही, कुछ ज़रूरत नहीं है दीदी, मेरी माँके यहाँ किसी चीज़की कमी नहीं। राह-खर्च तक उसने न लिया। जाते हुए कहती गयी, "दीदी, आप सुहागिन हैं, उनकी खबर मिले या न मिले पर मछली ज़रूर खाती रहिएगा, नहीं तो उनका अकल्याण होगा। और, मेरी एक विनती है—एक बूढा बिलौटा यहाँ रोज़ आता है, उसपर ज़रा दया कीजिएगा, भातके साथ कुछ मछली सानकर उसे खानेको देती रहिएगा और हो सके तो थोड़ा दूध भी। बेचारा बहुत हार गया है।"

कात्यायनीने कहा, "तुम कुछ भी चिन्ता मत करो बहन, तुम्हारे बिलौटेको हम खाना देते रहेंगे।"

# रेवतीका पतिलाभ

विष्णु पुराणमे राजा रैवत-ककुद्मी और उनकी कन्या रेवतीके बारेमें एक विचित्र आख्यान है। उसी छोटे-से आख्यानको विस्तारके साथ लिख रहा हूँ। यह पवित्र पुराण-गाथा जो कन्या श्रद्धा-पूर्वक एकाग्रचित्त होकर पढती है उसे अविलम्ब ही सर्वगुण-सम्पन्न वांछित पतिलाभ होता है।

प्राचीन कालमे कुशस्थली नामक नगरीमे रैवत-ककुद्मी नामसे एक धर्मात्मा राजा थे। वे रेवत राजाके पुत्र थे, सो उनका एक नाम रैवत था और ककुदयुक्त वृषभ यानी कूबड़वाले साँड़के समान वह तेजस्वी थे इसलिए उनका दूसरा नाम ककुद्मी था। उस युगमें महत्ता या वीरताका निदर्शन था सिह, व्याघ्र और वृषभ, इसलिए कीर्तिमान व्यक्तियोंको उपाधि दी जाती थी : पुरुषसिह, नरशार्दूल, भरतर्षभ, मुनिपुंगव आदि।

रेवती नामसे रैवत राजाकी एक कन्या थी, वह रूप और गुणमें अतुलनीया थी। रेवतीके सयानी हो जानेपर उसके विवाहके लिए राजा योग्य पात्रकी खोज करने लगे। बहुत-से पात्रोंका विवरण संग्रह कर लेनेके पश्चात् रैवतने एक दिन अपनी कन्यासे कहा, "देखो रेवती, अब और विलम्ब नहीं कर सकता हूँ, तुम्हारी उम्र बढ़ती ही जा रही है। तुम इतने छिद्र ढूँढती रहोगी तो तुम्हें दूल्हा नही मिलेगा। मैं कहता हूँ तुम काशिराज तुन्दवर्धनसे ही शादी कर लो।"

रेवतीने होंठ बिचकाकर कहा, "बडा मोटा है और उसकी बहुत-सी पत्नियाँ है। मैं सौतका घर नहीं कर पाऊँगी।"

राजा बोले, "तो गान्धारपति गण्डविक्रमसे विवाह करो, उसके पास उतनी पत्नियाँ नहीं हैं।"

"बड़ा वज्र-मूर्ख है और अवस्था भी उसकी ज़्यादा है।"

"अच्छा, त्रिगर्त देशका युवराज कड़म्ब तुम्हे कैसा लगता है ?"

"सीक-सा दुबला-पतला है।"

"कोशल-राजकुमार अर्भक ?"

'वह तो बच्चा ही है।"

"तो अब और कौन रहता है, तुम दैत्यराज प्रह्लादको वरण कर लो। ऐसा रूपवान, धनवान, बलवान और धर्मप्राण पात्र सारे जम्बूद्वीपमे दूसरा नही है।"

रेवती बोली, "वह तो दिन-रात हरि-हरि रटता रहता है। ऐसे भक्त से मेरी नहीं पटेगी।"

रैवतने हताश होकर कहा, "तो तुम खुद ही अपनी पसन्दका कोई पति जुटा लो। अगर चाहो तो मै स्वयंवरका आयोजन कर सकता हूँ—जो तुम्हे ठीक जँचे उसीके गलेमे माला डाल देना।"

"किसके गलेमे डाल दूँगी ? सभी तो समान रूपसे अयोग्य है।"

ऐसे ही समय देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। यथाविधि पूजा स्वीकार कर कुशल-प्रश्नके पश्चात् नारद बोले, "तुम दोनो पिता-पुत्रीमे कैसा वादानुवाद चल रहा था ?"

रैवतने जवाब दिया, "कुछ पूछिए मत देवर्षि ! आजकलकी लड़कियाँ बड़ी नासमझ हो गयी है—दूल्हा ही पसन्द नही होता ! बड़ी-बड़ी कोशिशों के बाद पाँच अच्छे-अच्छे पात्रोंका अनुसन्धान पाया था, लेकिन रेवतीको कोई भी पसन्द नही। स्वयवरा भी नही होना चाहती, कहती है सभी नालायक़ है। अब आप ही कोई इन्तजाम कीजिए—जैसा भी हो।"

नारद बोले, "रेवतीने कोई बेजा बात तो कही नही है। आजकल रूप और गुण दोनोंमे उत्तम पात्र पाना मुश्किल ही है। चेहरा देखकर और समाचार-सँदेसे जानकर चाल-चलनका पता नही लगता। एक काम करो, चलकर प्रजापति ब्रह्मासे कहो, वह स्वयं रेवतीका वर ढूँढ़ देंगे।"

राजा बोले, "ब्रह्माका निर्वाचित वर भी शायद रेवतीको न जँचे।"

नारद बोले, "जँचेगा क्यों नहीं। हमारे पितामह विरञ्चि सर्वज्ञ है। उनके चुनावमें गलती हो ही नही सकती और तुम्हारी कन्याका भी तो किसी विशेष पुरुषपर आकर्षण नहीं है। क्यों जी रेवती, है तो नहीं ?"

रेवतीने गरदन हिलाकर जताया, "नहीं।"

नारद बोले, "बस तो फिर अविलम्ब ब्रह्मलोककी यात्रा करो। मैं अभी कुबेरके पास जा रहा हूँ, उनसे कहकर तुम लोगोंके आने-जानेके लिए पुष्पक-रथ भिजवाये देता हूँ।"

राजाने हाथ जोडकर कहा, "देवर्षि, आप भी हमारे साथ चलिए, नहीं तो कोई भरोसा नही कुछ हो न हो !"

नारद बोले, "अच्छी बात, मैं जल्दी ही कुबेरपुरीसे रथ लेकर आता हूँ, उसके बाद ब्रह्मलोक चला जायेगा।"

नारदके लौटकर आनेपर रैवत-ककुद्मी और रेवतीने उनके साथ पुष्पक विमानपर सवार हो ब्रह्मलोककी यात्रा की। उस समय हिमालय न तो आजकी तरह ऊँचा था न उसकी चोटियोंपर हमेशा बर्फ ही जमी रहती थी। हिमालयके उत्तरमे समुद्र-जैसी विशाल एक झील थी। वे लोग हिमालय, हेमकूट, निषध आदि बडी-बडी पर्वतश्रेणियाँ और हैमवत, हरि, इलावृत, इत्यादि वर्ष अर्थात् बड़े-बड़े देश पार कर दुर्गम ब्रह्मलोक-स्थित ब्रह्माकी सभामें पहुँचे। उस अलौकिक सभाके वर्णनका प्रयास मैं नही करूँगा, क्योंकि महाभारतमे लिखा है कि वह अवर्णनीय है, उसका रूप-गुण क्षण-क्षणमे बदलता रहता है।

नारदके साथ रैवत और रेवतीने जब ब्रह्म-सभामे प्रवेश किया तब वहाँपर गीत-वाद्य और नृत्य चल रहे थे। लोक-पितामह ब्रह्मा एक उच्च वेदीपर स्थित रत्न-सिंहासनपर विराज रहे थे। उनकी बायी ओर ब्रह्माणी और चारों ओर दक्ष, प्रचेता, सनत्कुमार, असित, देवल आदि महात्मा और आदित्य, रुद्र, वसु आदि गणदेवता बैठे थे। दो प्रसिद्ध गन्धर्व उस्ताद

हाहा-हूहू अतितान राग छेड़े मेघ-गम्भीर स्वरमें गाना गा रहे थे। दो तुम्बुरू और डुम्बुरू दुन्दुभि यानी नगाड़ा बजा रहे थे। उस समय मृदङ्ग या बायाँ-तबला नहीं बना था। दस विद्याधर दस बड़ी-बड़ी वीणाएँ झङ्कार रहे थे और उर्वशी, रम्भा, मेनका, घृताची आदि अप्सराएँ नाच रही थीं। एक महाकाय दानव अजगर-जैसी तुरही कन्धेपर लादे खड़ा था और बीच-बीचमे उसे फूँककर प्रचण्ड निनाद-द्वारा श्रोताओंका आनन्दवर्धन कर रहा था। सभामे स्थित सभी लोग तन्मय होकर सङ्गीतका रसास्वादन कर रहे थे और भावावेशमे सिर हिला रहे थे।

ब्रह्माके उद्देश्यसे प्रणाम कर नारद चुपचाप सनत्कुमारके पास जाकर बैठ गये। एक वेत्रधारिणी प्रतिहारी यक्षी होंठोंपर उँगली रखे रैवत और रेवतीके पास आयी और उसने इशारेसे बुलाकर उन्हे एक सुखासनपर ले जाकर बैठा दिया।

थोड़ी देर बाद ही आब्रह्म-देव-गन्धर्व-मानव आदि सभा-स्थित सभी वेगसे सिर और हाथ हिलाते हुए बोल पड़े, "हा हा हाः! साधु साधु! अति उत्तम!" नृत्य-गीत-वाद्य समाप्त हुआ। ब्रह्माने तब रैवत और रेवतीपर प्रसन्न दृष्टि डालते हुए निकट आनेके लिए संकेत किया।

पिता-पुत्री साष्टांग प्रणाम कर चुके तो ब्रह्मा बोले, "राजा, तुम्हारी कन्या तो देख रहा हूँ परम सुन्दरी है, इसका विवाह क्यों नहीं किया?"

रैवत बोले, "भगवन्, कन्याके विवाहके लिए ही आपके पास आया हूँ। मुझे कई अच्छे-अच्छे वरोंका अनुसन्धान मिला पर रेवतीको कोई पसन्द नहीं। काशिराज तुन्दवर्धन, गान्धारपति गण्डविक्रम, त्रिगर्त-युवराज कड़म्ब, कोशलराजकुमार अर्भक, दैत्यराज प्रह्लाद···"

ब्रह्माने मुसकराते हुए धीरे-धीरे सिर हिलाया।

रैवत बोले, "तब क्या आप भी इन्हे सुपात्र नहीं समझते?"

ब्रह्मा बोले, "वे कोई भी अब जीवित नहीं हैं, उनके पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रादि भी मर चुके हैं।"

"क्या कह रहे हैं आप पितामह !"

"हाँ सब विगत हो चुके है। तुम्हारे सगे-सम्बन्धी भी अब कोई जीवित नहीं रहे।"

सिरपर हाथ मारते हुए रैवत बोले, "हा हतोऽस्मि ! भगवन्, मेरे राज्यके और सब कौन कैसे हैं ? मुख्यमन्त्रीकी देख-रेखमें सब कुछ छोडकर आपके चरण-दर्शनके लिए आया हूँ, इस बीच सहसा कैसी दुर्घटनासे हमारे सभी सम्बन्धियोंको मृत्यु हो गयी ? मेरे किस पापका ऐसा परिणाम हुआ पितामह ?"

ब्रह्मा बोले, "महाराज, शान्त हो जाओ ! अकस्मात् या तुम्हारे किसी पापके कारण कुछ नहीं हुआ है, सब यथाविधि कालवश ही हुआ है। तुम्हारे मन्त्री, मित्र, भृत्य, कलत्र, बन्धु, प्रजा, सैन्य, धन कुछ भी अब अवशिष्ट नहीं, केवल तुम और तुम्हारी यह कन्या बचे हो।"

व्याकुल होकर रैवत बोले, "कुछ भी तो नहीं समझ पा रहा हूँ प्रभो ! मैं क्या स्वप्न देख रहा हूँ ?"

ब्रह्माने हँसते हुए कहा, "स्वप्न नहीं, सत्य ही है। मैं तुम्हे समझा देता हूँ। जानते ही हो मेरा एक अहोरात्र मनुष्यके ८६४ करोड़ वर्षके बराबर होता है। अच्छा, यहाँ आये तुम्हें कितनी देर हुई ?"

रैवतने जरा सोचकर कहा, "बहुत तो नहीं, बस सवा दण्ड हुआ होगा।"

ब्रह्मा बोले, "हिसाब लगाकर बताना तो मेरी इस ब्रह्मसभाके सवा दण्ड कालमें मनुष्य लोकके कितने वर्ष होते है।"

सिर खुजलाते हुए रैवत बोले, "भगवन्, मैं गणितशास्त्रमे हमेशासे कमज़ोर रहा हूँ। देवर्षि नारद अगर कृपाकर यह अंक लगा दें"

नारद बोले, "हरे मुरारे ! अंक-वंक मुझे नहीं आता, वह तो नीच ग्रहविप्रका कार्य है। रेवती, तुम तो, सुनता हूँ, बड़ी विदुषी हो, बहुत-सी विद्याओंमें कुशल हो, बताओ न कितना होता है ?"

रेवती बोली, "पितामह ब्रह्माका एक अहोरात्र यानी २४ घण्टेमे अगर मनुष्यके ८६४ करोड वर्ष होते है—यही है न ?—तो हुआ जाकर···· १८ करोड साल। क्यों भगवन्, गलत तो नही हुआ ?"

ब्रह्मा बोले, "नही-नही, ठीक, बिलकुल ठीक। क्यों महाराज, अब समझे ? तुम जितनी देर यहाँ सगीत सुन रहे थे उतनी देरमे मनुष्य-लोकमे अट्ठारह करोड़ वर्ष बीत गये है। तुम लोग सत्ययुगके प्रारम्भमे आये थे, उसके बाद बहुत-से चतुर्युग बीत चुके। अब जो चतुर्युग चल रहा है उसके भी सत्य और त्रेता युग पार हो चुके है, द्वापर भी शेष-प्राय है, अब कलि-युग आनेवाला है।"

शोकसे अवसन्न रैवत बोले, "भगवन्, मेरी अब क्या गति होगी ?"

ब्रह्माने जवाब दिया, "गति क्या होनी है ? तुम्हे, शोक करनेकी आव-श्यकता नही। अभी लौटकर कन्याका ब्याह कर दो, फिर सभी बन्धनोंसे तुम मुक्त हो। कुशस्थली नामक अमरावती-सी जो तुम्हारी राजधानी थी उसका नाम अब द्वारकापुरी हो गया है और वह अब यादवोके अधिकारमे है। परमेश्वर विष्णु हालमे ही मनुष्य लोकमे अवतीर्ण हुए है और यादव वंशमे जन्म लेकर स्वकीय अंशमे बलदेव-रूपमे नरलीला कर रहे है। उस माया-मानव बलदेवको ही तुम अपनी कन्या दान करो। वे और रेवती सभी बातोंमे एक-दूसरेके योग्य है।"

रैवत बोले, "आपकी आज्ञा सिर-माथेपर है, बलदेवको ही कन्यादान करूँगा। लेकिन मेरी क्या गति होगी प्रभो ?"

"फिर कहते हो कि गति क्या होगी ? अरे, वृद्ध हो गये हो, अकेली सन्तान रेवतीको अच्छे वरको दान कर रहे हो। तुम्हे और जोवित रहनेसे लाभ ही क्या ? राज्यका भी तुम्हे क्या प्रयोजन ? तुम्हारा राज्य रेवतीके श्वसुर-वंशके अधिकारमे है ही। बेटीका विवाह कर तुम सीधे ब्रह्मलोकमे लौट आओ और मेरे पास आनन्दसे रहो। इससे अच्छी और क्या सद्गति चाहते हो ?"

रैवत बोले, "ऐसा ही होगा प्रभु ! लेकिन देवर्षि नारद भी मेरे साथ मृत्युलोक चलें। मैं तो अपनेको बड़ा असहाय पा रहा हूँ।"

नारदने कहा, "अच्छी बात, मै तुम्हारे साथ चलूँगा। तुम सोच मत करो, रेवतीके विवाहके मामलेमें मै तुम्हारी हर प्रकारसे सहायता करूँगा।"

लौटते हुए रैवत और रेवतीने आकाशसे ही देखा कि हिमालयके उत्तरमे जहाँ नीची तराई थी वहाँ अब एक बहुत ऊँचा पठार बन गया है और जो जलराशि थी वह सूखकर बालुकामय मरुस्थली बन गयी है। हिमालय भी अब एक टीलामात्र नहीं, वह सुविशाल अधित्यका और उपत्यकाओंमे तरङ्गायित हो उठा है, उसकी सैकडो चोटियाँ आकाशमे उठ आयी हैं और उसका ऊपरवाला अंश तुषारसे ढका है। वही तुषार सूर्य तापसे पिघल-पिघलकर असंख्य नदियोके रूपमे प्रवाहित हो रहा है। पेड़-पौधे भी अब पहले-जैसे कहीं नहीं है, पशु-पक्षियोंका तो रंग-रूप तक बदल गया है। नारदने पिता-पुत्रीको समझाया कि पिछले अठारह करोड़ बरसमे ये सब प्राकृतिक परिवर्तन धीरे-धीरे हुआ है।

पुष्पक रथ जब रैवत-ककुद्मीके भूतपूर्व राज्यके पास पहुँचा तब नारद बोले, "महाराज, लोकालयमे उतरनेकी आवश्यकता नही। लोग तुम्हे राक्षस समझकर हो-हल्ला मचा सकते है।"

रैवतने आश्चर्य करते हुए पूछा "क्यो, राक्षस क्यो सोचेंगे वे लोग ? समय बीतनेके साथ-साथ क्या लोगोंकी बुद्धि भी लुप्त होने लगी है ?"

नारद बोले, "नही; मुझे देखकर वे कुछ नहीं कहेगे क्योकि अणिमा आदि योगैश्वर्य मेरे पास है और मै इच्छानुसार लम्बा या नाटा बन सकता हूँ, लेकिन तुम लोगोंके पास तो वैसी शक्ति है नहीं।"

"कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ देवर्षि ! अब यह फिर कैसा नया सकट आ पहुँचा ?"

"नया कुछ नहीं महाराज, सभी युग-परिवर्त्तनका फल मात्र है। तुम

लोग सत्ययुगके आरम्भमें जनमे, युग-लक्षणके अनुसार तुम लम्बाईमें इक्कीस हाथके हो और स्त्रियाँ पुरुषोंसे तनिक नाटी होती हैं सो रेवती उन्नीस हाथ लम्बी है। लेकिन अभी वह बच्ची है, बादमें आधा हाथ और बढ़ेगी।"

"आप न जाने क्या सब बता रहे है! मेरा यह राजदण्ड ठीक एक हाथ लम्बा है। इससे मुझे नापकर देख लीजिए मैं लम्बाईमें ज़्यादासे ज़्यादा चार हाथका होऊँगा।"

"तुम्हारे हाथके नापसे ऐसा ही होगा, लेकिन मैं उसके अनुसार हिसाब नहीं लगा रहा हूँ। कलियुगमें मनुष्यके हाथका जो नाप है, सभी शास्त्रोंमें वही अब प्रामाणिक माना जा रहा है। उसी कलजुगी नापके अनुसार तुम इक्कीस हाथ और रेवती उन्नीस हाथ लम्बी है।"

"ऐसा यदि हो भी तो हानि क्या है?"

"सत्ययुगमें मनुष्य जैसे इक्कीस हाथ लम्बा है, त्रेतामें उसी हिसाबसे चौदह हाथ लम्बा, द्वापरमें सात हाथ और कलिमें साढ़े तीन हाथ। अभी नरलोकमें द्वापरकी अन्तिम दशा आ रही है, कलियुग सिरपर है, इसलिए मनुष्य नाटा होते-होते चार हाथका हो गया है—बहुतसे बहुत सवा चार हाथका होगा। अबके लोग अगर तुम्हें देख लें तो राक्षस समझकर ईंट-पत्थर फेंकने लगेंगे। विवाहसे पहले ऐसा गोलमाल होना क्या ठीक होगा?"

"अच्छा! हम लोगोंका क्या कर्त्तव्य है वही आप बताइए।"

नारद बोले, "नीचेका वह पहाड़ तुम पहचान रहे हो न?"

रैवत बोले, "हाँ हाँ खूब पहचान रहे हैं, वह तो हम लोगोंका प्रमोदगिरि है। उसके ऊपर और नीचे बहुत-से उपवन है। रेवती वहाँ घूमना खूब पसन्द करती है।"

"राजा, तुम कीर्तिमान हो। अठारह करोड वर्ष व्यतीत हो गये है फिर भी लोग तुम्हें भूले नहीं हैं: तुम्हारे नामपर उस पहाड़का नाम रखा है रैवतक। वहींपर रथ उतारा जाये। रेवतीके विवाह तक तुम वहींपर

गुप्तरूपसे रहो।"

तनिक जोशमें आकर रैवत बोल पड़े, "किसके डरसे छिपकर रहूँ? यह तो मेरा ही राज्य है। और, आप ही ने तो कहा कि अबके लोग बड़े क्षुद्रकाय हैं। मैं अकेले ही सबको यमालय भेजकर राज्यपर अधिकार करूँगा।"

नारद बोले, "महाराज, रैवत-ककुद्मी तुम सार्थकनामा हो। तुम जिद्दी साँडकी तरह ही बात कर रहे हो, तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। सभीको मार डालोगे तो किसे लेकर राज्य करोगे? तुम्हारे होनेवाले जमाईका वंश ध्वंस होनेपर रेवतीका विवाह कैसे होगा? यह सब कुबुद्धि छोड़ो।"

रैवत बोले, "मेरे दिमाग़में तो सब गोलमाल हुआ जा रहा है। आप ही जो आज्ञा देंगे उसीका पालन करूँगा।"

इन्द्रके दिव्य विमानमें एक सारथी रहता है—मातलि। कुबेरका पुष्पक-विमान और भी उच्च श्रेणीका है। इसमें सारथीकी कोई आवश्यकता नहीं। रथ स्वयं सचेतन तथा ज्ञानवान है, बात समझता भी है बोल भी लेता है। रामायणका उत्तरकाण्ड द्रष्टव्य है।

नारद बोले, "वत्स पुष्पक, तुम भरसक निम्नमार्गसे उस रैवतक पर्वतका प्रदक्षिण करते धीरे-धीरे उड़ते रहो।" पुष्पक 'जो आज्ञा' कहकर मण्डलाकार चलने लगा। तीन बार चक्कर लगानेके बाद नारद बोले, "मैंने सब कुछ देख-दाख लिया है, अब नीचे उतरो।" पुष्पक रथ धरती छूकर स्थिर हो गया।

सभीके उतर जानेके बाद नारद बोले, "पर्वतका यह पश्चिम अंश काफ़ी निर्जन है, वास करने योग्य गुफाएँ भी हैं। तुम लोग अब यहींपर रहो। मैं वरके पिता वसुदेवके पास जा रहा हूँ, उन्हें पितामह पद्मयोनि ब्रह्माकी अभिलाषा बताकर विवाहका प्रस्ताव करूँगा। तुम लोग इस बीच

नहा-धोकर खाना-वाना खाओ और आराम करो। पितामही ब्रह्माणीने प्रचुर खाद्य-सामग्री दी है, रथमे शय्या भी है वह सब उतार लो। मै रथ लेकर जा रहा हूँ, जल्दी ही लौट आऊँगा।"

नारद चले गये। स्नान और आहारके बाद रेवतीने एक गुफाके अन्दर बिस्तर बिछाकर कहा, "पिताजी, आप आराम कीजिए। मैं जरा घूम आती हूँ।" रैवत बोले, "जाओ, पर लौटनेमे देर मत करना।"

रैवतकके पादवर्त्ती उपवनमे घूमते हुए रेवती अपने भाग्यके बारेमे सोचने लगी। उसके सम्बन्धियों-स्वजनोंमे केवल पिता है, विवाहके बाद वह भी ब्रह्मलोक चले जायेंगे। रेवतीका एकमात्र भावी अवलम्ब बलदेव कैसा व्यक्ति है? ब्रह्माने स्वयं जिसे चुना है वह कदापि कुपात्र नही हो सकता, लेकिन नारदने जो कुछ कहा है वह भी तो बड़ी भयानक बात है! रेवती उन्नीस हाथ लम्बी है बादमे तनिक और बढेगी। लेकिन उसका भावी पति बलदेव युगधर्मके अनुसार अवश्य ही काफ़ी नाटे होंगे, बहुत-से बहुत सवा चार हाथ, अर्थात् मनुष्यकी तुलनामे जैसे एक बिल्ली! ऐसे बेजोड़-अनमेल दम्पतिके बारेमे रेवतीने कभी नहीं सुना। मकड़ी-जातिमे हालाँकि यह देखा गया है कि मादाकी तुलनामे नर बहुत छोटा होता है। लेकिन उसका परिणाम बडा करुण होता है: मिलनके बाद ही मादा-मकड़ी अपने क्षुद्र पतिको खा डालती है। छी छी, क्या रेवतीके भाग्यमे भी ऐसा ही कुछ लिखा है? वर-कन्याकी इस भद्दी विषमताके बारेमे क्या सर्वज्ञ ब्रह्मा और देवर्षि नारदको ध्यान नही था? पर देवता और देवर्षि होनेसे क्या होगा: दोनोंके दिमाग ही सठिया गये है!

एक मौलश्री-से टेक लगाये बैठे-बैठे रेवती बहुत देर तक सोचती रही। मारे दुःखके उसे रोना-सा आ गया। अचानक पीछेकी ओर मृदु मर्मर ध्वनि सुन सिर घुमाकर देखा कि एक अत्यन्त क्षुद्र पुरुष-मूर्त्ति हाथ जोड़े खड़ी है। वर्षाके नये बादलों-सी उसकी देहकान्ति, कन्धोंतक लटकते हुए गुच्छेके गुच्छे काले केश: सोनेके फ़ीतेसे बँधे हुए और उनमे एक ओर एक

मोरपंख वासन्ती रंगकी धोती और उसी रंगका चदरा। गलेमे जानु तक झूलती हुई वनमाला। अत्यन्त सुन्दर सुडौल किशोर विग्रह। रेवतीने आश्चर्यसे पूछा, "तुम कौन हो, आदमी या गुड़िया ?"

हँसते-हँसते नमस्कार करते हुए उस अनोखी मूर्त्तिने जवाब दिया, "मै आपका किंकर हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है ? क्या परिचय है ? किसलिए यहाँ आये हो ?"

"मेरा नाम कृष्ण है, मै वसुदेवका पुत्र और बलदेवका अनुज हूँ। आप मेरी ज्येष्ठ भ्रातृजाया है, पूज्य है, इसलिए प्रणाम करने आया हूँ।"

अवहेलना तथा कौतुक-भरे स्वरमे रेवती बोली, "मुझे देखकर तुम्हें डर नही लग रहा ? सुना है तुम्हारे दादा अवतार है—नारायणके अंशसे उन्होंने जन्म लिया है। तुम भी अवतार हो क्या ?"

कृष्ण बोले, "मैं इतना भाग्यवान् नही हूँ। दशावतारकी तालिकामे मेरा नाम नहीं चढ़ा है। पर अब मेरा सन्देश भी सुनिए। देवर्षि नारदने मेरे पिताके पास जाकर आपके साथ बलदेवके विवाहका प्रस्ताव किया है। पिताने सानन्द सम्मति दे दी है। कल ही विवाह है। मेरे अग्रज अभी आपसे साक्षात्कार करने आयेंगे—यही शुभ सन्देश देनेके लिए मैं उनका अग्रदूत बनकर आया हूँ।"

रेवतीने पूछा, "तुम सम्बन्धमे मेरे क्या लगोगे ? श्यालक ?"

ठहाका लगाते हुए कृष्ण बोले, "देख रहा हूँ आप बिलकुल ही पुराने ज़मानेकी है। किसे क्या कहना चाहिए यही नहीं मालूम आपको। पत्नीका भ्राता श्यालक होता है, पतिके भ्राताको ऐसा नहीं कहा जाता। मै आपका देवर हूँ। यह लीजिए, दादा आ ही गये।"

रेवतीने देखा कि उनके होनेवाले पति कृष्णसे तनिक लम्बे और भारी है। रजतगिरिके समान शुभ्र कान्ति, चन्दन-चर्चित चौड़ा-चकला सीना, बलिष्ठ बाँहे, नीली आँखें, सिंहकेशरके समान सुनहले-से केश, मोतियोंकी

माला, और केश-गुच्छमें एक ओर खोंसे हुए सारसके पंखसे सज्जित है। नीली धोती और नीला चदरा पहने हुए और गलेमें मल्लिकाकी माला। कन्धेपर बाँसकी लाठी जिसके सिरेपर खूब चमकायी हुई एक हलकी फाल जो अस्त होते हुए सूरजकी किरणोंमें झलमला रही थी।

दीर्घाङ्गी रेवती उन्नीस हाथकी ऊँचाईसे अपने भावी पतिका सतृष्ण और वितृष्ण नयनोंसे निरीक्षण करने लगी। हाय विधाता, ऐसा छोटा-सा उसका वर है! इतना सुन्दर पर इतना क्षुद्र! रेवतीने किसी तरह अपनेको सँभाला और शिष्टाचारका स्मरणकर हाथ जोड़ नमस्कार किया।

बलदेवने मुसकराते हुए पूछा, "भद्रे, मैं पसन्द आता हूँ?"

रेवतीने जवाब दिया, "सुना है आप एक अवतार है, नारायणके अंश से आपने जन्म लिया है। मेरे समान सामान्य नारी क्या आपके योग्य है?"

बलदेव बोले, "यानी मैं ही तुम्हारे योग्य नहीं हूँ? तुम अतिकाय महामानवी हो और मैं क्षुद्र देह सामान्य मानव! तुम उच्च ताड़-वृक्ष हो और मैं तुच्छ एरण्ड! तुम तिमञ्जिली अटारीके समान ऊँची हो और मैं दीमकका टीला मात्र! रेवती, तुम सोच रही होगी मैं तुम तक कैसे पहुँच पाऊँगा। पर दुश्चिन्ता मत करो, मैं अभी तुम्हारे योग्य बनता हूँ।"

यह कहकर बलदेव ज़रा दूर जाकर खड़े हो गये और कन्धेसे हल उतारकर उसका डण्डा पकड़कर दनादन घुमाने लगे। घुमानेके साथ-ही-साथ डण्डा लम्बा होता गया। थोड़ी देर बाद कृष्ण बोले, "बस करो दादा, उतनेमें हो जायेगा, और मत घुमाओ। तब बलदेव हलकी फाल रेवतीके कन्धेसे फँसाकर बोले, "सुन्दरि, अन्यथा न लेना, यह हल मेरी बाँहका ही प्रतिनिधि बनकर तुम्हारी कम्बुग्रीवाका आलिंगन कर रहा है।"

रेवती मन्त्रमुग्ध-सी हुई निश्चल बनी खड़ी रही। बलदेवने धीरे-धीरे हल-दण्ड खींचा। पलीता खींच लेनेसे जिस तरह दीपककी लौ क्रमशः छोटी होती जाती है, रेवती भी उसी तरह छोटी होने लगी। कृष्ण सतर्क होकर देख रहे थे। बोल पड़े, "बस करो, बस करो, और नहीं—ओफ़ दादा,

तुमने बहुत ज़्यादा खींच लिया है।"

बलदेवने हल उतार लिया। उसके बाद अपने हाथसे रेवतीको नापकर बोले, "सचमुच यह मैंने क्या कर डाला, रेवती तो तीन हाथकी हो गयी है! अच्छा अभी ठीक किये देता हूँ।" यह कहकर उन्होंने रेवतीको हाथोंमें ऊपर उठाकर कहा, "प्रिये, मेरी अपटुता क्षमा करना। तुम मौलश्रीकी यह शाखा पकड़कर थोड़ी देर लटकी तो रहो!"

रेवतीमें उस समय समझने-सोचनेकी शक्ति नामको भी अवशेष न थी। वह दोनों हाथोंसे शाखा पकडकर लटक गयी और बलदेव उसके दोनों पैर पकड़कर धीरे-धीरे खीचने लगे। कृष्ण बोलते रहे, "तनिक और, तनिक और—बस रुक जाओ, ठीक है अब।"

रेवतीको उतार अपने बग़लमें खड़ाकर बलदेवने हँसते हुए कहा, "क्यों कृष्ण, दूल्हा बड़ा है कि दुल्हन?"

कृष्ण बोले, "लम्बाईमें कन्या तुमसे सात अंगुल छोटी है पर मर्यादामें तुमसे बहुत बड़ी है, क्योंकि आप अठारह करोड़ वर्ष पहलेकी जनमी हुई है। पर बड़ी सुन्दर जोड़ी है!" यह कहनेके बाद कृष्णने दोनोंको प्रणाम किया।

निकट ही एक छोटा-सा जलाशय था। रेवतीको उसके किनारे लाकर युगल-मूर्त्तिकी परछाई दिखाकर बलदेव बोले, "रेवती, अब तो देखो, अब मैं तुम्हारे योग्य हूँ या नहीं। अब पसन्द आता हूँ कि नहीं?"

रेवती बोली, "पसन्द न भी आये तो उपाय क्या है। अवतार नहीं और कुछ! दो भाई: दोनों डाकू हैं। तुम लोगोंका मतलब मुझे पहलेसे मालूम होता तो मैं तुम ही दोनोंको खींच-खींचकर लम्बा कर देती।"

उसके बाद बड़े समारोहसे रेवती-बलदेवका विवाह हो गया। रैवतकुकुद्मी वर-कन्याको आशीर्वाद करके नारदके साथ ब्रह्मलोकके लिए प्रस्थान कर गये।

# अक्रूर-संवाद

"नमस्कार जी! ज़रा आपके पास यहाँ बैठनेके लिए जगह मिल जायेगी?"

ढकुरिया लेकके किनारे बेंचपर मैं अकेला बैठा था। साँझ उतर रही थी। मैं उठने ही वाला था कि एक अजनबी सज्जन वहाँ आये और उन्होंने यह सवाल किया। मैंने जवाब दिया, "बेशक-बेशक, बैठिए न, काफ़ी जगह है।"

उस व्यक्तिकी उम्र पचास-पचपनके लगभग होगी। लम्बा छरहरा, गोरा रंग, सिरपर खिचड़ी बाल, बड़े जतनसे निकाली हुई माँग, मौलाना अबुल कलाम आज़ादकी तरह मूँछें और दाढ़ी। महीन धोती, रेशमी कुरता, ऊपर चादर। हाथमें चाँदीकी मूठवाली छड़ी। देखते ही लगता कि पुराने ज़मानेके कोई शौकीन रईस हैं। जेबसे एक बड़ा-सा कागज़ निकालकर बेंचके एक सिरेपर बिछाया और उसपर बैठ गये, फिर बोले, "मैं हूँ अक्रूर नन्दी। श्रीमान्का शुभ नाम जान सकता हूँ?"

मैं बोला, "ज़रूर जान सकते है, मेरा नाम है सुशीलचन्द्र चन्द्र।"

"आपको घर लौटनेकी जल्दी है क्या? न हो तो थोड़ी देर बैठिए, ज़रा बात-चीत हो। देखिए, मै ज़रा बेढंगा आदमी हूँ, लोगोंसे घुल-मिल नहीं सकता और हरेकके साथ पटती भी नहीं।"

मैंने हँसकर सवाल किया, "मुझसे क्यों दोस्ती कर रहे है? अगर न पटी तो?"

अक्रूर नन्दीने भौंहे सिकोड़कर मेरी ओर देखा और कहा, "मै चेहरा देखकर आदमी पहचान लेता हूँ। आपकी उम्र चालीससे नीचे है, है न?"

"जी हाँ।"

"तब तो पटेगी ही। बूढ़ोंके साथ मेरी नहीं बनती : हड्डी-चाम-मन

उनका सब-कुछ सूखकर कड़ा पड जाता है। आप सोच रहे होंगे कि यह आदमी कहता क्या है, यह तो खुद भी बूढ़ा है। पर उम्र मेरी बेशक बढ़ी है, मन अभी तक सूखा नहीं है ?"

"यानी आप अभी तक तरुण है ?"

अक्रूर बाबूने सिर हिलाते हुए कहा, "तरुण-वरुण तो कुछ नहीं, मैं एक बोद्धा यानी फ़िलॉसफ़र हूँ। मैं दुनियाको लालची-बेवकूफ़ोकी तरह गपा-गप लीलना नहीं चाहता, चख-चखकर चबा-चबाकर उसका रस लेना चाहता हूँ। चलिए न मेरे घर, नजदीक ही है। रातका खाना साथ ही खाइएगा; आपको अपना जीवन-दर्शन भी समझा दूँगा।"

इसमे कोई शक नही कि उन सज्जनका दिमाग़ कुछ फिरा हुआ था। मैने कहा, "आज तो घरपर बता नहीं आया हूँ, लौटनेमे देर होगी तो सब लोग फ़िक्रमे पड़ जायेंगे।"

"अच्छी बात, तब कल इसी समय यहाँपर भेंट हो ! मै आपको घर ले चलूँगा, वहींपर भोजन कीजिएगा। आप सोच रहे होगे कि यह आदमी कहीं अबूहुसैन तो नहीं है ? कुछ-कुछ तो ऐसा है। अकेले रहता हूँ, बातें करनेके लिए योग्य व्यक्तियोको ढूँढ़ता रहता हूँ पर लाखमे एक भी नहीं मिलता। आपको देखकर लगता है जैसे आप भी एक बोद्धा हों। क्या करते हैं आप ?"

"कॉलेजमें फ़िलॉसफ़ी पढ़ाता हूँ।"

"वाह, तब तो देख लीजिए मैं आदमी पहचान लेता हूँ कि नही।"

सविनय उनसे निवेदन किया, "जो आप सोच रहे हैं वैसा मैं कुछ नहीं हूँ, मेरी विद्या-बुद्धि बड़ी ही सामान्य है। पुरोहित जिस तरहसे यजमानको मन्त्र पढ़ाता है, मैं भी उसी ढंगसे छात्रोंको पढ़ाता हूँ। समझता खुद भी कुछ नहीं हूँ, वे भी कुछ नहीं समझ पाते हैं।"

"यह सब कहकर आप मुझे बहका नहीं सकते। खैर, बहस रहने दें, आप शायद चलनेके लिए व्यग्र हो रहे हैं, आपको अब और न रोकूँगा।

कल ठीक इसी वक्त आयेंगे न ?"

अक्रूर नन्दी सनकी जरूर है पर, जैसा शेक्सपीयरने कहा है, इनके पागलपनमे भी एक शृखला थी। मुझे इस आदमीको अच्छी तरहसे जानने के लिए बडा कुतूहल हुआ। बोला, "जो हाँ, जरूर आऊँगा।"

अगले दिन ठीक समयपर पहुँचकर देखा कि अक्रूर बाबू बेंचपर बैठे हैं। मुझे देखते ही खुश होते बोले, "आइए, आइए सुशील बाबू ! यहाँ वक़्त बरबाद करके क्या होगा, चलिए घर चलिए। बिलकुल नजदीक है—यही सदर्न ऐवेन्युकी बगलसे निकली है हर्षवर्धन रोड, उसीपर दस नम्बरवाला मेरा मकान है।"

चलते-चलते मैंने पूछा, "बुरा न मानें तो जरा यह तो बतायें कि जनाब करते क्या है ?"

अक्रूर बाबूने उलटे सवाल किया, "आप आत्मा मानते है ?"

बडा कठिन प्रश्न है। जन्मसे एक आत्मा मेरे साथ है, उम्र बढनेके साथ-साथ वह बदलती भी जा रही है, लेकिन जन्मसे पहले भी वही आत्मा थी या नहीं यह तो मुझे नही मालूम।"

"ओह, तो आप ऐग्नॉस्टिक है। आपका विश्वास आपमे रहे, मुझे इसमे कोई एतराज़ नही। लेकिन मैं जन्मान्तरीण आत्मा मानता हूँ। मेरे पिछले जन्मकी आत्मा बड़ी चालाक थी जनाब, खूब देख-चुनकर एक धनी के घर जन्म लिया है उसने।"

"तब तो आप भाग्यवान् व्यक्ति है।"

"कह सकते है। पिताजी इतना रुपया छोड़ गये है कि कमानेकी कोई जरूरत नहीं है। अन्न-चिन्ता होती तो उच्च चिन्तन असम्भव था। मैं बेकार-आलसी आदमी नहीं हूँ, दिन-रात यही खोज करता रहता हूँ कि कैसे मनुष्यकी बुद्धि बढ़ेगी और कैसे समाजका सुधार होगा। लेकिन इसमे मुश्किल क्या है, जानते है ? मैंने कमसे-कम दो-सौ बरस पहले जन्म ले

लिया है, इस युगके लोग मेरी थ्योरी समझ ही नहीं पाते।"

"तब तो मैं ही समझ सकूँगा ऐसा कैसे सोच लिया आपने ?"

"आप जरूर समझ जायेंगे, जरा कोशिश करनेपर ही समझ जायेंगे। आपके दोनों कानोंके ऊपर यह छोटा-छोटा ढूह-सा बना है न, यही बोद्धाका लक्षण है। आइए, यही 'अक्रूरधाम' है। पैतृक घर चाचाओंको गया, इसे मैंने खुद बनवाया है।"

अक्रूरधाम बहुत बड़ा न था पर उसकी बनावट बड़ी अच्छी थी। बरामदेमें ही चार-पाँच नौकर-दरबान आदि एक बेंचपर बैठे गप लड़ा रहे थे, मालिकको देखते ही आदर-भावसे उठ खड़े हुए। अक्रूर बाबू हाथके इशारे से उन्हें बैठनेको कह मुझे अपने बैठकेमें ले गये। कमरा मझोले आकारका था, सामान कम पर काफी साफ़-सुथरा।

भीतर दाखिल होते वक़्त दरवाजेकी बगलकी दीवारसे मेरा हाथ लग गया था। देखा खरोंच-सी आ गयी है। अक्रूर बाबू बोल उठे, "शायद खरोंच खा गये हैं ? डरिए मत, दवा लगाये देता हूँ।" यह कहकर उन्होंने बैंगनी स्याहीके रंगका कुछ लगा दिया।

मैं बोला, "आप व्यर्थ परेशान हो रहे हैं ! कुछ नहीं है, जरा खरोंच आ गयी है। शायद वहाँ कोई कील थी।"

"एक नहीं जनाब, आलपीनोंकी पाँतें लगी हुई हैं : हाथ लगाते ही कोंचने लगेंगी। जानते हैं क्यों लगवानी पड़ीं ? भारतवर्ष बाँके श्याम त्रिभंग मुरारीका देश है। यहाँके लोग सीधे नहीं खड़े हो सकते—नौकर, धोबी, ग्वाला, नाई, कोई नहीं; यहाँतक कि बहुत-से शिक्षित व्यक्ति भी दरवाजे या दीवारपर हाथ टेककर त्रिभंग मुद्रामें खड़े होते हैं। श्रीकृष्णजी के ही जमानेसे ऐसा चला आ रहा है। अजन्ताके चित्रोंमें, पुरी, मदुरा और रामेश्वरमके मन्दिरोंमें भी एक मूर्त्ति सीधी नहीं मिलेगी। घरके नौकरों और मेहमानोंके हाथ-पैर लग-लगकर दीवारें और दरवाजे गन्दे हो जाते हैं। किसी तरह भी उन लोगोंकी यह बुरी आदत छुड़ा नहीं

सका। लाचार हो फ़र्शसे एक फ़ुट छोड़कर, दीवारों और दरवाज़ोंपर छह-छह फ़ुट तक, यहाँतक कि सीढ़ीके रेलिंगपर भी लाइनकी-लाइन ग्रामोफ़ोनकी पिनें लगा दी है—क़रीब दो लाख पिन। अब कोई बच्चू कोई अजन्ताकी शैलीमे टेढे होकर या टेक लगाकर खड़े तक नही हो पाते, दीवारपर ढासना लगाकर बैठना तो दूर रहा।"

"आपके यहाँ नौकर कैसे टिके हुए है ?"

"हर एकका वेतन ढाई गुना कर दिया है। अगर भूले-बिसरे किसीने टेक लगायी ही और घायल हो गया तो इसी जेनसन्स वायेंलेटसे ठीक कर देता हूँ। एक बोतल ला रखी है। बहुत ही अच्छा ऐण्टीसेप्टिक है। इसका दाग भी तीन-चार दिन तक रहता है : देखकर दूसरे लोग भी सावधान हो जाते है।"

"लेकिन बच्चोंकी कैसे क्या करते है ? घरपर बाल-बच्चे तो होगे ही ?"

ठहाका मारकर अक्रूर बाबू बोले, "बाल हूँ मै और नौकर है बच्चे !"

"अरे, आपके बच्चे नहीं है ?"

"सुनिए सुशील बाबू, शादी न करूँ पर बच्चोको जन्म दूँ ऐसा मूर्ख मै नहीं।"

"क्यों, शादी नही की आपने ?"

"कोशिश तो काफ़ी की, पर हो न सकी। भविष्यकी कह नही सकता।"

"आप-जैसे व्यक्तिको अभी तक पत्नी नही मिल सकी यह तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है। आप धनी है, सुदर्शन, सुशिक्षित, ज्ञानी—"

"मेरे और भी गुण है। नशा नही करता, पान-तम्बाकू-चाय आदि मादक द्रव्योंको छूता नही, मछली, मांस, अण्डा, प्याज, मिर्च-हल्दी मेरी रसोईमें आ नही पाते। मै गान्धीजीकी थ्योरी मानता हूँ कि सब्ज़ीका छिलका निकाल देना और मसाले देकर खाना पकाना दोनों ग़लत है। वे लहसन खाते थे, मै वह भी नहीं खाता। नमक भी काफ़ी कम कर दिया है, उससे ब्लड-प्रेशर बढ़ता है।"

"दूध तो पीते ही होंगे ?"

"हाँ पीता हूँ पर बछड़ोंको वंचित करके नहीं। घरपर तीन गायें है, बछडोंके लिए काफ़ी-काफ़ी दूध छोड़कर बाक़ी सब पी लेता हूँ।"

अक्रूर बाबूकी बातें सुनकर समझते देर न लगी कि आज रात अपने भाग्यमे अनशन ही लिखा है। याद आया, बड़ी सड़कके मोड़पर एक साइन-बोर्ड देखा है—औदरिक एम्पोरियम। लौटते हुए वहीं पेट भर लूँगा।

अक्रूर बाबू बोले, "चलिए उस कमरेमें चलें, खाना खाते-खाते बातें करेंगे। शास्त्रमे कहा गया है कि मौनी बनकर खाना खाओ। वह मैं नही मानता, विलायती तरीक़ेसे बातें करते हुए धीरे-धीरे खानेपर हज़म ठीकसे होता है। खाना आया। अक्रूर नन्दी सनकी आदमी होनेपर भी साधारण-ज्ञानसे वंचित न थे। मेरे लिए अच्छो-अच्छी भोज्य-वस्तुओंका ही उन्होंने इन्तजाम किया था। लेकिन उनके अपने लिए चन्द मोटी रोटियाँ, कुछ उबाली हुई सब्ज़ी और एक कटोरा दूध—यही था।

अक्रूर बाबू बोले, "कोई भी जानवर कैलॅरी, प्रोटीन, विटामिन आदि के बारेमे माथापच्ची नही करते। हमारे गुफा-निवासी पूर्वपुरुष पशुओं की तरह ही कच्ची चीजें खाते थे, वही उनकी पुष्टई होती थी। सभ्य बनने के बाद हम वह सदभ्यास खो चुके है। अब कच्ची लौकी और कच्चा कुम्हड़ा बहुत लोग पचा ही नहीं सकते इसीलिए आपको नही दिया। पर मैने कच्चा खानेकी आदत डाल ली है, थोड़ी-थोड़ी घास खाना भी सीख रहा हूँ। पर जाने दीजिए इन बातोंको। आपके चेहरेका भाव देखकर लग रहा है कि कोई प्रश्न आपके गलेमें अटका हुआ है। लिहाज न कीजिए, बे-झिझक पूछ डालिए।"

मैंने कहा, "अगर आप बुरा न मानें तो पूछूँ ! आपने कहा कि शादी के लिए आपने काफ़ी कोशिशें कीं पर वह हो न सकी। क्यों नहीं हो सकी, बताइएगा ?"

"अरे यही बात सुनानेके लिए तो आपको बुला लाया हूँ। सुनिए।

दाम्पत्य तीन प्रकारका होता है। नम्बर एक : जिसमें पत्नी पतिके अधीन रहती है, जैसे गान्धी-कस्तूरबा। नम्बर दो : जिसमें पति ही पत्नीके अधीन होता है—यानी स्त्रैण, बीबीका गुलाम, हेनपेक्ड—जैसे जहाँगीर-नूरजहाँ। दोनों व्यवस्थाएँ ही डिक्टेटरीकी हैं, पर दोनों ही क्षेत्रोंमें पति-पत्नी सुखी होते हैं। नम्बर तीन : जिसमें पति-पत्नी कोई समझौता न कर अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग बजाते हैं—यानी दोनों ही जिद्दी हैं। व्यक्तिस्वातन्त्र्यमूलक आदर्श दाम्पत्य-सम्बन्ध यही है, लेकिन इस पद्धति या टेकनिकके लोग आदी नहीं बन सके हैं।"

"आप खुद कैसा दाम्पत्य पसन्द करते है ?"

"तीनों क़िस्मोंमे ही कोशिश की है पर कोई भी ठहर न सका। इसी का इतिहास आपको बताऊँगा। जब उम्र कम थी तब अन्य पाँच जनोंकी तरह दाम्पत्य नम्बर एक ही पसन्द करता था। जैसे बन्दर, साँड, बकरा, मुर्ग आदि जानवरोंमे, वैसे ही मनुष्योंमे पुरुष ही साधारण तौरपर प्रबल होता है, वही स्त्री जातिपर हुकूमत करना चाहता है। लेकिन दिक़्क़त क्या पड़ी, जानते है ? किसीको सताना मेरा स्वभाव नहीं और मेरी जीवन-यात्राका आदर्श इतना ज़्यादा रैशनल है कि कोई औरत उसे बर-दाश्त नहीं कर सकती।"

"परखकर देखा था ?"

"पूरा-पूरा। जब मेरी उम्र चौबीसकी थी, तो मेरी मँझली चाचीने अपने दूर रिश्तेकी एक भाजीसे मेरी गाँठ बाँधनेकी सोची। हम लोगोंके समाजमें उस समय कोर्टशिपका चलन नहीं था, अभिभावक ही रिश्ता तय करते थे। मेरे माँ-बाप तबतक गुजर चुके थे, मै चाचाओंके साथ ही रहता था। मैंने मझली चाचीसे कहा, शादीके बारेमे राय देनेसे पहले मै तुम्हारी भांजीको अपने मनकी बातें सुना देना चाहता हूँ। चाची बोली, अच्छी बात, जितनी खुशी हो सुनाना मैं सामने नहीं रहूँगी। उसके बाद एक दिन वह लड़की बुलायी गयी। मैंने उसे एक लेक्चर दिया—सुनो

उज्ज्वला, मै स्पष्टवक्ता आदमी हूँ, मेरी बातोंका कुछ खयाल न करना। तुम देखनेमे अच्छी-खासी हो, मेट्रिक भी पास हो, सुना है गाना-बजाना भी जानती हो और घरका काम-काज भी जानती हो। इसीसे मै खुश हूँ। तुम मुझसे शादी कर लो तो पछताओगी नही : एक सुदर्शन, स्वस्थ, विद्वान्, धनवान् और अत्यन्त बुद्धिमान् पति पाओगी, मेरे नये घरकी सर्वे-सर्वा बनोगी और खर्च करनेके लिए काफ़ी रुपया पाओगी। लेकिन तुम्हे कुछ नियम मानकर चलना पडेगा। दो-एक चूडियोके सिवा कोई गहना नही पहन सकोगी—शृगी, नखी और दन्ती प्राणियोकी तरह सालंकरा स्त्री भी डेंजरस होती है! कही समारोह-भोजो आदिमे जानेपर अगर अपनी धन-सम्पत्ति दिखाना ही चाहती हो तो बैंकका एक सर्टिफ़िकेट गलेसे लटकाकर जा सकती हो। वेश-भूषामे भी दूसरी औरतोंकी नक़ल नही करोगी, मैं जैसी बताऊँगा वैसी ही सजधज रहेगी। और सुनो—तसवीरें टाँग-टाँगकर दीवारें मत खराब करना, नयी-नयी चीजें और कहानियोंकी किताबें खरीदकर घरका कूडा मत बढाना, ग्रामोफ़ोन और रेडियो मत रखना। हिलसा मछली, केकड़ा, प्याज़, अमरूद, आम, कटहल छोड़ना पड़ेगा : इनकी बू भी बरदाश्त नही कर पाता हूँ। पान नही खाओगी : लाल-दाँतोंवाली औरत मुझे फूटी आँखों नही सुहाती। साबुन जितनी मर्ज़ी हो लगाना पर इत्र या पाउडर नामको भी नही, क्योंकि ये सब फ़िनैलकी तरहकी चीजें हैं : बदबू दबानेका बेईमान तरीका। इसी तरहके और भी बहुत-से विधि-निषेधोके बारेमे बताकर मैने उससे कहा, तुम अच्छी तरह सोच-विचार कर लो, अपने माँ-बापसे भी सलाह कर लो, अगर मेरी शर्तें मान सकती हो तो चार-पाँच दिन बाद खबर देना। लेकिन एक पूरा हफ़्ता निकल गया और कोई खबर न आयी !"

"अरे ! कहते क्या हैं आप ?"

"आखिरकार मैने खुद जाकर मँझली चाचीसे पूछा कि मामला क्या है। उन्होंने लड़कीके घर कहलवाया। वहाँसे उत्तरमें मुझे एक पोस्टकार्ड

मिला। लड़कीके बडे भाईने अंग्रेजीमे लिखा था : गो टू हेल।"

"देखता हूँ कन्या-पक्ष बड़ा ही बेवकूफ था जो आप-जैसे वरका मूल्य न समझ सका।"

"हाँ ज्यादातर लोग ऐसे ही थे; पर कुछ चालाक कन्यापक्ष भी मिले थे। उनका इरादा था धोखा देकर मेरी गरदनपर लड़की लाद देना। तभी मैने एक नयी शर्त्त जोड़ दी : भविष्यमें अगर मेरी पत्नी अपना वचन तोड़ती है तो मैं उसे तत्काल विदा कर दूँगा, खाना कपड़ा देता रहूँगा पर मेरी सम्पत्ति वह नही पा सकेगी। यह शर्त्त सुनकर सब भाग खड़े हुए। सम्बन्धी दुश्मनोंने भी अफ़वाह उड़ायी कि मैं पागल हूँ। लेकिन एक लड़की सचमुच राज़ी हो गयी थी। एक बड़े ग़रीबकी लडकी थी, शक्ल-सूरतकी भी अच्छी न थी। मेरी सारी बातें सुनते ही उसने कह दिया कि वह तैयार है। मैने उससे कहा कि इतनी जल्दी नहीं है, अपने माँ-बापसे पूछकर फिर बताना। अगले दिन खबर आयी कि माँ-बाप भी तैयार है। मुझे कुछ शक हुआ। खोज करनेपर पता चला कि रूप और रुपयेके अभावमे उसे वर ही नहीं मिल रहा था। माँ-बाप पुराने ढर्रेके हैं, लड़कीको हमेशा कोसते रहते। अब वह शरत् चटर्जीकी अरक्षणीयाकी तरह इतनी बेजार हो चुकी है कि कही भी अपनी बलि चढानेको तैयार है। लड़कीके बापसे मिलकर मैने कहा कि आपकी लड़की महज आप को दहेज-चिन्तासे मुक्ति देनेके लिए मुझसे शादी करना चाहती है, मेरी शर्त्तोंपर उसने क़तई ग़ौर नही किया है। ऐसी शादी नहीं हो सकती। यह लीजिए पाँच हज़ार रुपये मै दहेजके लिए देता हूँ, अब लड़कीकी अपने मन-पसन्द घरमे शादी कर दें। बाप बहुत कृतज्ञ होता बोला, आप ही मुन्नीके यथार्थ पिता है, मैं तो सिर्फ़ जन्मदाता हूँ। लड़की अच्छे घरमे ब्याही गयी। शादीके बाद दूल्हेके साथ मुझे प्रणाम करने भी आयी थी।"

मैं बोला, "आप महाप्राण दयालु व्यक्ति हैं।"

"हाँ, बीच-बीचमे ऐसी दया भी दिखानी पड़ती है। रुपया रहनेपर दान करनेमे कोई बहादुरी नहीं है। आगे सुनिए। मेरी उम्र बढ़ती चली। पैंतीसवाँ पार होनेके बाद यह बात मेरी समझमे आ गयी कि मेरे आदर्शों-का पालन करनेके लिए कोई तपस्या करे ऐसा सम्भव नहीं है। तभी मेरे अन्दर एक मानसिक विप्लव, एक रेवॅल्यूशन, हुआ। जब एक नम्बर दाम्पत्य होनेका ही नही तो दो नम्बरके लिए प्रयास करना क्या बुरा होगा? मेरे बहुत-से रिश्तेदार है जो अपनी पत्नियोंकी अधीनतामे है और बड़े सुखी है। स्त्रैण बनना भी संसार-यात्राका एक मार्ग है। दुनियामें 'जो हुक्म मालिक' वाले अनेक हैं, वे न्यायका भार मालिकपर छोड़कर बे-फ़िक्रीसे दिन मज़ेमे गुज़ारते है। जो कुछ गुरु महाराज कर दें, जो कुछ पण्डितजी कर दें, जो कुछ कॉमरेड स्तालिन—या अब माओ त्से तुङ्ग—कर दें! ठीक इसी तरह 'जो हुक्म घरवाली'वाले भी बहुत-से है। वे कहते है: हम लोगोंके मतामतकी क्या ज़रूरत है, जो कुछ करे सो घरवाली!"

"लेकिन आपका स्वभाव तो बिलकुल दूसरा है, आपका 'जो हुक्म घरवाली' बनना तो मुश्किल है।"

"परिस्थितिके हेर-फेरमे या अपने आदर्शोंकी साधनाके कारण असम्भव को भी सम्भव बनाना पडता है। एक यथार्थ सत्य आपको बताता हूँ, सुनिए! जो स्त्री राजासे ब्याह करके रानी बनती है या सेठके साथ सेठानी या जो किसी बड़े नामी-गुणी व्यक्तिकी ही पत्नी बनती है वह अपनेको बड़ी भाग्यशालिनी मानने लगती है, मारे गर्वके उसके पैर धरतीपर नहीं पड़ते। लेकिन रानी या धनी स्त्रीसे जो पुरुष ब्याह कर लेता है या जिसकी स्त्री कोई बड़ी देशनेत्री, लेखिका, नायिका या नटी हो जाती है, वह निरा दबा-दबा और सकुचा-सहमा-सा रहता है। वह स्वनामधन्य नहीं होता, पत्नी-के नामसे ही परिचय पाता है इसलिए लोग भी उसकी अवज्ञा करते है। लेकिन समय बीतनेके साथ-साथ उसका क्षोभ क्षीण होता जाता है और वह खालिस स्त्री-भक्त बनकर रह जाता है। इसके भी उदाहरण बहुत-से हैं।"

"क्या आपने भी ऐसा बननेका प्रयास किया था ?"

"किया था हालाँ कि क्वीन विक्टोरिया, सारा बर्नहार्ड, वर्जीनिया वुल्फ या सरोजिनी नायडू-जैसी पत्नी जुटाना मेरे बसके बाहर था। मैंने सोचा, अगर आँख-कान मूँदकर किसी जबर्दस्त महिलाके आगे आत्मसमर्पण कर सकूँ तो शायद दो नम्बर दाम्पत्य भी मुझे बरदाश्त हो जाये और मेरा मत और आदर्श भी बदल जाये।"

"आपके लिए यह असम्भव-सा ही था।"

"पर मैंने अपनी कोशिशमे कोई कोताही नही की। उस वक़्त मेरी उम्र चालीसको पार कर चुकी थी, पुरीमे स्वर्गद्वारसे पूरबकी ओर अपने लिए एक मकान बनवा रहा था और 'ओशन व्यू' होटलमे रहता था। अपने पुराने सहपाठी भूपेन सरकारसे भेंट हो गयी। वह उस समय एक बड़े सरकारी अफ़सर थे, छुट्टी लेकर आये थे, और उनके साथ उनकी बहन सत्यभामा सरकार भी थी। दोनों ही मेरे होटलमें आ टिके। सत्यभामा नामी महिला थीं : दो बार विलायतका चक्कर लगा चुकी थी और हुण्डागढ़की रानीको अंग्रेजी पढाती और अदब-क़ायदा सिखाती थीं, बहुत-सी किताबें भी उसने लिख डाली थी। नाम पहले ही से सुन रखा था, अब परिचय हो गया। उम्र लगभग पैंतीसके, भारी-भरकम देह, फूला-फूला चेहरा, आँखें बड़ी, नीचेवाला होंठ ज़रा बाहर निकला हुआ—देखते ही समझमे आ जाता कि आप एक जबर्दस्त महिला है, पतिको बसमे रखनेकी शक्ति आपमे है। सोचा, यदि इस सत्यभामाके ही सामने आत्म-समर्पण कर दिया जाये तो क्या नुक़सान ! दो दिन मिलने-जुलनेपर अनुभव हुआ कि जिस तरह उसे मैं ठोक-बजाकर देख रहा था, वह भी मुझे देख रही थी।—"

"आपकी बातें सुनते लगता है मानो कोई शिकारकी कहानी सुन रहा हूँ।"

"हाँ, कुछ-कुछ वैसा ही था भी—मानो एक शेरनी शिकारके लिए

दुबकी पड़ी हो और एक शेर उसके पीछे-पीछे घूम रहा हो। उसके बाद एक दिन मैं अपने नये मकानकी देख-भाल करने गया, साथमे भूपेन और सत्यभामा भी थे। सत्यभामा बोली, आपको पता है न कि ईंटें अच्छी तरहसे भिगो लेनी चाहिए और तीन हिस्सा सुर्खीके साथ एक हिस्सा चूना मिलाना चाहिए वरना बुनियाद पक्की न होगी। मुझे ज़रा गुस्सा आया। सात मकान मैंने खुद बनवाये थे, किसी भी ओवरसियरसे मेरा ज्ञान कम नहीं, और आज यह सत्यभामा मुझे सिखाने चली है!"

"आपको तो नाराज़ नही होना चाहिए था। क्योंकि आपने तो आत्म-समर्पण करनेकी सोची थी। नम्बर दो दाम्पत्यमे पतिको पत्नीका उपदेश सुनना ही पड़ता है।"

"यह बात ठीक है, लेकिन उपदेश सुननेका आदी न होनेकी वजहसे बडा हो नागवार लगा। उस समय तो मै अपनेको सँभाल ले गया लेकिन बादमे बखेड़ा खड़ा हो ही गया। रातको होटलमे अब एक ही मेजपर बैठे खाना खा रहे थे। सत्यभामा बोली, सुनिए मिस्टर नन्दी, आपका खाना बिलकुल साएण्टिफ़िक नहीं है : मछली, मांस, अण्डा, टॅमाटो, कैरॅट, लेटुस यह सब खाना जरूरी है, जो कुछ खा रहे है उसमे क़तई विटामिन नहीं है। अब मुझसे चुप न रहा गया। कैलॅरी प्रोटीन, ऐमिनो-एसिड और विटामिनके रग-रगका मुझे पता है, सबका वैज्ञानिक तथ्य मैने घोलकर पी लिया है, और यह मास्टरनी मुझे लेक्चर पिला रही है! मारे गुस्सेके एक असत्य बात कह डाली—देखिए मिस सत्यभामा, विटामिन मुझे माफ़िक नही, डाक्टरने मना किया है। सत्यभामा घबराकर एकदम चुप हो गयी।

"देख रहा हूँ कि आपमे धीरजकी बड़ी कमी है।"

"यही तो मुसीबत है, उपदेश मैं क़तई बरदाश्त नहीं कर पाता। इसके चार दिन बाद जो कुछ हुआ वह एकदम संगीन मामला है। शामको समुद्रके किनारे बैठे हम लोग सूर्यास्त देख रहे थे : सिर्फ़ मैं और सत्यभामा। भूपेन शायद जान-बूझकर ही नहीं आया था। अचानक सत्यभामा बोल

पड़ी, सुनो अक्रूर, यह मूँछ-दाढ़ी तुम कल ही साफ़ कर डालो, इसमे तुम अच्छे नहीं लगते, बिलकुल जंगली जैसे लगते हो। देखिए उनकी जुरअत ! किसीकी बकरा-नुमा दाढ़ी हो या चूहोंसे कुतरी हुई-जैसी दाढी हो तो उस भद्देपनको न रखना ही भला; पर मेरी जैसी खूबसूरत और भरी हुई दाढ़ीका सफ़ाया किसी ग़ममें भी कराते क़लक हो ! सत्यभामाकी बातसे मेरा मिज़ाज गरम हो गया। करोडों सालसे पुरुषत्वका जो बीज प्राणी परम्परासे संचारित होता आया है, जिसके प्रभावसे सिंहका केशर, साँड़ का डिल्ला, मोरके पंख और मनुष्यकी दाढी-मूँछोंका उद्भव हुआ है, वही भयानक पुं-हॅरमोन मेरे रक्त-मास-मज्जामे कुपित हो उठा और मैंने धमका-कर कहा, चुप रहो, ख़बरदार जो ऐसी बात मुँहपर लायीं, मुँड़ाना चाहती हो तो अपना सिर मुँडा डालो। सत्यभामाने एक बार मेरी ओर गुस्से-भरी नज़रोंसे देखा, उसके बाद उठकर चली गयी। रातमे खाना खाते वक़्त भाई-बहन कोई न दिखायी पड़े। अगले दिन सवेरेकी ट्रेनसे मै कल-कत्ते रवाना हो गया।"

"उसके बाद कहीं और दो नम्बर दाम्पत्यकी कोशिश आपने की ?"

"राम कहो ! मैं समझ गया कि एक नम्बर या दो नम्बर कोई भी मेरे बूतेका नहीं। उसके बाद अचानक ही एक दिन मैंने तीन नम्बर दाम्पत्यका आविष्कार किया, जिसमे पति-पत्नी अपनी-अपनी मर्जीके मुताबिक़ चलते है पर उनमे संघर्ष नहीं होता। यह आविष्कार दरअस्ल मेरा नहीं था, रवीन्द्रनाथने ही किया था—"

"क्या कहते है आप ?"

"हाँ, रवीन्द्रनाथ ही कर गये हैं। लेकिन लोग उस आविष्कारकी अहमियत नहीं समझ पाये, मैंने उनकी रचनासे ही पुनराविष्कार किया है। उन्होंने क्या लिखा है सुनना चाहते है ?"

अक्रूर बाबू बग़लके कमरेसे 'शेषेर कविता' लाकर पढ़ने लगे।—

"अमितराय लावण्यसे कह रहा है—उस पार तुम्हारा घर और इस

पार मेरा····एक दीपक अपने घरके शिखरपर लगवा दूँगा : मिलनकी शाम को लालबत्ती जलेगी और विरहकी रातको नीली।····बिन बुलाये तुम्हारे घर कभी नहीं जा सकूँगा।····तुम्हारा बुलावा महीनेमे एक बार पूनोकी रातको होगा।····दुर्गापूजाके समय दो माहके लिए दोनों जने घूमने निकलेंगे। लेकिन दो जने दो जगहोंपर। तुम अगर पहाड़पर जाओ तो मै समुद्रकी ओर जाऊँगा। यह रही मेरे दाम्पत्यके द्वैराज्यकी नियमावली जो तुम्हारे सामने पेश की गयी है। तुम्हारी क्या राय है? लावण्य जवाब दे रही है—मान लेनेको तैयार हूँ····मै जानती हूँ मुझमें ऐसा कुछ नहीं है जो तुम्हारी दृष्टिको बिना लाजके सह सके, इसलिए दाम्पत्यमे दो तटोंपर दो महल बना देना मेरे लिए खतरेसे खाली है।····उसके बाद लावण्य प्रश्न करती है—लेकिन तुम्हारी नव-वधू क्या हमेशा ही नव-वधू बनी रहेगी? मेजपर जोरसे थपथपाते हुए ऊँचे स्वरमे अमित बोला—रहेगी, रहेगी, रहेगी।"

मैं बोला, "अमितरॉय है बातोंकी फुलझडी। रवीन्द्रनाथने मजाकमे उससे जो कुछ कहलाया है उसे आपने सच क्यों मान लिया?"

अक्रूर बाबूने मेजपर घूँसा जमाते हुए कहा, "बिलकुल मज़ाक़ नही निखालिस सत्य है। वे सर्वदर्शी कवि थे, दाम्पत्यका जो चरम है उसीका इशारा वे तीन नम्बरमे दे गये है। उसका भावार्थ है पति-पत्नी अलग-अलग मकानोंमें रहेगे, कभी-कभार मिलेंगे, तभी उनकी प्रीति स्थायी होगी, और नव-वधू हमेशा नयी-नवेली दुल्हन-जैसी बनी रहेगी।"

"तब क्या आपने इस प्रकारके दाम्पत्यकी भी कोशिश की थी?"

"सिर्फ़ एक बार कोशिश की और वह भी नाकाम रही। लेकिन मेरी नाकामयाबीका कारण यह नहीं कि रवीन्द्रनाथकी थ्योरी ग़लत है, बल्कि मेरे चुनावमें ही ग़लती थी। बहरहाल अब कोशिश करनेकी ख्वाहिश भी नहीं रही।"

"यह घटना भी बतायेंगे क्या?"

"सुनिए। मेरी उम्र तब पचासके लगभग थी। रवीन्द्रनाथका फ़ॉर्मूला अचानक एक दिन आविष्कृत कर मुझे लगा, वाह, यही तो दाम्पत्यका श्रेष्ठ मार्ग है। कोशिश करके देख भी लिया जाये। मेरे कई मकान थे, छोटे-बड़े फ़्लैटोंमे बँटे हुए, उन्हे किरायेपर उठाये हुए था। एक दिन एक महिलाने मुझसे मिलकर एक छोटा-सा फ़्लैट किरायेपर लिया। उनका नाम था वागीश्वरी दत्त; उम्र क़रीब चालीस, किन्नर विद्यापीठमे गाना-बजाना और नाच सिखाती थी। देखनेमे कुछ बुरी न थी, मुझे पसन्द भी आयी, धीरे-धीरे रसाई बढी। सोचा एक नम्बर दाम्पत्यकी तो कोई आशा नहीं, दो नम्बरमे रुचि नहीं, इस वागीश्वरीको लेकर तीन नम्बरकी कोशिश की जाये। जब अलग-अलग ही रहना है तब आदर्श और मतका प्रश्न नहीं उठता। उससे मुलाक़ात कर मैंने पूछा, सुनो वागीश्वरी, मुझसे शादी करोगी ? मै अपने मकानमे रहूँगा, तुम्हे अपना रसा-रोडवाला मकान दे दूँगा, वह भी काफ़ी अच्छा मकान है। तुम्हें रुपया भी काफ़ी दूँगा। तुम अपने घरपर अपनी मरजीके मुताबिक़ रहोगी, मेरी पसन्द-नापसन्द तुम्हे माननी भी न पडेगी। महीनेमे एक दिन मै तुम्हारा मेहमान बनूँगा और तुम एक दिन मेरी। इस शर्त्तपर शादी करनेको तैयार हो ? वह बोली, जी अभी ही तैयार हूँ। यह तो बहुत ही अच्छा होगा, अपने मकानमे माँ, दादी, मौसी, दो भाई और चार बहनोंको भी बुलवाकर रख लूँगी, इस फ़्लैटमे तो बिलकुल नही अँटता। मैं बोला, ऐसा तो नही कर सकोगी : तुम्हारे घर जानेपर फिर मेरा भीड़से दम घुटने लगेगा। वागीश्वरी बोली, तुम्हें वहाँ कौन जानेको कह रहा है ? तुम अपने ही घरपर रहोगे, मैं तुम्हारे पास आकर रहूँगी। तुम ऐसे ढीले-ढाले आदमी हो कि मै न देखूँ तो नौकर-चाकर सब चौपट कर देंगे—नहीं, नहीं, मुझसे वह सहा न जायेगा। मेरे फूफाका भांजा प्राणतोष दादा भी मेरे पास रहेगे, वही सब देख-भाल करेंगे, तुम्हे कुछ भी न करना होगा। वागीश्वरीका सारा विचार सुनकर मैं तभी खिसक आया। उसके बाद तीन दिन वह मुझसे मिलने

आयी पर मैंने उसे दुत्कार दिया।"

मैंने पूछा, "वकीलकी चिट्ठी नहीं मिली ?"

अक्रूर बाबू बोले, "मिली थी। जवाबमें मैंने बताया, कोई ब्रीच ऑव प्रॉमिज़ नहीं हुआ है, मैं एक पैसा भी नहीं दूँगा। लेकिन वागीश्वरी अगर महीने-भरके अन्दर अपने प्राणतोष दादा या और किसीके साथ शादी कर ले तो पाँच हज़ार रुपया दहेजमें देनेको तैयार हूँ। वागीश्वरी उसीपर राजी हो गयी थी।"

"सभीको दहेज़ दिया, सिर्फ़ बेचारी सत्यभामा ही फोकटमें रहीं।"

"नहीं, वह भी एकदम वंचित नहीं रहीं। पुरीसे चले आनेके तीन महीनेके बाद एक निमन्त्रण-पत्र मिला था—हुण्डागढ़के चाचासाहबके साथ सत्यभामाकी शादी हो रही है। मैंने एक छोटा-सा पेकिनीज़ कुत्ता उपहारमें सत्यभामाको भेजा—बड़ा खानदानी कुत्ता था, उसपर क़रीब आठ-सौ रुपये खर्च हुए थे।"

"एक, दो, तीन नम्बर सभी आपने आज़मा लिये। अब आपका भावी प्रोग्राम क्या है ?"

"कुछ भी तय नहीं कर पाया हूँ। आप तो बोद्धा व्यक्ति हैं, कुछ सलाह दीजिए न ?"

"सुनिए अक्रूर बाबू, आपके प्रति आदरकी मेरी भावना असीम बन चुकी है। जो बता रहा हूँ उसका बुरा न मानिएगा। मैं सामान्य व्यक्ति हूँ, शरीर या मनका तत्त्व कुछ भी नहीं जानता हूँ। लेकिन मुझे लगता यों है कि आपने जो पुं-हॅरमोनके बारेमें बताया, वह कई क़िस्मकी है। एकसे दाढ़ी उगती है, एकसे हुमसने यानी हमला करनेकी शक्ति आती है, और एकसे सरदारी करनेकी प्रवृत्ति पैदा होती है। इसके अलावा एक और है जिससे प्रेमका जन्म होता है। मुझे लग रहा है आपमें उसीकी कुछ कमी है। आप किसी विशेषज्ञ डॉक्टरसे सलाह लें।"

थोड़ी देर खामोश रहनेके बाद अक्रूर बाबू बोले, "हाँ, ऐसा ही करूँगा।"

मैंने नमस्कार कर बिदा ली। उसके बाद अक्रूर नन्दीसे फिर मुलाक़ात न हुई। सुना कि उन्होंने अपनी सारी जायदाद दान कर दी, द्वारकाधाममें तपस्विनी जगदम्बा माताजीके आश्रममे रह रहे हैं। सज्जनने अन्त मे आत्म-समर्पण ही किया! उम्मीद करता हूँ कि उन्हे शान्ति मिली होगी।

# उपेक्षिता

तीन नम्बर रोडोडेण्ड्रन रोड, बालीगंज। बाहर मुसलाधार वर्षा हो रही थी। ड्राइङ्-रूममें पियानोके पास गरिमा गागुली बैठी थी और सामने आरामकुरसीपर चटक राँय। कमरेमें सामान ज़्यादा न था क्योंकि गरिमाके पिताकी ढाकाके लिए बदलीका हुक्म हो चुका था और कितना ही सामान पहले ही पैक करके रवाना कर दिया गया है।

चटक नामका यह लड़का जैसा धनी है वैसा ही मिष्टभाषी, विनयी और सीधा : नाखून गड़ा देनेपर भी उफ़् नहीं करता। उसे आसानीके साथ नारि-पुरुष या 'लेडीज़ मैन' कहा जा सकता। होता भी क्यो नही, पाँच बरस विलायत रहकर उसने सिर्फ़ एटीकेटका ही अध्ययन किया है। ऐसा सुपात्र आजकल बाजारमें खोजे मिलना मुश्किल है। गरिमाके माता-पिता कलकत्ता छोडनेसे पहले अपनी कन्याको वाग्दत्ता रूपमें देखना चाहते है, इसीलिए रवाना होनेके पहले दिन शामको भावी दम्पतिको एकान्तमें मिलने और बातचीत करनेका अवसर देकर स्वयं दुमंज़िलेपर बैठे खुश-खबरीका इन्तज़ार कर रहे थे।

लेकिन बातें कुछ जम न पायीं। बारह-पन्द्रह गाने सुनाकर गरिमाने तीसरी बार बताया, "कल हम लोग जा रहे हैं।"

चटक बोला, "ओः !"

हाय रे, अलविदाकी सूचनापर यह प्रतिक्रिया ! गरिमाके मुँहका बोल गलेमें ही रह गया। थोड़ी देर बाद किसी तरह बोल सकी, "वह भूटानी ग़ज़ल गाऊँ ?"

"नहीं, अब उठा जाये।"

"यह क्या, पहले बारिश तो रुक जाने दीजिए।"

चटक कुरसीपर बैठा चुपचाप बेचैनी ज़ाहिर करने लगा। दो मिनिट बाद फिर बोला, "अब उठता हूँ।"

गरिमा सोच रही थी, कविने उतना सब बेकार ही लिखा है। यह बरसाती शाम क्या बेकार जायेगी? चटकको हो क्या गया? क्यों वह भागना चाहता है? उसे कौन-सी बेचैनी, कौन-सी बेकली है? गरिमाकी मोहिनी शक्ति आज उसे बाँध नही पा रही थी। कहीं उस मेढकी-से मुँह वाली मेनी मित्तिरने तो अपने चंगुलमे नहीं फँसा लिया? हो सकता है! वह तो 'मान-न-मान मैं तेरा मेहमान' टाइपकी लड़की है! गरिमा गले तक आयी हुई रुलाईपर क़ाबू पाती बोली, "जरा और बैठ जाइए।"

लेकिन चटक बैठा नही। कुरसीसे उछलकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "नही, चलता ही हूँ, गुडनाइट!"

बारिशकी अटूट झिमिर-झिमिरको फोड़ती-रौंदती चटककी मोटर घरघरा उठी। चला गया! जो कहनेका था वह बग़ैर कहे ही चला गया! भोंप् भोंप्—दूर, बहुत दूर!

गरिमा रोने-रोनेको हुई चटककी ख़ाली की हुई कुरसीपर लुढ़क पड़ी। उसके बाद ही एक छलाँग। भीषण सत्य सहसा प्रकट हो गया। बेचारा चटक!

कुरसीमे बेहद खटमल थे।



*

# तीसरी द्यूतसभा

महाभारतमें मिलता है कि पहली द्यूतसभामे जब युधिष्ठिर सब-कुछ हार गये तो धृतराष्ट्र बहुत दुखी हुए और उन्होंने जुएमे जीता हुआ सब-कुछ युधिष्ठिरको लौटा दिया था। पाण्डव जब इन्द्रप्रस्थ लौट रहे थे तब दुर्योधनकी प्रेरणासे धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको फिर जुआ खेलनेके लिए आमन्त्रित किया था। इस दूसरी द्यूतसभामे भी युधिष्ठिर हार गये जिसके कारण पाण्डवोंको निर्वासन मिला।

शकुनि और युधिष्ठिरने कैसे पाँसोसे खेला था? उनके खेलमें न कोई बिसात थी, न कोई गोटी, दोनों ही पक्ष बाजी बोलते और पाँसा फेंकते थे, जिसकी चाल ऊँची आती उसीकी विजय होती थी। महाभारतके द्यूतपर्वाध्यायमे युधिष्ठिरके हर बार बाज़ी ऐलान करनेके उपरान्त यह श्लोक मिलता है—

**एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।**
**जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत॥**

अर्थात् प्रण-घोषणा सुनते ही शकुनि निकृति (शठता) का आश्रय ले खेलनेमें प्रवृत्त हुए और पुकारकर युधिष्ठिरसे बोले : मैं जीता! इससे समझा जा सकता है कि पाँसा फेंकनेके साथ ही एक-एक बाजी खत्म होती जाती थी।

बहुत लोग नहीं जानते कि महाभारतके युद्धसे कुछ दिन पहले युधिष्ठिरने एक बार और शकुनिके साथ पाँसा खेला था। व्यासदेवने महाभारतसे यह तृतीय द्यूत-पर्वाध्याय क्यों छोड़ दिया है यह कहना मुश्किल है। शायद कोई राजनैतिक कारण था, या उन्होंने सोचा हो कि आसन्न कलयुगमें द्यूत-पद्धतिका रहस्य खुल जाना जनताके लिए घोर अमंगलकारी

होगा। वर्त्तमान वैज्ञानिक युगमे ठगने-ठगानेके जो तरीके निकले हैं उनकी तुलनामे शकुनि और युधिष्ठिरका पाँसा खेलना बच्चोंका खेल-सा है, इसलिए अगर वह प्राचीन रहस्य खुल जाये तो कोई बहुत नुकसान न होगा।

कुरुक्षेत्र-युद्धसे पचीस दिन पहलेकी बात है। सवेरेका समय था, युधिष्ठिर अपने शिविरमे बैठे थे और सहदेव उन्हे युद्ध-कालके लिए जमा की गयी रसदकी तालिका पढ़कर सुना रहे थे। अर्जुन पांचाल-शिविरमे मन्त्रणा करने चले गये थे, नकुल सेनाओंकी क़वायदमे व्यस्त थे। भीमने जो एक-सौ गदाओंका ऑर्डर दिया था वे बनकर आ गयी थी, अब वे एक-एकका संचालन कर उसे एक-एक धार्तराष्ट्रके नाम उत्सर्ग कर रहे थे। सभी गदाएँ साखूकी बनी थी, सिर्फ एक रुई-भरा हुआ कपड़ेका खोल थी। यह दुर्योधनके अठारहवें भाई विकर्णके लिए थी। उस छोकरेका चाल-चलन अच्छा था, उसने द्रौपदीके धर्षणके समय भी कसकर विरोध किया था।

सहदेव पढ रहे थे, "यवशक्तु द्वादश मन, चणकचूर्ण अष्ट लक्ष मन, अभग्न चणक पचास लक्ष मन—"

तालिका सुनते हुए युधिष्ठिरको ऊब लग रही थी। अगर कोई दिलचस्पी न दिखाते तो भी बात नहीं बनती। सो उन्होंने सवाल किया, "इतनेमे पूरा पड़ जायेगा ?"

सहदेवने कहा, "बहुत अच्छी तरहसे। कुल जमा सात अक्षौहिणी तो सेना ही है, लड़ाई ख़त्म होनेमें ज़्यादासे-ज़्यादा बीस दिन लगेंगे, और हर दिन मरेंगे भी काफ़ी तादादमे ! आगे सुनिए, घी एक लक्ष कुम्भ,—"

"देख रहा हूँ, तुम मुझे कहींका भी नहीं रखोगे, इतनी सामग्रीके लिए रुपया कहाँसे आयेगा ?"

"रुपयेकी क्या ज़रूरत ? सभी कुछ उधार ख़रीद रहा हूँ, विजयके बाद मीठी बोलीसे चुका दीजिएगा। सुनिए—तैल द्विलक्ष कुम्भ, लवण

अर्धलक्ष मन—"

"बस भाई बस, जो इन्तजाम करना हो सो कर डालो, मुझे मत तंग करो ! मै राजधर्म समझता हूँ, नीतिशास्त्र समझता हूँ, सवाल लगाना वैश्योका काम है, मेरे दिमाग़मे यह सब नही घुसता ।"

उसी समय प्रतिहारने आकर कहा, "धर्मराज, एक अभिजात-सा कुबड़ा आपका दर्शनाभिलाषी है । उन्होंने अपना परिचय न दिया; कहा कि उन्हे जो कुछ कहना है वह बहुत ही गोपनीय है और साक्षात्कार होनेपर ही निवेदन करेंगे ।"

सहदेव बोले, "महाराज इस समय राजकार्यमे रत है, कह दो शामको आवें ।"

सहदेवके हाथसे छुटकारा पानेके लिए युधिष्ठिर व्यग्र बैठे ही थे, बोले, "नही-नहीं, उन्हे अभी ले आओ ।"

आगन्तुक कुबड़ा, प्रौढ़ वयका था, बलिचिह्नोसे भरा हुआ मुण्डित चेहरा, सिरपर बड़ी-सी पगड़ी, गलेमे नीले रगका रत्नहार, ढीला पाजामा और उसके ऊपर लम्बा कुरता । हाथ जोड़कर माथेसे टिकाते हुए वह बोला, "धर्मराज युधिष्ठिरकी जय हो !"

युधिष्ठिरने पूछा, "सौम्य, आप कौन हैं ?"

आगन्तुकने जवाब दिया, "महाराज मेरी धृष्टता क्षमा हो, मै अपना वक्तव्य केवल राजकर्णमे ही निवेदन करना चाहता हूँ ।"

युधिष्ठिर बोले, "सहदेव, तुम अब जा सकते हो । चनेके बोरे खोल-कर देख लेना कहीं कीड़ा लगे हुए न हों ।" सहदेव नाराज हो सन्दिग्ध मन लेकर चला गया ।

आगन्तुकने अनुच्च स्वरमें कहा, "महाराज, मैं सुबल-पुत्र मत्कुनि हूँ, शकुनि मेरा सौतेला भाई है ।"

"बहुत खूब, तब तो आप हमारे पूज्य मामा है ! प्रणाम, प्रणाम ! बड़े सौभाग्यकी बात है ! इस सिंहासनपर बैठनेकी कृपा करें ।"

"नहीं महाराज, यह नीचा आसन ही मेरे योग्य है। मैं दासीपुत्र हूँ, आपकी आवभगतके अयोग्य हूँ।"

"अच्छा अच्छा, तो आप शृगालका चमड़ा मँढे उस आसनपर बैठ जाइए और कृपाकर बताइए कि किस प्रयोजनसे आपका आना हुआ है। मामाजी, आपको इससे पहले मैंने कभी देखा नहीं ?"

"देखेंगे आप कैसे महाराज ? मै अन्तरालमे ही रहता, इसके अलावा पिछले तेरह बरससे तो मैं विदेशमें था। कुबड़ेपनके कारण क्षत्रिय धर्म का पालन करना मेरे लिए सम्भव न था, इसलिए मैंने यन्त्र-मन्त्र विद्यामे सिद्धि प्राप्त की। देवशिल्पी विश्वकर्माने मुझे वरदानसे कृतार्थ किया है। पाण्डवराज, मैंने सुना है, द्यूतक्रीडामे असामान्य कुशल है, अक्षहृदय आपके नख-दर्पणपर है ?"

"हाँ लोग ऐसा ही कहते हैं।"

"फिर भी शकुनिके हाथों आपकी हार हुई है। क्या आपको इसका कारण मालूम है ?"

युधिष्ठिरने भौं सिकोड़कर कहा, "शकुनिने धर्म-विरुद्ध कपट-द्यूतमे मुझे हराया था।"

मत्कुनिने जरा हँसकर कहा, "द्यूतमें कपट-अकपटका भेद नही महाराज! जिस अक्षक्रीड़ामे दैव ही दोनों ओरका अवलम्बन हो उसे अज्ञ लोग अकपट कहते है। अगर एक पक्ष दैवपर निर्भर करे और दूसरा पक्ष पुरुषकार द्वारा जयलाभ करे तब प राजित पक्ष कपटकी शिकायत लाता है। धर्मराज, आपका दैवपातित अक्ष शकुनिके पुरुषकार-पातित अक्षसे परास्त हुआ है। आप प्रबलतर पुरुषकारका प्रयोग कीजिए, रावण-बाणके विरोधमे राम-बाणका प्रयोग कीजिए : द्यूतलक्ष्मी आप ही का वरण कर लेंगी।"

"मामाजी, आपकी बातें मेरी समझमे साफ़-साफ नहीं आ रहीं। लोग कहते है कि शकुनिके अक्षके भीतर एक तरफ़ कहीं एक सोनेका पत्ता लगा है, उसीके भारसे वह बाजू हमेशा नीचेकी ओर चला जाता है और ऊपरकी

तरफ़ गरिष्ठ विन्दु-संख्यावाला वाजू ऊपर आ जाता है।"

"महाराज, लोग कुछ नहीं जानते। स्वर्णगर्भ या पारदगर्भ पाँसा लेकर बहुत लोग खेलते अवश्य हैं लेकिन उसका गिरना सुनिश्चित नहीं होता। कई बार फेंका जाये तो दो-चार बार वह भ्रंश हो ही सकता है। आप लोग तो अनगिनत बाजियाँ खेल चुके होंगे, पर कभी एक बार भी आपकी जीत हुई?"

युधिष्ठिरने उसाँस लेकर कहा, "एक बार भी नहीं मामा।"

"फिर? शकुनि कोई कच्चे खिलाड़ी नहीं हैं, वह बगैर अचूक पाँसा लिये आपके साथ खेलते ही नहीं।"

"लेकिन अब इन सब बातोंकी क्या ज़रूरत है? युद्ध आसन्न है, फिर-से द्यूतक्रीड़ाकी सम्भावना नहीं और शकुनिको हरानेकी ताक़त भी मुझमें नहीं है।"

"धर्मपुत्र, निराश न हों; मेरी गूढ बातें अब सुनें। शकुनिका अक्ष मेरे ही द्वारा बनाया गया है, उसके गर्भमें मैंने ही मन्त्रसिद्ध यन्त्रकी स्थापना की है: इसी कारण उसका क्षेपण अव्यर्थ है। दुरात्मा शकुनिने यन्त्रकौशल सीखनेके बाद मुझे गजभुक्त कपित्थकी तरह त्याग दिया है। उसने मुझे आश्वासन दिया था कि पाण्डवोंके निर्वासनके बाद दुर्योधन मुझे इन्द्रप्रस्थका राजपद देगा। आप लोगोंके वन चले जानेपर जब दुर्योधनको उसका वचन याद दिलाया तब उसने कहा, मैं तो कुछ नहीं जानता, मामासे ही कहो। शकुनि बोला, मैं क्या करूँ, तुम उन्हींके पास जाओ। अन्तमें दोनों नराधमोंने मुझे छलसे दुर्गम वाह्लीक देश भेजकर वहाँपर कैद कर दिया। मैं तेरह बरसके बाद वहाँसे किसी तरह भागकर आपकी शरणमें आया हूँ।"

युधिष्ठिर बोले, "अच्छा, तो अब शायद मुझे ही पाँसा बनाकर राज्य पाना चाहते हैं?"

"धर्मराज, मेरा पूर्व अपराध क्षमा कीजिए, जो होनेका था सो हो

गया, अब मुझे आप अपना परम शुभचिन्तक जान लीजिए। मैंने बौना होकर इन्द्रप्रस्थ-रूपी चन्द्रके लिए हाथ पसारा था इसीलिए मेरी दुर्दशा हुई। आप विजयी शकुनिको भगाकर मुझे केवल गान्धार-राज्य दे दीजिएगा, मैं उसीसे सन्तुष्ट हो जाऊँगा।

"आपके बनाये हुए अक्षसे मेरा जो सर्वनाश हुआ उसीके पुरस्कारके बतौर ?"

मत्कुनि जीभ काटकर बोला, "उस बातकी चर्चा अब न कीजिए महाराज ! मेरा वक्तव्य तो पूरा सुन लीजिए। मुझे गुप्त समाचार मिला है कि धृतराष्ट्रकी आज्ञासे संजय अभी आपके पास आ रहा है। दुर्योधन और शकुनिके बहकानेसे अन्ध राजाने फिर आपको द्यूत-क्रीड़ामे बुलाया है। महाराज, यह अवसर हाथसे न गँवाइएगा।"

प्रायः तभी रथको घर्घर ध्वनि सुन पड़ी। मत्कुनि घबराता-सा बोला, "वह लीजिए, संजय आ पहुँचा। दुहाई महाराज, धृतराष्ट्रके प्रस्तावका प्रत्याख्यान ही न कर दीजिएगा, कह दीजिएगा कि आप विवेचना करके जवाब भेजेंगे। संजयके चले जानेपर अपनी सब बातें आपको बताऊँगा। फ़िलहाल मैं बग़लके कमरेमे छिपा हूँ।"

यथाविधि कुशल-प्रश्नादिके बाद संजय बोले, "पाण्डवश्रेष्ठ, कुरुराज धृतराष्ट्र आपके पास विदुर ही को भेजना चाहते थे, पर विदुर इस अप्रिय कार्यके लिए क़तई राजी न हुए तो राजाज्ञासे मुझे ही आना पड़ा। मैं सिर्फ़ दूत हूँ, मेरा कोई अपराध नही।" धृतराष्ट्रने कहा है, "बेटा युधिष्ठिर, तुम पाँच भाई मेरे सौ बेटोंके समान ही स्नेह-भाजन हो। यह लोकक्षयकारी सम्बन्धी-विनाशी आसन्न युद्ध जिस किसी उपायसे रोकना कर्त्तव्य है। मैं शक्तिहीन अन्ध वृद्ध हूँ, मेरे पुत्र अबाध्य है और युद्धके लिए उत्सुक हैं। मैंने बहुत सोच-विचारकर यह निश्चय किया है कि हिंस्र अस्त्र-युद्ध के बदले अहिंस्र द्यूत-युद्धके द्वारा उभयपक्षका वैर-भाव मिट सकता है। बड़ी कठिनाईसे मैंने अपने सब पुत्रों और उनके मित्रोंको इस बातपर राजी

कराया है। इसलिए तुम सबान्धव कौरव-शिविरमें आकर एक बार और सुहृद्-द्यूतक्रीड़ामें प्रवृत्त हो जाओ। पण पहले ही की तरह समूचा कुरु-पाण्डव राज्य होगा। अगर दुर्योधनके प्रतिनिधि शकुनिकी हार होती है तो कुरुपक्ष अपने सम्पूर्ण दलके साथ राज्य त्यागकर हमेशाके लिए वनवास जायेगा; अगर तुम हारते हो तो तुम लोग राज्यकी आशा त्यागकर हमेशा के लिए वनवास जाओगे। बेटा, तुम कपटताकी शंका मत करना! मैं दो जोडे पाँसे तैयार रखूँगा : तुम अपने हाथसे अपने लिए चुन लेना। बचा हुआ पाँसा शकुनि लेगा। इससे असन्दिग्ध व्यवस्था क्या और हो सकती है? संजयके मुँहसे तुम्हारी सम्मति पानेकी आशामें अधीर बैठा रहूँगा। हे तात युधिष्ठिर, तुम्हे सुमति हो, तुम्हारे पाँचों भाइयोंका कल्याण हो, अट्ठारह अक्षौहिणी सेनाओ सहित कुरु-पाण्डवोंकी प्राण-रक्षा हो!"

युधिष्ठिरने पूछा, "ज्येष्ठ तातने क्या स्वयं इस सन्देशकी रचना की है? मुझे तो लगता है कि उनके मन्त्रदाता दुर्योधन और शकुनि है, वृद्ध कुरुराजने सिर्फ़ तोतेकी तरह रटे हुएको दोहरा दिया है।"

एक क्षण बाद फिर महामति संजयसे उन्होंने कहा, "आप मुझे क्या करनेको कहते है?"

"धर्मपुत्र, मै कुरुराजका आज्ञावाहक दूतमात्र हूँ, अपना अभिमत व्यक्त करनेका अधिकार मुझे नहीं है। आप राजबुद्धि और धर्मबुद्धिका आश्रय लीजिए, आपका मंगल होगा।"

"तो आप जाकर कुरुराजसे कहे कि उन्होंने मुझे अत्यन्त दुरूह समस्या में डाल दिया है, मैं इसका सम्यक् रूपसे विवेचन करके जवाब दूँगा। इस समय आप विश्राम कीजिए, उसके बाद भोजन इत्यादि। कल लौट जाइएगा।"

"नहीं महाराज, मुझे अभी लौटना होगा, विश्रामका अवसर नहीं है। धर्मपुत्रकी जय हो!" यह कहकर संजयने बिदा ली।

मत्कुनि बगलके कमरेसे निकल आया और बोला, "महाराज, आपने बहुत ठीक जवाब दिया। अब मेरी मन्त्रणा सुनिए। आज ही तिपहरको धृतराष्ट्रके पास एक विश्वासी दूत भेजिए—लेकिन आपके भाई न जान पावें। आपका दूत जाकर कहे, हे पूज्यपाद ज्येष्ठ तात, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, अत्यन्त अप्रिय होनेपर भी तीसरी बार द्यूत-क्रीड़ाके लिए मै सहमत हूँ। आपके तय किये हुए पाँसेकी मुझे कोई जरूरत नहीं, मै अपने ही पाँसेसे खेलूँगा। आपने जो पण ठीक किया है उसमे भी मेरी सम्मति है। सिर्फ़ यह नियम आपको मानना पड़ेगा कि शकुनि और मै दोनों सिर्फ़ एक-एक अक्ष लेकर खेलेंगे और पाँसा सिर्फ तीन बार फेंका जायेगा, उसमें जिसकी विन्दुसमष्टि ज्यादा होगी उसीकी जय होगी।"

युधिष्ठिर बोले, "हे सुबल-नन्दन मत्कुनि, आप सम्बन्धमे मेरे मातुल होते हैं पर अब तो लग रहा है कि आप बातुल है। मै किस भरोसे फिर शकुनिसे स्पर्धा करूँ? आपने मुझे अगर शकुनिके अनुरूप अक्ष प्रदान किये तो बराबर-बराबरकी होड़ होगी। उसमे मेरी जयकी निश्चिन्तता कहाँ? अपने भाइयोंसे राय लिये बिना ही मैं क्यों इस द्यूतक्रीड़ामें सम्मति दूँ? फिर तीन ही बार अक्ष फेंकनेका क्या अर्थ? अधिक बार फेंकनेमे ही तो संख्यावृद्धिकी सम्भावना अधिक है। और आप दुर्योधनके चर नही इसका भी क्या प्रमाण है?"

मत्कुनि बोला, "महाराज स्थिरो भव! आपका सारा संशय मै दूर कर रहा हूँ। अगर आप धृतराष्ट्रका आयोजित अक्ष लेकर खेलें तो आपकी पराजय अनिवार्य है। धूर्त शकुनि उस अक्षसे नहीं खेलेगा, हाथमे लेकर ऐन्द्रजालिककी सफ़ाईसे बदलकर अपने पहलेवाले अक्षसे ही खेलेगा। मैं इतने दिन वाह्लीक दुर्गमे निश्चेष्ट नहीं बैठा रहा, निरन्तर खोजोके द्वारा मैने प्रचण्डतर मन्त्रशक्तियुक्त अक्षका उद्भावन किया है। आपको यही नया यन्त्रवाला अक्ष दूँगा, इसके निकट आते ही शकुनिका पुराना अक्ष नाकाम हो जायेगा। महाराज, आपकी विजयमें तनिक भी संशय नहीं।

आपके भाई युद्धलोलुप हैं, आपकी नाईं स्थिरबुद्धि तथा दूरदर्शी नहीं। वे आपको बाध्य करेंगे और इस प्रकार खून-खराबीसे मुक्त इस विजयके महान् अवसरसे आपको हाथ धोना पड़ेगा। आप पहले धृतराष्ट्रको खबर भेजें, उसके बाद अपने भाइयोंको बताइएगा। उनकी भर्त्सनापर आप हिमालयके समान निश्चल रहिएगा।"

"लेकिन द्रौपदी ? मामा, आपने उसके कटुवाक्य कभी सुने नही है।"

"महाराज, औरतोंका गुस्सा तृणाग्नितुल्य होता है, उससे विदीर्ण नहीं होना चाहिए। मामला ही कितने दिनका है, आपकी विजय हो जाने के बाद सभी निन्दकोंका मुँह बन्द हो जायेगा। इसलिए आगे सुनिए— मेरा यह यन्त्र अत्यन्त सूक्ष्म है, अतः एक दिनमें अधिक बार अक्ष फेंकना भी अविधेय होगा। शकुनिका अक्ष भी बहुत समय तक सक्रिय नहीं रहता, इसलिए वह खुशी-खुशी आपका प्रस्ताव मान लेगा। आपकी जय के लिए तीन बार फेंकना ही काफ़ी है। अक्ष मेरे साथ है, परीक्षा कर देखिए।"

मत्कुनिने अपनी कमरसे बँधी थैलीसे हाथी-दाँतका बना हुआ एक अक्ष निकाला। युधिष्ठिरने ग़ौरसे देखा तो पाया कि यह अक्ष शकुनिके अक्षके अनुरूप ही था : वैसा ही आकार, वैसा ही मसृण, ऊपरका हिस्सा भी ज़रा गोलाई लिये, और हर बिन्दुके केन्द्रमें एक सूक्ष्म छेद।

मत्कुनि बोला, "महाराज तीन बार फेंककर भी देखिए।"

युधिष्ठिरने ऐसा ही किया, तीनों बार छह बिन्दु ही निकले। वे आश्चर्य-चकित होकर हिला-डुलाकर देखने लगे, लेकिन मत्कुनिने झट लेकर थैलीके अन्दर रखते हुए कहा, "महाराज मन्त्रपूत अक्षको निरर्थक हिलाने-डुलानेसे उसके गुणकी हानि होती है।"

युधिष्ठिर बोले, "आपके इस अक्षपर अवश्य भरोसा किया जा सकता है; लेकिन इसके बाद आप मुझसे विश्वासघात न करेंगे इसका कौन ज़िम्मेवार रहेगा ?"

"जिम्मेवार मेरा सिर। आप अभीसे मुझे बन्दी बना रखिए, नगी तलवारें लिये दो पहरेदार हमेशा मेरे साथ रहें। उन्हें आज्ञा दे दीजिए कि आपकी पराजयकी खबर आते ही मेरा सिर धड़से अलग कर दें। बस महाराज, अब तो आपको यक़ीन हुआ।"

"ठीक। लेकिन शकुनिका कूट पाँसा अगर मेरे कूटतर पाँसेसे हार जाता है तो यह तो धर्म-विरोधी कपटद्यूत होगा ?"

"हाय हाय महाराज, अब भी कपटका आतंक आपके मनपर-से दूर न हुआ ! आप दोनों ही तो यन्त्रगर्भ कूट पाँसा लेकर खेलेंगे : तब कपट कहाँ ? कुश्तोमें अगर आपकी बाँहोंमे शक्ति विपक्षसे अधिक हो तो क्या वह कपट होगा ?"

थोड़ा ठहरकर मत्कुनि आगे कहता गया, "अगर आपका कौशल विपक्षपर भारी पड़े तो क्या वह कपट है ? शकुनिके पाँसेमे जो कूट कौशल छिपा है वह भी मेरी ही कृति है। धर्मराज, इस तृतीय द्यूतसभामे मै ही दरअस्ल दोनों पक्ष हूँ, आप और शकुनि तो नाम-भरके है।"

युधिष्ठिर बोले, "मत्कुनि, आपका भाषण सुनकर मेरा सिर चक्कर खा रहा है। धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है, मै बड़ी कठिन समस्यामे फँस गया हूँ। एक ओर लोकध्वंसकारी निर्दय युद्ध है तो दूसरी ओर कूट द्यूतक्रीड़ा। दोनों ही मेरे लिए अवांछित है, लेकिन युद्धको पुकार ठुकराना जैसे राजधर्म के विरुद्ध है उसी तरह ज्येष्ठ तातका आमन्त्रण ठुकराना भी मेरे स्वभावके विरुद्ध है। इसलिए फ़िलहाल आपकी सलाह ही माने ले रहा हूँ : आज ही कुरुराजके पास दूत भेजूँगा। आप अभीसे हथियारबन्द पहरेदारों-द्वारा रक्षित होकर गुप्तगृहमे रहेगे, कुरु-पाण्डव कोई भी आपके विषयमे न जान पायेंगे। मैं अगर विजयी हुआ तो आपको गान्धार राज्य मिलेगा, अगर पराजित हुआ तो अपाकी मौत है। अब अपना पाँसा मुझे दीजिए।"

"महाराज आपके पास पाँसा रहनेसे सेवाकी कमीसे उसका गुण क्षीण होगा। अभी मेरे पास ही रहने दें। मैं उसमें निरन्तर मन्त्राधान

करूँगा और द्यूत-यात्रासे पूर्व आपको दे दूँगा। अगर जी चाहे तो एक बार मेरे पास आकर आप खेलकर भी देख सकते हैं।"

युधिष्ठिर बोले, "मत्कुनि, आपका तो यह अत्यन्त तुच्छ शरीर ही मेरे हाथोंमें है किन्तु मेरी तो बुद्धि और राज्य और धर्म सभी कुछ आपके हाथोंमें है। आपके वशीभूत होनेके अलावा मेरे लिए अब दूसरा रास्ता ही नहीं है।

अगले दिन युधिष्ठिरने अपने भाइयोंको संजयके दौत्यके बारेमें बताया। धर्मराजके बुद्धि-भ्रष्ट हो जानेकी इस ख़बरपर सभी लोगोंने थोड़ी देर भौचक रहनेके बाद उन्हें जो-जो बातें सुनायीं उनका ब्योरा देना बेकार है। युधिष्ठिर चुप मारे सबके तिरस्कार सुनते रहे, उसके बाद बोले, "भाइयो, मैं तुम लोगोंमें जेठा हूँ, मुझे तुम लोग राजा भी कहा करते हो। दूसरोंसे बुद्धि लिये बिना भी राजा अपना कर्त्तव्य निश्चय कर सकता है। युद्धमें असंख्य नर-हत्याकी अपेक्षा मैं द्यूत-सभामें भाग्य-निर्णय करना बेहतर समझता हूँ। विजयके बारेमें मै क्यों निःसंशय हूँ इसका कारण मैं अभी नहीं खोल सकता। अगर तुम लोग मेरे ऊपर निर्भर न कर सको तो साफ़-साफ़ कहो, मैं कुरुराजको कहला दूँ कि हे ज्येष्ठ तात, मैं भाइयोंसे परित्यक्त हूँ, वे मुझे पाण्डवपति नहीं मानते है, द्यूतसभामें राजाके बतौर पण फेंकनेका मुझे अधिकार नहीं रहा, मैं प्रतिश्रुति-भङ्गके प्रायश्चित्तके रूप में आगमें प्रवेश कर प्राण दे रहा हूँ, आप यथाकर्त्तव्य कीजिएगा।"

तब अर्जुनने अग्रजका पैर छूकर कहा, "पाण्डवपति, आप प्रसन्न होइए, हम लोगोंकी कटूक्ति क्षमा कीजिए, मुझे हर मामलेमें अपना आज्ञा-कारी ही समझिएगा।"

उसके उपरान्त भीम, नकुल और सहदेवने भी युधिष्ठिरसे क्षमा माँग ली। युधिष्ठिरने सभीको आशीर्वाद किया और अपने कक्षमें चले गये।

द्रौपदी अबतक कुछ न बोली थी। जो आदमी इतना बेहया हो कि

दो-दो बार हार जानेके बाद और असीम कष्ट भोगनेके बाद भी फिर जुआ खेलना चाहे उसका तिरस्कार करना भी बेकार है ! युधिष्ठिर अपने कक्षमें चले गये तब सहदेवकी ओर तेज़ निगाह डालती हुई द्रौपदी बोली, "छोटे आर्यपुत्र, मुँह बाये क्या देख रहे हो ? उठो, अभी द्रुतगामी चार घोड़ेवाले रथसे मथुरा जाओ, वासुदेवको सब बातें बताकर अभी उन्हे ले आओ। वे ही अब एकमात्र आश्रय हैं, तुम पाँचोंके-पाँचों तो मांसके जड़ लौदे हो !"

दस दिनके अन्दर कृष्णको लेकर सहदेव पाण्डव-शिविरमे लौट आये। रथसे उतरकर कृष्णने बताया, "दादा भी आ रहे हैं।" युधिष्ठिरने हर्ष-भरे शब्दोंमे कहा, "वाह वाह, बड़ी खुशी है, बड़ी खुशी ! द्रौपदी बड़ी भाग्यवती है कि उसकी पुकारपर कृष्ण या बलराम कोई भी शान्त नहीं रह सकते।"

क्षण-भर बाद ही दारुकके रथपर बलराम आ पहुँचे। रथसे ही अभिवादन कर बोले, "धर्मराज, सुना कि आप लोगोंने बड़े सुन्दर कौतुकका आयोजन किया है। कुरु-पाण्डवोंका युद्ध तो मैं देखना नहीं चाहता, लेकिन आप लोगोंका खेल देखनेका मुझमे बड़ा आग्रह है। यहाँपर नही ठहरूँगा क्योंकि यदि हम दोनों भाई पाण्डवोके पास ठहरें तो पक्षपातकी बदनामी होगी। इसके अलावा यहाँपर पानीयका भी अच्छा प्रबन्ध नहीं। कृष्ण यहींपर रहे, मैं दुर्योधनका आतिथ्य स्वीकार करूँगा। द्यूतसभामे फिर मुलाक़ात होगी। रथ बढ़ाओ दारुक !" यह कहकर बलराम सीधे कौरव शिविर चले गये।

महान् समारोहके साथ द्यूतसभा लगी। धृतराष्ट्र स्थिर नहीं रह पाये, हस्तिनापुरसे दो दिनके लिए कौरव-शिविरमे आये—खेलका नतीजा देखकर लौट जायेंगे। शकुनिकी दक्षतापर उन्हे असीम विश्वास है,

कुरुपक्षकी विजयके बारेमें उन्हें कोई सन्देह नहीं है !

सभामे कृष्ण, बलराम, पञ्चपाण्डव, दुर्योधन आदिके साथ धृतराष्ट्र, शकुनि, द्रोण, कर्ण इत्यादि सभीके उपस्थित हो जानेपर पितामह भीष्मने कहा, "मै इस द्यूतसभाकी सम्यक् निन्दा करता हूँ। लेकिन मैं कुरुराजका भृत्य हूँ, इसलिए इच्छा न होते हुए भी मुझे यह अनैतिक दृश्य देखना पड़ेगा !"

द्रोणाचार्य बोले, "मैं तुमसे सहमत हूँ।"

भीष्म बोले, "महाराज धृतराष्ट्र, इस सभामें द्यूतनीतिके विरुद्ध कोई कार्य न होने पाये इसका विधान करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मैं प्रस्ताव कर रहा हूँ कि श्रीकृष्णको सभापति बनाया जाये।"

दुर्योधनने एतराज किया, "श्रीकृष्ण पाण्डव-पक्षपाती हैं।"

कृष्ण बोले, "बात कोई झूठी नहीं। और अग्रजके रहते हुए, मैं सभापति बन भी नहीं सकता।"

तब धृतराष्ट्रने सभापति-पदके लिए सर्व-सम्मतिसे बलरामका वरण किया।

बलराम तत्काल बोले, "विलम्बका अब क्या प्रयोजन है, खेल आरम्भ किया जाये। हे समवेत सुधीवृन्द, आजके इस द्यूतमें कुरुपक्षसे शकुनि और पाण्डवपक्षसे युधिष्ठिर अपना-अपना एक-एक अक्षमात्र लेकर खेल खेलेंगे। प्रत्येक तीन बार पाँसा फेंकेंगे। जिसकी बिन्दुसमष्टि ज्यादा होगी उसीकी विजय होगी। इस द्यूतमें पण है समूचा कुरु-पाण्डव राज्य। हारा हुआ दल विजयीको राज्य सौंपकर और युद्धकी वासना त्यागकर अपने दलके साथ चिरवनवासी बनेगा। सुबलनन्दन शकुनि, आप उम्रमें बड़े हैं अतः आप ही पहली चाल फेंकिए।"

शकुनि हँसते हुए अक्ष फेंककर बोल पड़े, "यह जीता !" उनका पाँसा गिरते ही जरा लुढ़ककर ठहर गया और उसपर छह बिन्दियाँ देख पड़ीं। कर्ण और दुर्योधन आदि उल्लाससे चिल्ला पड़े, "हम लोगोंकी जीत !"

बलराम बोले, "युधिष्ठिर, अब आप फेंकिए।"

युधिष्ठिरका पाँसा भी एक बार उलटनेके बाद स्थिर हो गया और उसपर भी छह बिन्दियाँ निकलीं। पाण्डव लोग चिल्ला उठे, "धर्मराजकी जय !"

बलराम बोले, "तुम लोग बेकार चिल्ला रहे हो। किसीकी भी जय नहीं हुई है, दोनों ही पक्ष बराबर रहे।"

शकुनिने गम्भीर चेहरेसे कहा, "अभी दो चाल बाक़ी है, मै ही जीतूँगा।"

दूसरी बार शकुनिका पाँसा गिरकर लुढ़का नहीं, गिरते ही रुक गया। पीठपर पाँच बिन्दियाँ थीं। युधिष्ठिरके पाँसेपर पहलेकी तरह छह बिन्दियाँ ही आयी। शकुनिने ग़ौर किया तो देखा कि उनका पाँसा काँप-सा रहा है।

पाण्डव पक्ष आनन्दसे गरज उठा। बलरामने घुड़की लगाते हुए कहा, "ख़बरदार, फिर अगर चिल्लाये तो सभासे निकाल दूँगा !"

सभा स्तब्ध हो गयी। सभी लोग आख़िरी अक्षपात देखनेके लिए साँस रोके अधीर बैठे रहे।

शकुनिने फक् पड़ा चेहरा लिये तीसरी बार पाँसा फेंका। पाँसा कीचड़ के लौंदे-सा थप्पसे गिरा। एक बिन्दी।

युधिष्ठिरके पाँसेपर फिर छह बिन्दियाँ आयीं। बलराम मेघ-गम्भीर स्वरमे बोले, "युधिष्ठिरकी जय !"

तब सभामे उपस्थित सभीने देखा कि युधिष्ठिरका गिराया हुआ पाँसा फुदक-फुदककर शकुनिके पाँसेकी ओर बढ़ रहा है।

सभामें शोर मच गया, "माया, माया ! कुहक ! इन्द्रजाल !"

दुर्योधन हाथ-पैर पटकता हुआ बोला, "युधिष्ठिरने निकृतिका आश्रय लिया है : उनकी यह जय हम नहीं मानेंगे। साधु व्यक्तिका पाँसा कहीं चलता-फिरता है ?"

बलराम बोले, "मैं दोनों ही अक्षोंकी परीक्षा करूँगा।"

युधिष्ठिरने झट अपना पाँसा उठाकर बलरामको दे दिया। शकुनि अपना पाँसा मुट्ठीमे दाबकर बोले, "अपना अक्ष मैं किसीको भी छूने नहीं दूँगा।"

बलराम बोले, "मैं इस सभाका अध्यक्ष हूँ, मेरी आज्ञा अवश्य माननी पड़ेगी।"

शकुनिने जवाब दिया, "मैं तुम्हारा आज्ञाकारी नहीं।"

बलराम ज़रा मस्ती छाने हुए थे। उन्होने नाराज हो शकुनिके गाल-पर एक चाँटा रसीद कर दिया और पाँसा छीनते हुए बोले, "हे सभ्य-मण्डली, मैं इन दोनों अक्षोंको तोड़कर देखूँगा कि भीतर क्या है।" यह कहकर उन्होंने शिला-वेदीपर दोनो पाँसे ज़ोरसे दे पटके।

शकुनिके पासेमे-से एक घुरघुरा निकलकर बेजान-सा धीरे-धीरे अपनी सूँड़ हिलाने लगा। युधिष्ठिरके पाँसेमें-से एक छोटी-सी छिपकली निकल-कर झट उस कीड़ेपर हमला कर बैठी।

वायुसे ताडित समुद्रकी तरह सभा क्षुब्ध हो उठी। धृतराष्ट्रने घबडा-कर जानना चाहा, "क्या हुआ है?"

बलरामने जवाब दिया, "कोई खास बात नहीं। एक घुर्घुर कीट शकुनिके अक्षमें था—"

धृतराष्ट्रने डरते हुए कहा, "तो उसने क्या काट खाया है? कैसी भयानक बात है?"

"काटा नहीं है महाराज, शकुनिके अक्षके भीतर था। यह कीड़ा बड़ा ज़िद्दी होता है, न करवट लेता है न चित होता है, अक्षके भीतर भर रखनेपर अक्षके साथ ही पट गिरता है। युधिष्ठिरके अक्षमें-से एक गोधिका निकली है। यह प्राणी और भी ज़बर्दस्त है, स्वयं ब्रह्मा भी इसे करवट नहीं लिवा सकते। गोधिकाकी गन्ध पाकर घुर्घुर डरके मारे सन्न होकर बैठ रहा, इसीलिए शकुनिको मनमाना फल नहीं मिला।"

धृतराष्ट्रने पूछा, "किसकी जय हुई ?"

बलराम बोले, "युधिष्ठिरकी । दोनों पक्ष ही कूट पाँसा लेकर खेल रहे थे इसलिए इसमें कपटका एतराज़ ठहरता नहीं । सुनता था कि शकुनि बड़ा चतुर है पर अब देख रहा हूँ कि युधिष्ठिर उससे भी चार हाथ लम्बा निकला ।"

युधिष्ठिरने तब अलगको बलरामसे मत्कुनिके बारेमे बताया । बलराम ने उनसे कहा, "धर्मराज, इसमें आपको कुण्ठित होनेकी कोई बात नही । कूट पाँसेका व्यवहार द्यूतविधि-सम्मत है ।"

युधिष्ठिरने बड़ी अवज्ञासे कहा. "हलधर, तुम महावीर हो पर शास्त्र कुछ भी नहीं जानते हो ? भगवान् मनुने क्या कहा है, सुनो—

अप्राणिभिर्यत् क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥

—यानी अप्राणी लेकर जो खेल होता है उसीको लोग द्यूत कहते है और प्राणी लेकर खेलनेका नाम समाह्वय है । कुरुराजने मुझे अप्राणिक द्यूतमे ही आमन्त्रण किया है पर दुर्दैवसे हम लोगोंके अक्षसे जीव निकल पड़े है । इसलिए यह द्यूत असिद्ध है ।"

कर्णने ताली बजाते हुए कहा, "धर्मराज, तुम सार्थकनाम हो !"

बलराम बोले, "धर्मराजका शास्त्र-ज्ञान असीम है हालाँकि उनमे सामान्य-ज्ञानकी बड़ी कमी है । मान लेता हूँ कि यह द्यूत असिद्ध है । उस क्षेत्रमें पहलेका द्यूत भी असिद्ध है—शकुनिने उस समय भी घुर्घुरगर्भ अक्ष लेकर खेला था । कुरुराज धृतराष्ट्र, आपके सालेके अशास्त्रीय आचरण के कारण पाण्डवोंको व्यर्थ ही तेरह बरस निर्वासनका दुःख भोगना पड़ा । अब उनका पितृराज्य उन्हें लौटा दीजिए, वरना मृत्युके बाद नरकवास आपके लिए अवश्यम्भावी है ।"

युधिष्ठिर जोशमें आकर बोले, "मैं कोई भी बात सुनना नहीं चाहता

हूँ। द्यूतप्रसंगसे मुझे घृणा होने लगी है। हम लोग युद्ध करके ही हृत-राज्यका उद्धार करेंगे। ज्येष्ठतात, प्रणाम, हम लोग चले !"

तब पाण्डव बड़ी उमंगसे बार-बार सिंहनाद करते हुए अपने-अपने शिविरकी ओर चल पडे। कृष्ण-बलराम भी उनके साथ हो लिये।

वापस आते ही युधिष्ठिर बोले, "मेरा पहला कर्त्तव्य है मत्कुनिको मुक्ति देना। इस अभागे मूर्खकी सारी मेहनत बेकार गयी। चलो, हम लोग उसे दिलासा दे आवें।"

ज़रा देर पहले ही पाण्डव-शिविरमे ख़बर आ पहुँची थी कि द्यूतसभा में कोई एक बड़ा गोलमाल हो गया है। युधिष्ठिर इत्यादि जब बन्दीघर मे आये तब दोनों प्रहरी आपसमें तकरार कर रहे थे कि मत्कुनिका सिर काट डालना चाहिए या फ़िलहाल नाक काट लेनेसे ही कर्त्तव्यपालन हो जायेगा।

युधिष्ठिरके मुँहसे सारी बातें सुनकर मत्कुनिने अपना सिर पीटते हुए कहा, "देख रहा हूँ कि दैव ही सब कहीं प्रबल है। मैंने गोधिकाको ख़ूब खिला-पिलाकर ताक़तवर बनाया था सो उसी कृतघ्न जीवने कूद-फांद मचाकर मेरा सर्वनाश कर दिया। बलदेवने फिर भी सँभाल लिया था, लेकिन धर्मराजने आख़िरमें शास्त्र पढ़कर सब चौपट कर दिया। मुक्ति पाकर मेरा क्या फ़ायदा है, दुर्योधन अवश्य ही मेरी हत्या करेगा।"

बलराम बोले, "मत्कुनि, तुम चिन्ता मत करो, मेरे साथ द्वारका चलो। वहाँपर अहिंस्र साधुओंका एक आश्रम है जिसमे असंख्य उत्कुण–मत्कुण–मशक-मूषिकादिकी नित्य सेवा की जाती है। तुम्हे उसका अध्यक्ष बना दूँगा, तुम नयी-नयी खोजों और नये-नये अनुसन्धानोंमें जीवन व्यतीत कर देना।"

# धनुमामाकी हँसी

भोलानाथ हमारे क्लासके लडकोंका मुखिया था। उसकी उम्र सबसे ज़्यादा थी और लगातार तीन सालसे वह नवें दर्जेमें ही पाँव तोडकर बैठा था। मेरी उसके साथ सबसे ज़्यादा दोस्ती थी।

हमारा शहर कुछ ख़ास बड़ा न था। सिर्फ़ एक सिनेमाघर था। कभी-कभी फ़ुटबॉल मैच हो जाती और दुर्गापूजाके दिनोमें थिएटर और सरस्वती-पूजाकी धूमधाम हो जाती। इसके अलावा हम लोगोके लिए मौज-मजेका वहाँ कोई और साधन न था। एक दिन हेडमास्टर साहब बोले, "कल शनिवार है, छुट्टीके बाद तुम सब लोग रुक जाना। स्वामी व्योमप्रकाश जी आये है, उनका भाषण सुनकर जाना।"

नीरस हिन्दी-भाषण सुननेमें हमें तनिक भी दिलचस्पी न थी, पर खुले मैदानमें टोली बनाकर बैठनेका एक अपना ही मजा होता है। व्योमप्रकाश जी लगभग घण्टे-भर सदुपदेश देते रहे। चोरी, झूठ और अविनय-जैसी बुराइयोंके परिणाम, पापका दण्ड और पुण्यका पुरस्कार आदि कितनी ही बातें समझानेके बाद अन्तमे उन्होंने एक मन्त्र हमें हमेशा याद रखनेके लिए बताया : नेकी सदा करना और बदी सदा छोड़ना। अर्थात् जो काम अच्छे है उन्हे सदा करना और जो बुरे हैं उन्हे कभी न करना!

भाषण समाप्त होनेपर हम लोगोने खूब तालियाँ बजायीं। भोला मेरे बग़लमे ही बैठा था, अचानक वह खैंक्-खैंक् करता हुआ अजीबसे भद्दे ढंगसे हँस पड़ा। मैंने कहा, "यह क्या रे?"

भोला बोला, "कुछ तो नहीं, ज़रा हँसा ही तो। यह एक नये प्रकार की हँसी है, प्रैक्टिस कर रहा हूँ—धनुमामासे सीखी है।"

"यह धनुमामा कौन रे?"

"मेरी नानीके फूफा श्रीयुक्त धनंजय दत्त। काफ़ी बूढ़े हो चुके है। माँ उन्हे धनु दादा कहकर पुकारती है। इसलिए वे हमारे मामा होते हैं। दस दिन हुए आये है, हमारे ही घर अब रहेगे। हँसते बड़ी मार्केकी हँसी है—बेशक बहुत कम, सिर्फ़ जब मौजमे आ जायें तभी!"

"तुझे वह हँसी सीखनेकी क्या ज़रूरत ?"

"नयी विद्या सीख लेनी चाहिए रे! तू भी तो मुँहमे दो उँगलियाँ डालकर सीटी बजाना सीख रहा है। मेरी हँसी अब भी हूबहू उनकी-सी नही बन पायी है : स्वर दुरुस्त करनेमें सातेक दिन और लगेंगे। चल न हमारे यहाँ, धनुमामाकी हँसी सुनना! चार पैसेवाली एक कॉपी ख़रीदकर ले चल। धनुमामा अगर पूछें : क्या करने आया है रे छोकरे ? तो तू झट कॉपी आगे बढ़ा देना और कहना—जी, आपकी एक वाणी लेने आया हूँ।"

मोड़की दूकानसे कॉपी ख़रीदकर मैं भोलाके साथ चल दिया। उसके पिताजी ठेकेदारी करते है और ज़्यादातर बाहर ही घूमते रहते है। घरमे भोलाकी माँ है और दो छोटे भाई। भोलासे सुना कि धनञ्जय दत्तका कोई वारिस नहीं है लेकिन बूढ़ेके पास रुपया काफ़ी है। वे अब उनके यहाँ स्थायी रूपसे रहेगे यह जानकर मन-ही-मन भोलाके माँ-बाप दोनों बहुत प्रसन्न हैं।

धनुमामा दुबले-पतले नाटे आदमी थे। साँवला रंग और पिचके गाल, असली या नक़ली किसी भी तरहके दाँत नहीं। सफ़ेद बाल और खिचड़ी दाढ़ी-मूँछके खड़े-खड़े रोयें, शायद सात दिनसे हज्जामका हाथ नही लगा! अपने लेटनेके कमरेमें उकड़ूँ बैठे हुए हुक़्क़ा गुड़गुड़ा रहे थे। सारा कमरा धुएँसे भर गया था।

मैंने प्रणाम कर पैरकी धूल ली। भोलाने परिचय दिया, "यह मेरा मित्र रामेश्वर है, उसी कक्षामें पढ़ता है।"

धनुमामाने माथेपर सिकुड़नें डालते हुए मेरी ओर देखा और मेढक जैसे मोटे स्वरमे बोले, "किस मतलबसे आया है रे ?"

कॉपी बढाकर मैंने कहा, "वाणी लेने।"

"वाणी ? वह क्या ?"

भोलाने मेरी ओरसे जवाब दिया, "वाणी नहीं जानते आप ? सन्देश, सदुपदेश, जिससे अन्तमे भला हो ऐसा कोई वचन आपसे माँग रहा है।"

धनुमामाके होंठोंपर एक मुसकराट दौड़ गयी। बोले, "ध्यान लगाकर पढ़ोगे-लिखोगे, सदा सच बोलोगे, और कभी चोरी नहीं करोगे—यही सब न ?"

मैं बोला, "जी हाँ, ऐसा ही कुछ जो उचित देखें।"

धनुमामा बोले, "रातमे अच्छी तरह सुझायी नहीं देता और अब हाथ भी काँपता है। मैं एक कविता बोलता हूँ, तू लिख ले, मै नीचे दस्तखत कर दूँगा। लिख—

**पर-धन कभी न लेना रे होगी विपदा बड़ी।**
**धन चोर का ले सकते हो सब आपद से बरी॥**

ऐसी अनोखी वाणी सुनकर मैं मुँह बाये उनकी ओर देखने लगा। धनुमामा बोले, "क्यों रे पसन्द नहीं आयी क्या ?"

डरते-डरते मैंने कहा, "आप तो मज़ाक़ कर रहे हैं।"

धनुमामा पीछेको सिर ढरकाये आँखें झिपझिपाते हुए ऊपरकी ओर देखने लगे। उनका समूचा चेहरा बीसों-पचासों झुर्रियों और सलवटोंमे सिकुड़कर सब तरफ़से सिमट आया। फिर एकदमसे उनके मुँहसे एक अजीब ही हँसीको आवाज़ निकली—खैंक् खैंक् खैंक् ! धीरेसे पीछे खड़े भोलाने कुहनी मारते हुए कहा, "सुना अब ?"

धनुमामा बोले, "क्यों रे भोला, इसे मेरे पास क्यों ले आया ? देखता हूँ यह लड़का अच्छा है, तेरी तरह बिगड़ा हुआ नहीं है। मेरी बातें सुननेपर तो इसका स्वभाव बिगड़ जायेगा।"

भोला बोला, "आप नहीं जानते धनुमामा, यह रामेश्वर है 'वेट कैट' यानी भीगी बिल्ली। आप इसे बेखटके उपदेश दे सकते हैं।"

धनुमामा बोले, "उपदेश तो तुम लोग काफ़ी सुन चुके हो। लेकिन मैंने जितना खोज-खोजकर पाया वह तो सब इसे बता दिया।"

तब हिम्मत बटोरकर मैं बोला, "किस तरह यह खोज आपने की सो बताइए न मामाजी!"

प्रसन्न मुखसे धनुमामा बोले, "जानना चाहता है? अच्छा, बता रहा हूँ। तुम दोनों तो सीधे स्कूलसे आ रहे हो: अभी नाश्ता-वाश्ता तो किया न होगा? जा पहले अपनी माँसे पैसे लेकर नितू हलवाईकी दूकानसे पावभर गुझिया और पाव-भर जलेबी ले आ।"

भोला मिठाई लाने चला गया। धनुमामाने मुझसे कहा, "मिठाई आ जाये तो तुम दोनों खाते-खाते मेरा क़िस्सा सुनना। तबतक ज़रा मेरे पैर दबा दे!"

मैं धनुमामाके पैर दबाने लगा। थोड़ी देर बाद ही भोला मिठाईका दोना लिये लौटा; साथ ही घरमें-से दो गिलास पानी भी लेता आया। धनुमामा ने कहा, "तुम दोनों खाना शुरू करो। न न, मेरे लिए रखनेकी ज़रूरत नहीं, मैं यह सब नही खाता हूँ।" मैंने गुझियामें दाँत गड़ाते ही कहा, "अब बताइए मामाजी!"

धनुमामा बोले, "हाँ सुन, मै जो बताऊँगा वह कोई तत्त्वकथा नही है। कोई और होता तो ऐसा भेद न खोलता, पर मैं किसीकी परवाह नहीं करता। उम्र भी बहुत हो आयी, डाक्टर कहता था कि रक्त-चाप दो सौ चालीससे अचानक एक सौ चालीसपर उतर आया है। लक्षण अच्छे नही, खूब समझ रहा हूँ कि किसी भी दिन मुँहके बल गिरकर मरूँगा। फ़ादर कॅनफ़ेसर किसे कहते है, जानता है? जिस पादरीके आगे ईसाई लोग बीच-बीचमें जाकर अपने पाप-कर्म स्वीकार करते है और जी हलका किया करते है—उसे।"

भोला बोल उठा, "जी-जी, मैंने कहानी सुनी है। जैसे देहाती लोग गङ्गास्नान करने आते हैं और पुरोहित उन्हें मन्त्र पढ़ाता है—आम्र-चोरी, जाम्र-चोरी, भाद्रमासे धान्य-चोरी, कुस्थाने रात्रियापन, मद्यपान और मुर्ग़ी भक्षण : सर्व पाप विमोचन, गङ्गा गङ्गा !—ऐसा ही न ?"

"हाँ। आज तुम दोनों मेरे फ़ादर कॅनफ़ेसर हो। सुनो, अपना इतिहास सुनाता हूँ—

"बरसों पहलेकी बात है। अठारह-उन्नीसके लगभग मेरी उम्र थी और हाबुलचन्द्र मेरा नाम। पढ़ा-लिखा कहने-भरको था, घरकी हालत अच्छी न थी—माँके सिवा घरमें कोई था भी नहीं। मरनेसे एक दिन पहले माँने कहा, 'बेटा हाबुल, यहाँ देहातमे बेकार मत बैठे रहना, दहरमगंज अपने चाचाके पास चले जाना, वह कुछ-न-कुछ ठिकाना लगा ही देंगे।'

"मैं माँके मरते ही दहरमगंज पहुँच गया। काफ़ी बड़ी जगह थी। चाचा वहाँकी एक बहुत बड़ी फ़र्म, गयाप्रसाद प्रयागदासमे, चालान लिखने के कामपर थे। गयाप्रसादने ही कभी इस फ़र्मको शुरू किया था, अब उनके मरनेके बाद उनका लड़का प्रयागदास मालिक था। मै जब वहाँ पहुँचा तब प्रयागदासकी उम्र पचासके लगभग थी। कई छोटे-छोटे उसके बच्चे थे और घरमें अब दूसरी पत्नी। प्रयागदास स्वयं वातरोगसे पंगु बने हुए बिस्तरपर पड़े रहते थे, इसलिए कारोबार चलानेकी पूरी ज़िम्मेदारी उन्होंने अपने चचेरे भाई वृद्धिचन्दको मैनेजर बनाकर सौंप रखी थी। वृद्धिचन्दकी उम्र तीसके लगभग थी, कोई बाल-बच्चा न था, पहली पत्नीके मरनेके बाद उन्होंने दूसरी शादी नहीं की थी।

"उस समय मेरी यह शक्ल ऐसी बन्दरों-जैसी न थी। मैं खासा गोल-मटोल नाटे क़दका था, भरे हुए गाल और देखनेमें मोधू-सा। चौदह-पन्द्रह से अधिकका मुझे कोई नहीं कह सकता था। लोग मुझे पुकारते ही थे हाबुल मोधू-बुद्धू! मैं मन-ही-मन हँसता और जान-बूझकर भरसक बुद्धू

बना रहता। इससे मेरा फ़ायदा होता : लोग मुझपर विश्वास करते और अपनी कच्ची-पक्की सभी तरहकी बातें मेरे सामने करते रहते। चाचा एक दिन मुझे वृद्धिचन्दके पास ले जाकर हाथ जोड़ते हुए बोले, 'मालिक आप लोगोंके आश्रयमें रहते अब बूढ़ा हुआ। यह मेरा भतीजा है, हाबुल : इसे भी किसी कामसे लगा देते तो बड़ी कृपा होती !'

"वृद्धिचन्द मेरे चेहरेकी तरफ़ देखकर ज़रा हँसे, फिर मेरी पीठपर एक घूँसा जमाकर बोले, 'क्यों रे हब्बू, तू निरा गावदी—क्या काम करेगा ! अच्छी बात, अभी पाँच रुपया महीना दूँगा, मेरा अर्दली बनकर इधर-उधर चिट्ठी पहुँचाना। कर सकेगा यह काम ठीकसे ?' मैंने खूब गरदन हिलाकर हामी भरी, जी सरकार, ज़रूर कर सकूँगा।

"उसी दिनसे मैं वहाँ अर्दलीके कामपर लग गया। वृद्धिचन्द शौक़ीन आदमी थे। गद्दी-मसनद लगाकर कभी नहीं बैठते थे। उनका कमरा मेज़-कुरसी और अलमारीसे आरास्ता था, और मुझे घण्टी बजाकर बुलाते थे। मेरा काम बहुत हलका था। वृद्धिचन्दके खास कमरेके दरवाज़ेपर स्टूल लगाये बैठा रहता था, कोई छोटा-मोटा हुक्म होता तो बजा लाता या फिर बीच-बीचमें उनकी निजी चिट्ठी पहुँचा आता। चिट्ठी ले जानेके लिए मुझे एक कैन्वसका बैग दिया गया था।

"मोधू समझकर वहाँ सभी मेरी हँसी उड़ाते थे, मैं आँखें बड़ी-बड़ी किये चुप उनकी ओर देखता और बेवकूफ़-सा हँस देता था। लेकिन अपने कान मैं हमेशा खड़े किये रहता, आँखें बचाकर या मुँह छिपाकर कब कौन क्या कहता है यह मैं ध्यान लगाकर सुना करता। धीरे-धीरे मेरी जानकारी से छिपा न रहा कि वृद्धिचन्द बड़े चौकस आदमी हैं; बर्तावके अच्छे हैं लेकिन कुछ खर्चीले है, फ़र्मका रुपया इधर-उधर कर लेते हैं, जुआ खेलते हैं, नशा करते हैं और साथके दूसरे ऐब भी उनमें है।

"रामनवमीके दिन उनकी सब बहियाँ बदली जाती थीं। उससे पहले दिन फ़र्मके बड़े-बड़े गाहक सब अपना देना चुका देते थे। मेरे कामपर

लगनेके पाँच या छह महीने बाद हो ऐसा मौक़ा आया। इसे वह साल-तमामी कहते थे। काम रातको कुछ देर तक चलेगा इसलिए हम लोगोंके नाश्तेके लिए लड्डू-कचौरी मँगाये गये। बहुत देर गये तक रुपया आता रहा, वृद्धिचन्द अपने कमरेमें बैठे हुए खुद ही नोट और रुपये गिनते रहे और मैं नोटोंकी गड्डियाँ बाँधता रहा। चेक बहुत कम थे और खुदरा रुपया भी कम था : ज़्यादातर पाँच सौ, एक सौ और दस रुपयेके नोट ही थे।

रातको ग्यारह बजे काम ख़त्म हुआ; कर्मचारी लोग छुट्टी पाकर चले गये। वृद्धिचन्दने मुझसे कहा, "हब्बू, हिसाब मिलानेमें मुझे जरा देर लगेगी, तू दरवाज़ेपर बैठा रह, किसीको मेरे कमरेमें घुसने मत देना। और सुन—यह पैकेट अपने पास रख ले, कल मथुरानाथ मिसिरकी किताबों-वाली दूकानपर लौटाकर कहना कि यह सब जासूसी कहानियाँ वृद्धिचन्द जी नहीं पढ़ना चाहते, अगर भक्तमाल ग्रन्थ हो तो भेज दें।"

"किताबोंवाला पैकेट अपने चिट्ठी बाँटनेवाले बैगमें भरकर मैं कमरेके बाहर पहरेपर जा बैठा, वृद्धिचन्द दरवाज़ा बन्द करके हिसाब मिलाने लगे। दरवाज़ेमें चौखटकी तरफ़ ज़रा-सी दरार थी, उसीसे झाँककर मैं देखने लगा। कमरेमें मिट्टीके तेलका एक बड़ा-सा लैम्प लटक रहा था, वृद्धिचन्द मेज़पर नोटोंकी गड्डियाँ उलट-पुलट रहे थे और बीच-बीचमें बोतलसे उँडेलकर शराब पी रहे थे। उनके होंठोंपर एक मुसकान थिरकी और थोड़ी देर बाद ही अचानक खैंक्-खैंक्का ऐसा शब्द होने लगा मानो खेकसियारी बोल रही हो। उन्होंने चैक और खुदरा रुपये लोहेकी अल-मारीमें बन्द कर दिये, और नोटोंकी गड्डियाँ सब अखबारके काग़ज़में लपेट-कर सुतलीसे बाँध लीं। उसके बाद बग़लके कमरेसे एक छोटा-सा स्टील ट्रंक लाये और उसे फ़र्शपर खोलकर बैठ गये। उस ट्रंकमें उनके कपड़े थे।

"ठीक तभी दफ़्तरके कमरेके सामने दरवाज़ेपर एक बग्गी आकर रुकी। कोचवानने पुकारकर मुझसे कहा, 'ऐ हब्बू, माईजी आयी हैं, दौड़कर

वृद्धिचन्दजीको जल्दी आनेको कह !'

"माईजी हुई कारोबारके मालिक प्रयागदासको दूसरी पत्नी, जिन्हे वृद्धिचन्द भाबीजी कहकर पुकारते ! मैंने दरवाजा ज़रा खोलकर कहा, 'सरकार, माईजी आयी है, आपको बुला रही है ।' वृद्धिचन्द झुँझलाते हुए बड़बड़ाने लगे, 'ओह आनेका कोई दूसरा वक़्त न मिला, इतनी रात गये रुपया माँगने आयी है ! कामके वक़्त ही तमाम बखेड़े ! मुझे अभी जाना है, ट्रेनका टाइम हो आया । हब्बू, तू दरवाज़ा बन्द करके यहाँ कमरे के अन्दर बैठ, कोई घुसने न पावे। मै भाबीजीको बिदा करके अभी आया।"

"वृद्धिचन्दने नोटोंका वह बण्डल अपने ट्रंकमे कपडोंके बीच खोंस दिया। ढकना बन्द नहीं कर सके, वह उठा ही रहा । फिर मुझसे कहा, 'हब्बू, तू इस बक्सेपर ही बैठा रह, मै तुरत आया ।'

"वृद्धिचन्दके पाँव बाहर धरते ही सिद्धिदाता गणेशने मुझे बुद्धि दी। झट बक्सेसे नोटोंका बण्डल निकालकर अपने बैगमे डाल लिया और बैगमे जो किताबोंका पैकेट था उसे बक्सेमे उसी तरह खोंस दिया। नोटोका बण्डल और किताबोंका पैकेट एक ही आकारके थे ।

"थोडी देर बाद ही वृद्धिचन्दजी लौट आये । उन्होंने देखा, मै बक्सेपर उकड़ूँ बैठा हूँ और मेरे दबावसे ढकना ठीक-ठीक बैठ गया है । ढकना ज़रा उठाते हुए अन्दर हाथ डालकर उन्होने देखा कि बण्डल ठीक है या नही । उसके बाद ताला बन्द कर वृद्धिचन्दने व्यस्त होते मुझसे कहा, 'मै अभी बहरमपुर जा रहा हूँ, बैंकमे रुपया जमा करना है । तू यह बक्सा स्टेशन तक पहुँचा दे ।'

"वृद्धिचन्दने दफ़्तरके कमरेमे ताला लगाकर चाबी मुझे देते कहा, 'कल सवेरे बैजनाथ बाबूको दे आना—बैजनाथ बाबू फ़र्मके बड़े बाबू थे, दूरके रिश्तेसे मालिकके वह साले लगते थे ।

"अपना बैग कन्धेसे लटकाकर और वृद्धिचन्दका बक्सा सिरपर लादे मै आगे-आगे चला, वृद्धिचन्द मेरे पीछे-पीछे । स्टेशन नज़दीक ही था । वहाँ

पहुँचकर टिकिट खरीदते-खरीदते ट्रेन आ गयी। मेरे हाथसे बक्सा लेकर वृद्धिचन्द उसपर सवार हो गये, और एक दस रुपयेका नोट मुझे देते हुए बोले, 'तेरी बख्शीश।'

"स्टेशनसे मैं सीधा चाचाके यहाँ लौटा और नोटोंकी गड्डियोंवाला बैग सिरहाने रखकर लेट रहा। नींद बिलकुल न आयी। वृद्धिचन्दकी वह हँसी जैसे छुतही थी, सारी रात जागता हुआ खैंक्-खैंक् करके हँसता रहा। मेरे पास एक दबा-पिचका हुआ टीनका बक्स था, उसीमें मेरा सब-कुछ रहता था। सवेरा होते ही उसी बक्सेमें नोटोंका बण्डल रखकर बैजनाथ बाबूके घर गया और चाबी दी। वृद्धिचन्द बहरमपुर गये है यह सुनकर उनके मुँहसे निकला, 'बड़े ताज्जुबकी बात है!' फिर वे तत्काल उठकर प्रयागदासके पास गये।

"दिनके दस बजते तक चारों तरफ़ हो-हल्ला मच गया। सारे शहरमें खबर फैल गयी कि वृद्धिचन्द काफ़ी रुपया लेकर भागे है, फ़र्मका दफ़्तर पुलिसने घेर लिया है, और प्रयागदासके दो वकील भी वही गये है। मैंने चाचासे कहा, "चाचा, मेरा मालिक तो फ़रार हो गया, मैं यहाँ रहकर क्या करूँगा, कलकत्ते ही जाकर कुछ काम-काजकी कोशिश करूँ।" चाचाकी अक़्लके उस वक़्त तोते ही उड़े हुए थे। वह कुछ भी न बोले। मै चुपचाप अपना टीनका बक्सा लेकर कलकत्ता चला गया। बादमें सुना था कि दो दिन बाद पुलिसने मुझे गवाहीके लिए बुलाया था पर मै तो तब पहुँचके हो बाहर था।

"इसके बादकी बातें बहुत संक्षेपमें बता रहा हूँ। कलकत्ता पहुँचते ही नाम बदलकर धनञ्जय रखा। जिस होटलमे जाकर ठहरा था वहीपर दो दिन बाद बाज़ार-सरकारका काम मिल गया, हालाँकि उसके लिए पचास रुपया ज़मानत देनी पड़ी थी।"

भोला बोला, "धनुमामा, असली बात तो आपने बतायी ही नहीं।

रुपया कितना हाथ लगा था ?''

''रुपया ! अभी तक ठीक-ठीक गिन नही सका, खजाँचीका काम मुझे नही आता। एक बार गिना तो कोई डेढ लाख हुआ, दोबारा गिना तो चौदह हजार घट गये, फिर कोशिश की तो तीस हज़ार और बढ गया। सोचा, धत् तेरेकी, सही-सही जानकर होगा भी क्या ! रुपया बैंकमे तो जमा कर नही रहा हूँ, मेरे ही तो पास रहेगा ! उसके बाद कमानेमे लग गया—कारबारकी उन सारी बातोंमे तुझे दिलचस्पी न होगी। एक ब्याह भी किया था, पर वह बीवी टिक न सकी। यह चाँदी जड़ा हुक़्क़ा तभी दहेजमे मिला था। पचास बरस तरह-तरहके धन्धे किये, महाजनी तक न छोडी। कमाई भी कुछ बुरी नही की। मेरे अन्दर न बाबूगीरी थी न ऐयाशीकी लत, इसलिए पूँजीका धन घटा कभी नहीं बल्कि कुछ बढा ही। आखिरी उम्रमे रोज़गार करनेकी इच्छा न रही, ताक़त भी न रही; इसीलिए कलकत्ता छोड़कर यहाँ एकान्तमे रहने आया हूँ। अब एक बार समूची गीता पढ डालनी पडेगी।''

भोलाने पूछा, ''वृद्धिचन्दका क्या हुआ मामा ?''

''उसके नाम वारण्ट निकला था। सुना साधुके भेषमे हरद्वारमे छिपा था, पुलिसने वहीं पकड़ा। बहुत दिनों तक मुक़दमा चलता रहा, वृद्धिचन्दने अपने बयानमे कहा था, 'चोरी तो उस शैतानके बच्चे हब्बूने की, मैं सिर्फ़ बदनामीके डरसे भागा। किसीने उसकी बातोंपर विश्वास न किया। वृद्धिचन्दको ज़रूर जेल होती पर उन भाबीजीने बचा लिया। पत्नीके अनुरोधपर प्रयागदासने मुक़दमा ही उठा लिया। सुना है छूटनेके बाद वृद्धिचन्दने आसाम जाकर लकड़ीका कारबार जमाया।''

भोला बोला, ''क्यो धनुमामा, अब अपना सारा रुपया किसको दे जायेंगे ?''

''तेरी माँको बहुत-सा दे जाऊँगा, उसने मेरी खूब सेवा की है न ! बाक़ी सब मेरे साथ ही जायेगा।''

"वह कैसे ? मर जानेके बाद क्या अपने साथ कोई रुपया भी ले जा सकता है ?"

"मैं ले जाऊँगा, देख लेना।"

धनुमामाकी बातें खत्म हुईं। उनसे बिदा लेकर मैं घर चला आया।

सात दिन बाद अचानक एक आदमी स्कूलमें ख़बर देने आया कि धनुमामा मर गये है, भोलाको उसकी माँने अभी घर बुलाया है। छुट्टी लेकर मै भी भोलाके साथ-साथ गया।

धनुमामाको आँगनमे लिटा दिया गया था। उनका मुँह जरा यों खुला हुआ था जैसे वह हँसते-हँसते सहसा मर गये हों। मुहल्लेके कुछ लोग भोलाकी माँको समझाने-बुझानेमे लगे थे और वह हाथ-पैर पटक-पटककर चिल्ला रही थी, "पाजी निगोड़ा, नमक हराम कहींका ! इतने दिनोंसे सेवा-टहल कर रही हूँ और दे गया सिर्फ दो सौ रुपये ! सत्यानाशी, मनहूस, फ़रेबी, दग़ाबाज, खूसट ! मुझे धोखा दिया ! दान-ध्यानके लिए भी तो कुछ छोड जाता !"

भोलाने पता लगाकर मुझे जो बताया वह इस प्रकार है।—धनुमामा के सन्दूक़से दो बण्डल और एक कागजका पुरजा निकला। छोटे बण्डलपर लिखा था : भोलाकी जननी सौभाग्यवती श्रीमती नन्दरानीको अपनी कमाई के दो सौ रुपये नक़द प्रदान किये; इतना काफ़ी है, औरतोंके लिए बहुत लालच अच्छी बात नही। बडे बण्डलपर लिखा था : खोलो मत, यह मेरा दैवलब्ध निजका धन है, जैसा है वैसा ही चितापर चढ़ा दिया जाये। काग़जपर लिखा था: मेरा जो चाँदी-मढा ढाकावाला हुक़्क़ा है वह आयुष्मान् भोलानाथको मिले और मेरी उँगलीमे जो चाँदीकी गणेश-छाप अँगूठी है वह भोलानाथके मित्र आयुष्मान् रामेश्वरको मिले।

लेकिन भोलाकी माँने धनुमामाकी अन्तिम अभिलाषा पूर्ण न की,

बड़ा बण्डल खोलकर देखा। उसमें अनगिनत नोट बेशक थे लेकिन उनकी क़ीमत एक पैसा भी न थी, कैंचीसे सबको महीन-महीन काट दिया गया था। उनके दैवलब्ध धनका दुरुपयोग न हो इसकी पक्की व्यवस्था धनुमामा कर गये थे। भोलाकी माँने नोटोंके उन पुरज़ोंको झाड़ूसे बुहारकर फेंका। हुक्का भोलाके इस्तेमालमें न आ सका, उसकी माँने उसे पटककर तोड़ डाला और चाँदीका पर्त निकाल लिया। पर मुझे उन्होंने वंचित न किया, गणेश-छाप चाँदीकी अँगूठी मुझे उन्होंने दे दी। धनुमामाकी वह याद मैंने बड़े जतनसे रख छोड़ी है।

# शिवामुख चिमटा

झिण्टूके मुँहसे थर्मोमीटर निकालते हुए उसकी माँने कहा, "निन्यानबे पॉएण्ट चार। आज रात सिर्फ दूध और बार्ली, घूमो-फिरोगे नही, यही कमरेमे रहना। हम लोगोके लौटनेमे कोई बहुत देर न होगी : यही बारह तक लौट आयेंगे।"

होठ फुलाकर झिण्टू बोला, "वाह जी, तुम लोग मजेसे मद्रासी भोज उड़ाओगे और मैं घर अकेला पड़ा सड़ूँगा, अँऽ हूँऽ—"

"छी, उसे क्या भोज कहा जायेगा : न मछली न मास, सिर्फ इमली का पुलाव, मिर्चका झोल और खट्टा दही ! यज्ञस्वामी अय्यर उनके दफ़्तरके बडे साहब ठहरे, उनकी लड़कीकी शादी है; मिसेज अय्यरने भी कई बार कहा, इसीसे जा रही हूँ। तेरे लिए यह मेकानो रहा, तू हबडा ब्रिज बनाना। सुकुमार रॉयकी इन तीनो किताबोकी तसवीरें देखना। लेकिन बहुत पढना मत, सिरमे दर्द होगा। तेरी बुआको बताये जा रही हूँ, वह साढे आठके लगभग दूध-बार्ली दे देगी। पीकर सो जाना। बुआ तेरे पास लेटेगी।"

"नही, बुआको मेरे पास लेटनेको मत कहना। उनकी नाक बहुत बोलती है, मुझे नींद नही आयेगी। मैं अकेला ही सोऊँगा।"

"अच्छी बात, बुआसे नही कहूँगी।"

झिण्टू लगभग दसका है—पढ़ने-लिखनेमें बुरा नही, पर बहुत चंचल और नटखट है। माँ-पिता और छोटी बहन भोजमे गये और उसे अकेले घर पड़े रहना पडा, यह इसके लिए असह्य था। जरा बुखार था तो क्या हुआ ? वह अभी दो मील दौड़ सकता है, बैडमिण्टन खेल सकता है, ज़ीनेसे उछलता हुआ तिमंज़िलेकी छतपर चढ़ सकता है। घर तो अब गपशप

लड़ानेके लिए भी कोई नहीं। बुआ तो क्या हो खूब है : दोपहरको दफ्तर जातीं और सुबह, शाम, रात हर वक्त बस उपन्यास पढा करती है। एक वह झिण्टूके क्लास-फ्रेण्ड जितूकी बुआ है : कैसी मनभावन बुढिया है और कितनी तरहके किस्से सुना सकती है! तभी तो जितू पूछता है, "क्यो रे झिण्टू,तेरी सरसी बुआ सज-धजकर दफ्तर क्यों जाती है? माला जपे, बडियाँ तोड़े, और गरीके लड्डू, अमरस, बेरका अचार बनाये—तभी तो बुआ कहलानेकी हक़दार हो सकती है!"

मेकानो जोड़-जोडकर झिण्टूने कई तरहके ब्रिज बनाये, फिर सबको खोल डाला। साढे आठ बजे सरसी बुआने उसे दूध-बार्ली पिलाया और कहा, "अब तुम सो जाओ झिण्टू।"

सरसी बुआके जानेके बाद झिण्टू लेट तो गया पर किसी तरहसे भी नीद उसे न आयी। घण्टा-भर बिस्तरपर करवटें बदलनेके बाद वह उठ खडा हुआ। उसके दिमागमे एक लहर दौड़ गयी थी कि कोई ऐडवेञ्चर करना है। डिटेक्टिव, डाकू, जलदस्यु और गुप्त खज़ानोकी कहानियाँ उसने बहुत-सी पढ रखी थी। आज रातको अगर वह भी कोई गुप्त खजाना खोज निकाले तो कितना मजा आये! उसने अपनी माँसे सुना था कि उसके प्रपितामहके ताऊ पिशाचसिद्ध तान्त्रिक थे। बहुत दिन हुए वह मर गये, पर उनकी एक पेटी-सी तिमंजिलेकी कोठरीमे अब भी रखी है। उसे खोलकर देखा जाये तो कैसा?

झिण्टूके पास एक चोरबत्ती है और डेढ़ रुपयेवाला एक पिस्तौल भी। पिस्तौल कमरसे लटकाकर और चोरबत्ती लेकर वह तिमंज़िलेपर चढ़ा। वहाँ ज़ीनेकी बग़लमे सिर्फ़ एक कोठरी है जिसमे ग़ैरजरूरी और बेकार-बेकार चीजें पड़ी रहती है। उसी कोठरीमे घुसकर झिण्टूने चोरबत्तीका स्विच दबाकर रोशनी की। उसके वृद्ध प्रपितामहके ताऊकी वह पेटी एक कोनेमे पड़ी थी। बेतकी बनी हुई, ऊपरसे भैंसके चमड़ेका ढक्कन, अजीब-

सी बनावट—मानो एक बहुत बडा कछुआ पडा हो। उसका ताला भी अजीब-सा था। सामनेकी दीवारपर पुरानी चाबियोंका गुच्छा लटक रहा था। झिण्टूने एक-एक चाबीसे खोलनेकी कोशिश की पर सफल न हो सका। निराश होकर लौटने ही लगा था कि उसने देखा कि पेटीके पीछेवाले दोनों कब्जे जंग लगकर कमजोर हो गये है। जरा खीचा-तानी करते ही वे टूट गये। झिण्टूने पेटीका ढकना पीछेसे उलटकर खोल डाला।

अजीब फफूँदी-जैसी गन्ध थी! ऊपर मैले गेरुए रंगके कई कपड़े थे, उनके नीचे एक ज्ञात-भर ताड़की पत्तियोपर लिखी पोथियाँ और तीन मोटी-मोटी रुद्राक्षकी मालाएँ। फिर कपड़ा, ताँबेका छोटा-सा लोटा, सफ़ेद रंगका एक कटोरे-सा पात्र, एक जंग लगी छोटी-सी छुरी, एक लम्बी नलीकी छोटी-सी चिलम, एक बहुत मैला लत्तेका टुकड़ा, और एक चिमटा। झिण्टू अगर चौकस व्यक्ति होता तो फ़ौरन समझ जाता कि सफ़ेद कटोरा जैसा है खप्पर यानी मुरदेकी खोपड़ी और छुरी-चिलम लत्ता-चिमटा है गाँजा पीने का सरंजाम।

ऊबकर झिण्टू बोल पड़ा, "धत्तेरेकी, रुपये-पैसे, हीरा-मोती, अजूबा कुछ भी नही! पर यह चिमटा कुछ बुरा नही—लगभग एक फ़ुट लम्बा, सिरकी तरफ़ एक कड़ा जिससे लटकता तीन छल्लोंका गुच्छा। चिमटेकी बनावट बड़ी मजेदार है, दबानेपर मुँह सियारका-सा लगता। दोनों ओर दो आँखें और दो कान भी है। बरसों पुरानी चीज होनेपर भी कहीं मोरचा नहीं लगा था, काफी चमचमा रहा था। पेटी बन्द करके और चिमटा लेकर झिण्टू अपने कमरेमे लौट आया।

बत्ती जलाकर बिस्तरपर बैठे हुए कुछ देर झिण्टू सुकुमार रॉयकी किताबें उलटता-पुलटता रहा। बग़लके कमरेकी घड़ीमे टन-टन दस बजे। अब नीद-सी आ रही थी, लेटनेसे पहले उसने फिर एक बार चिमटेको अच्छी तरहसे देखा। हिलनेसे सिरपर-के छल्ले झनझनाकर बज उठे। उसके बाद

ही एक अजीब घटना हुई। दरवाजा धकेलकर एक अजीब मूर्ति अन्दर आयी। नाटा डील-डौल, हलकी ब्लू-ब्लैक स्याही-जैसा बदनका रंग, सिरके बाल झोंटेके रूपमें बँधे हुए, मुँह बन्दरका-सा—नन्दलालके बनाये नन्दीके चित्रके साथ कुछ-कुछ मेल खाता हुआ! गेरुए रंगका लंगोट, पैरोमें खड़ाऊँ। आते ही मूर्ति बोली, "क्या चाहते हो मुन्ना?"

पहले तो डरके मारे झिण्टूकी सिट्टीपिट्टी ही गुम हो गयी। लेकिन वह था दिलेर लड़का, ऐडवेञ्चर उसके रूबरू खड़ा था—अब डरनेसे क्या होगा? झिण्टूने सवाल किया, "तुम कौन हो जी?"

"हुण्ढदास चण्ड। तुम्हारे एक पुरखा पिशाचसिद्ध हुए थे सुना होगा? मैं ही वह पिशाच हूँ।"

"तुम्हींको उन्होंने सिद्धै[1] किया था क्या?"

"धत् बुद्धू, मुझे सिद्ध करना किसके बूतेका है। तुम्हारे पुरखा साधना करके खुद सिद्ध बन गये थे, मुझे उन्होंने वशमें कर लिया था। यह शिवामुखी चिमटा मैंने ही उन्हें दिया था। हम लोगोंमें यह तय पाया था कि चिमटा बजाते ही मैं हाजिर हो जाऊँगा और मुझसे जो करनेको कहा जायेगा वही करूँगा। लेकिन कराली मुखर्जी लोभशून्य साधु पुरुष थे, उन्होंने मुझसे कभी धन-दौलतके लिए फरमाइश ही नहीं की। हुक्म देते भी तो ऐसा ही कि ले आओ तम्बाकू, ले आओ गाँजा, ले आओ उम्दा कारणवारि विलायती शराब, ले आओ अच्छी-सी भैरवी! उनके मर जानेके बाद मैं बेकार बना बैठा हूँ। सुनो मुन्ना, आज है बैसाखी अमावस। सौ बरस पहले इसी अमावसकी आधीरातको तुम्हारे प्रपितामहके ताऊ कराली चरण मुखर्जीने सिद्धिलाभ किया था। शर्तके मुताबिक आज ठीक उसी घड़ीपर मैं किंकरत्वसे मुक्ति पाऊँगा, उसके बाद कितना ही चिमटा बजाओ मैं आहट न दूँगा। अभी दो घण्टे समय है। तुम्हारी पुकारपर आया हूँ – बोलो

---

१. बंगला भाषामें 'उबालने'को 'सिद्ध' करना कहते हैं।

क्या चाहिए ?"

ज़रा सोचकर झिण्टूने कहा, "एक हंसाही ला दे सकते हो ?"

"वह क्या चीज है ?"

झिण्टूने झट किताब खोलकर चित्र दिखाया, "ऐसा जानवर—हंस और साहीका मिला-जुला रूप।"

"समझ गया। लेकिन ऐसा जानवर रेडीमेड तो मिलता नहीं, बनानेमे कुछ वक्त लग जायेगा। एक घण्टे बाद एक हंसाही भेज दूंगा।"

झिण्टू बोला, "घण्टा-भर लगेगा तो ठीक, मै तबतक ज़रा सो लूँगा। लेकिन ज्यादा देर मत करना, माँ और बाबा आ जायेंगे।"

पिशाच हवामे विलीन हो गया।

झिण्टू सो रहा था। अचानक खुटखुट शब्दसे उसकी नीद टूटी। बत्ती जल ही रही थी, झिण्टूने देखा कि एक अजीबो-ग़रीब शक्ल-सूरतका जानवर सारे कमरेमे भगदड़ मचाये हुए है। उसका सिर और गला हसकी तरह है और धड़ साहीकी तरह। बदन-भरमे काँटे खड़े है, चारों पैरोसे दौड़ता फिर रहा है और पैंक्-पैंक् शब्द कर रहा है। झिण्टू उठकर बैठा और पुचकारता हुआ बोला, 'आ-आ, चु च्यु चू !' हसाही पालतू कुत्तेकी तरह कूदता हुआ दोनो पंजे उठाकर गोदमे बैठनेको हुआ। झिण्टूके घुटनेमे एक काँटा चुभ गया। वह झुँझलाकर बोला, "जा दूर हो, ज़रा बदनपर ही हाथ फेरूँ इसका भी उपाय नही !"

इस कमरेके ठीक नीचेका कमरा सरसी बुआका था। खाना खानेके बाद एक समूचा उपन्यास खत्म करके वह सो गयी थी। सिरपर धप्-धप् आवाज़ सुनकर उसकी नीद टूटी, खीजती हुई बोली, "ओह यह पाजी लडका अभी तक सोया नही, शैतानी ही किये जा रहा है !" उठकर ऊपर गयी तो झिण्टूके कमरेमे घुसते ही सरसी चौक पड़ी, "ओ माँ, यह कौन कहाँसे आ गया !"

झिण्टू बोला, "मैंने पाला है, कोई डर नहीं, कुछ कहेगा नहीं। कल ही नाईको बुलाकर बदनके तमाम काँटे साफ़ करवा दूँगा, तब हाथमें गड़ेगा नहीं। थोड़ा दूध और बिस्कुट ला दो न बुआ, बेचारेको भूख लगी है! आत्मरक्षाके लिए सरसी झिण्टूकी खाटपर चढ़ती हुई बोली, "इसे तू पा कहाँ गया रे?"

हाथ हिलाते और मुँह बनाते हुए झिण्टू बोला, "क्यों बताऊँ?"

"राजा बेटा बता न, कहाँसे आया!"

"पहले क़सम खाओ कि किसीसे कहोगी नहीं।"

"कालीघाटकी कालीमाईकी क़सम, किसीसे नहीं बताऊँगी।"

झिण्टूने तब सारा मामला खोलकर बता दिया। सरसीको विश्वास न आया, बोली, "झूठा कहींका! कराली ताऊ पिशाच-सिद्ध थे ऐसा ज़रूर सुना है पर वह तो सब मनगढ़न्त क़िस्सा है।"

"मनगढन्त? तो लो देख ही जो लो—"

झिण्टूने चिमटा हिलाकर झन-झन आवाज़ की ही थी कि दुण्ढदास चण्डका आविर्भाव हुआ। सरसीको काठ मार गया। डरके मारे आँखें कपालपर टाँगे वह देखती रही। पिशाच बोला, "क्या चाहिए मुन्ना?"

झिण्टूने हुक्म दिया, "गरम चटपटा मटर, बड़े-बड़े दानोंवाला। काफी-सा लाना, बुआ भी खायेंगी।"

पिशाच ग़ायब हो गया। थोड़ी देर बाद ही काग़ज़का एक ठोंगा हवा में-से कमरेके फ़र्शपर आ गिरा। गरमा-गरम भुना हुआ बड़े-बड़े दानोंवाला मटर! मुट्ठी-भर लेकर झिण्टू बोला, "बुआ, तुम भी थोड़ा-सा खाकर देखो न?"

सरसीने गालोंपर हाथ रखकर कहा, "वाह रे अजूबा, ज़िन्दगीमें ऐसा न देखा न सुना! लेकिन तू भी कैसा बुद्धू है—माँगना था तो दो-चार लाख रुपये, एक बड़ी-सी कोठी और मोटर-गाड़ी माँगना था, सो तो नहीं, यह काँटोंदार हंसाही और भुना मटर माँगा! छी छी छी! अच्छा, अपना

वह चिमटा मुझे तो दे एक बार।"

बुआसे झिण्टूको कोई खास हमदर्दी न थी। मुँह बनाकर बोला, "हाँ जरूर दूँगा! यह सियारमुँहा चिमटा मै किसीको न दूँगा। तुम्हे किस चीज़ की जरूरत है, बताओ न, मैं मँगाये देता हूँ।"

"तू बच्चा है, ठीकसे कह भी न पायेगा।"

"अच्छा मै ढुण्ढदासको बुलाये देता हूँ। तुम जो चाहती हो मुझे बताती जाना मैं उससे कहता जाऊँगा।"

सरसी तैयार हो गयी। झिण्टूके चिमटा बजाते ही पिशाच आकर बोला, "अब क्या चाहिए बच्चा?"

झिण्टू बोला, "लो बुआ झटपट कह डालो, फिर कही माँ और बाबा न आ जायें।"

झिण्टूके द्वारा सरसीने जो माँगा उसका तात्पर्य यह है : पहले उस जानवरको भगाओ, उसके बाद दुर्लभ तालुकदार नामके सज्जनको पकड़कर लाओ—वे कानपुर वुलेन मिल्समे नौकरी करते है, घरका पता मालूम नहीं।

हंसाही और पिशाच ग़ायब हो गये।

झिण्टू बोला, "कानपुरके उस सज्जनको बुलाकर क्या होगा बुआ?"

"मै उससे ब्याह करूँगी।"

"ब्याह करोगी? तुम तो बूढ़ी होने आयी।"

"कौन कहता है मै बूढ़ी होने आयी। मेरी उम्र तो पच्चीसके ऊपर नही।"

"माँ तो कहती है तुम्हारी उम्र चौंतीस-पैंतीसके लगभग है?"

"झूठ सब। तेरी माँ मुझसे डाह करती है, इसीलिए ऐसा कहती है। और मैं तो अनब्याही कन्या हूँ : उम्र कुछ भी हो शादी क्यो न करूँ?"

पिशाचके लौट आनेसे पहले ही कुछ पुरानी बातें बता देना जरूरी है। बारह-तेरह बरस पहले सरसी जब कॉलेजमे पढ़ती थी तब दुर्लभ तालुकदारके साथ उसका प्रेम हो गया था। दुर्लभने कहा था, "मुझे एक अच्छी-

सी नौकरी मिलनेवाली है, मिलते ही तुमसे ब्याह करूँगा।" कुछ दिनों बाद नौकरी पाकर दुर्लभ कानपुर चला गया। वहाँसे बीच-बीचमें चिट्ठी लिखता : 'बडी महँगी जगह है, तुम्हारे लायक़ मकान भी नहीं मिल रहा, तनख़्वाह सिर्फ दो-सौ है, इसमें दोनोंका चलेगा कैसे ? उम्मीद है जल्दी ही साढे-तीन-सौके ग्रेडमें आ जाऊँगा, अच्छा-सा क्वार्टर भी मिलेगा। मेरी अच्छी सरसी, तबतक जरा धीरज रखो !' पर इसके बाद तो धीरे-धीरे चिट्ठियोंका आना ही कम हो चला और अन्तमें बन्द भी हो गया। सरसी समझ गयी कि दुर्लभ झूठा है; फिर भी उसे वह भूल न सकी।

पिशाचने एक मोटे-से आदमीको लाकर वहाँ फर्शपर रख दिया और कहा, "यह लो बच्चा, तुम्हारी बुआका दूल्हा। अभी होशमें नहीं है, थोडी देर बाद ठीक हो जायेगा।"

दुर्लभके मुँहके पास मुँह ले जाकर झिण्टू बोला, "ओफ़, मामाके क्लब से लौटनेपर जैसी बू आती है वैसी ही आ रही है ! ओ ढुण्ढजी, इसे जगा दो न ?"

पिशाच बोला, "नशेमें धत्त है। कानपुरकी एक बस्तीमें यार-दोस्तोंके साथ अड्डा जमाये हुए था, वहींसे मैं उठा लाया हूँ। ए, झटसे उठकर खडे तो हो !"

एक धक्का खाकर दुर्लभका होश ठिकाने लौटा। आँखें खोलकर बोला, "अरे तुम लोग कौन ?"

झिण्टू बोला, "बुआ, अब जो कहना हो सो तुम्हीं कहो न !"

"मुझसे न बनेगा, तू ही कह दे मुन्ना।"

"ओ जनाब, सुनते हैं ? यह रही मेरी सरसी बुआ — अनब्याही लड़की। आप इससे शादी कीजिए।"

दुर्लभ बोला, "अहा, क्या बात कही तुमने ! जैसे तुम्हारे कहनेसे ही मैं ब्याह कर लूँगा ?"

पिशाच गरम पड़ा, "करेगा कैसे नहीं ? तेरा बाप करेगा।"

एक पैशाचिक झाँपड खाते ही दुर्लभ हाथ जोडने लगा, 'मारो मत बाबा, गलती हो गयी। अभी ब्याह करता हूँ, पुरोहित बुलाओ। लेकिन बताये देता हूँ मेरे पास ऑलरेडी एक बंगाली पत्नी और एक पछाँही जोरू है। सरसी अगर बीबी नम्बर तीन बननेको राजी हो तो मुझे एतराज नही। सभीको एक साथ एक बिस्तरपर लेटना पडेगा, हाँ !"

सरसी बोली, "इस शराबी निगोड़ेको दूर करो।"

झिण्टूके हुक्मसे पिशाच दुर्लभको उठाकर ले गया। झिण्टू बोला, "क्यों बुआ, तुम्हारे दफ़्तरमे भी तो अच्छे-अच्छे बाबू होगे, उनमे-से किसीको बुलवा लो न।"

जरा सोचकर सरसी बोली, "हमारे हेड ऐसिस्टेण्ट योगीन बैनर्जीकी बीबी दो बरस हुए मर गयी। योगीन बाबू आदमी भले है, लेकिन कल्चर्ड नही और उम्र भी ज़रा ज्यादा है। तमाखू बहुत पीते है, बात करनेपर मुँहसे तमाखूकी गन्ध आती है। लेकिन किया भी क्या जा सकता है, इतने-इतने बारीक नुक्स पकड़नेसे काम नही चलेगा। मर्द तो कमो-बेश सभी गन्दे होते है। पर योगीन बाबू राजी भी होंगे? शायद भारी दहेज़ मिले तो—"

झिण्टू बोल उठा, "दहेज क्या ? और गहने और रुपये ?—उसकी फ़िक्र मत करो बुआ, मैं सब ठीक किये देता हूँ।"

चिमटा बजाकर पिशाचको बुला झिण्टूने कहा, "बुआके दफ़्तरमे जो योगीन बैनर्जी काम करता है—उसका पता क्या है बुआ ? तीन नम्बर बेचू मिस्त्री लेन !—वहीसे उसे पकड़कर लाओ। और सुनो, बुआको ढेर-सा गहना और रुपया भी लाकर दो।"

सरसीका अंग-अंग सोनेके गहनोसे ढक गया और पाँच थैलियाँ भी झन्नसे उसके पैरोंके पास आ गिरी। पिशाच चला गया।

एक थैली उठाती हुई सरसी बोली, "कोई पाँच-छह सेरकी होगी !"

झिण्टू बोला, "पाँच-सौ रुपयेमे सवा छह सेर, हज़ार रुपयेमे साढ़े बारह सेर लाखमें इकतीस मन दस सेर—'ज्ञानकी तिजोरी' पुस्तकमे सब

दिया है।"

पिशाच योगीन बैनर्जीको गोदमे भरे हुए लाया और उन्हे फर्शपर रख दिया।

झिण्टूने पूछा, "यह भी नशेमे है क्या ?"

पिशाच बोला, "नहीं, नशेमे नही है, बेहोश करके लाया हूँ। जरा हिलाने-डुलानेसे ही होशमे आ जायेगा। रुको, पहले मै खिसक जाऊँ, नही तो मुझे देखकर फिर बेहोश हो जायेगा।"

थोड़ा ही इधर-उधर किये जानेपर योगीन बाबू उठ बैठे। जम्हाई ले चुटकी बजाते हुए बोले, "दुर्गा दुर्गा ! अरे मै कहाँपर हूँ ? यह क्या, मिस सरमी मुखर्जी यहाँ ? ओह कितने गहने पहन रखे है आपने ? मैं क्या आपके विवाह-भोजमे आया हूँ ?"

सरसी सिर झुकाकर बोली, "मुन्ना, तू ही बता।"

झिण्टू बोला, "सर, आप मेरी इस सरसी बुआसे शादी कर लीजिए, अनब्याही कन्या है, उम्र पचीसके लगभग है। देख ही रहे है कितने गहने पहने है, साथमे ये पाँच थैली रुपये भी है : एक-एक थैली पाँच-छह सेर-की है।"

योगीन बाबू बोले, "वाह मुन्ना, तुम ही अपनी सालंकारा बुआका सम्प्रदान कर रहे हो क्या ? मुझे कोई आपत्ति नहीं। मिस मुखर्जीकी ओर मेरा कुछ खिचाव भी था, लेकिन आप मॉडर्न महिला है इसीलिए आगे बढनेकी हिम्मत नही पड़ती थी। गहने बहुत पुराने ढंगके है, लेकिन काफ़ी वजनी लग रहे है—बेंचकर नये डिजाइनके बनवा लेनेसे ही चल जायेगा। लेकिन मामला कुछ समझमे नही आ रहा है, मैं यहाँ आ कैसे गया ?"

सरसी बोली, "वह सब आप बादमे सुन लीजिएगा। अभी तो घर जाइए, कल सवेरे ही आकर मेरे दादासे विवाहका प्रस्ताव कीजिएगा। यह अँगूठी पहन लीजिए, अब भूलिएगा नही।"

"भूल कैसे सकता हूँ। कल सवेरे ही तुम्हारे दादासे कहूँगा। अब

बजा क्या होगा ? क्या कहते हो, पौने बारह ? घर कैसे जा सकूँगा, ट्रैम-बस तो सब बन्द हो गयीं।"

झिण्टू बोला, "बिलकुल फ़िक्र मत कीजिए साहब, बस एक बार लेट-कर आँखें बन्द कर लीजिए।"

योगीन बैनर्जी बच्चेकी तरह आँखें मूँदकर लेट गये। उस शिवामुखी चिमटेकी आवाज सुनकर पिशाच फिर आया। झिण्टूने इशारेसे उसे आज्ञा दी : "इसे इसके घर पहुँचा आओ।"

बारह बजा। सरसी बोली, "भैया और भाभी अभी आ पहुँचेंगे। जाऊँ गहने उतारकर रख आऊँ और रुपये भी रख दूँ। तुझे अक़्ल बिलकुल नही है, रुपया न माँगकर नोट क्यों न माँगे तूने ? पर झिण्टू, मेरे राजा बेटे, किसीसे कुछ बताना मत।"

"नहीं बुआ, बताऊँगा क्यों भला। यह लो, दुण्ढदाससे एक नेवला माँगना था सो भूल ही गया। स्कूलके दरबान रामभजनके पास एक बढ़िया नेवला है, एकदम पालतू है, कन्धेपर बैठा रहता है।"

"तू सोच मत कर मुन्ना, अब जितने भी नेवले माँगेगा तेरे फूफा खरीद देंगे। तुझे बुखार है न, अब और मत जाग, सो जा।"

"बुखार कहाँ रहा, वह तो दुण्ढदासको देखकर ही भाग गया था !"

"क्यों रे मुन्ना, हम लोग कही सपना तो नही देख रहे ? सवेरे सोकर उठते ही अगर देखूँ कि गहने और रुपये सब उड़ गये ?"

"उड़ जाने दो। योगीन बाबू फिर बनवा देंगे, रुपया भी देंगे।"

"योगीन बाबू भी अगर उड़ जायें ?"

"जाने दो। तुम यह दालमोठ खाकर देखो न, कैसा करारा है। अच्छी तरहसे चबाकर लील जाओ, तब नहीं उड़ सकेगा।"

# जटाधर बक्शी

नयी दिल्लीमे गोल मार्केटके पीछे कूचा चमौकीराम नामकी एक गली है। इसी गलीके मोडपर काली बाबूकी मशहूर चायकी दुकान 'कैलकटा टी कैबिन' है। यहाँपर चाय, बिस्कुट, सस्ते केक, सिग्रेट, सिगार और बँगला पान मिलते है; तमाखूका इन्तज़ाम है और कुछ नारियल भी रखे है। मील दो मीलके दायरेमें जितने भी अल्पवित्त बंगाली रहते है उनमे-से बहुत-से काली बाबूकी दुकानमे चाय पीने आते है। शामको काफ़ी लोग-बाग जमा हो जाते हैं और यहाँ डटकर अड्डा लगता है।

पूसका महीना, शाम साढे छह बजेका समय, बाहर काफ़ी ठण्ड पर काली बाबूके टी कैबिनमे काफ़ी गरमी। कमरा छोटा-सा था जिसके एक ओर चायका चूल्हा जल रहा है, पन्द्रह-सोलह पीनेवाले सटकर बैठे हुए है। सिगरेट, सिगार और तमाखूके धुँएसे कमरेके अन्दर एक धुन्ध छा गया है।

रामतारण मुखर्जी बात कर रहे थे। इनकी उम्र क़रीब पैंसठके है। मिलिटरी ऐकाउण्ट्समे काम करते थे, दस बरस हुए नौकरीसे अवकाश ले चुके हैं। दोनों लड़कोंकी भी दिल्लीमे नौकरी लग गयी है सो रामतारण यहाँके स्थायी बाशिन्दोंमे हो गये है। आप एक बहुज्ञानी व्यक्ति है, बात करना शुरू कर दें तो रुकनेका नाम न लेते और न किसी दूसरेको कुछ कहनेका मौक़ा ही देते। चायकी बैठकके सभी लोगोंने उन्हें खिताब दिया है—'महान् मनहूस' यानी 'द ग्रेट बोर'।

रामतारण बाबू कह रहे थे, "अरे नहीं-नहीं, तुम लोगोंका ख़याल बिलकुल ग़लत है। भूत और प्रेत दो स्वतन्त्र जीव है, मैं समझा देता हूँ सुनो। मृत्युके बाद मनुष्य जितने दिन तक वायुभूत निरालम्ब निराश्रय बना रहता है, यानी जबतक वह दूसरा जन्म नहीं लेता, उतने दिनों तक वह

प्रेत है। लेकिन—"

स्कूल मास्टर कपिल गुप्तने कहा, "यानी परलोकके आवारा ही प्रेत है।"

बातके बीचमे टोके जानेसे रामतारण नाराज होते बोले, "मखौल रहने दो, जो बताता हूँ सुनते जाओ। मृत्युके बाद मनुष्य हमेशाके लिए प्रेत नही बना रहता, वह फिरसे जन्म लेता है। ध्रुवं जन्म मृतस्य च ! लेकिन जो लोग भूत है वे हमेशासे ही भूत है।"

कपिल गुप्त फिर बोले, "समझा। जैसे गाजनके संन्यासी[1] और लोटा-चिमटा-कम्बल-धारी बारहमासी संन्यासी।"

"उफ् चुप भी रहो ! मरे हुए मनुष्यकी आत्मा प्रेत है और विलायती घोस्ट भी प्रेत है। लेकिन पिशाच और 'पल्टारगाइस्ट'को भूत ही कहा जा सकता है। भूत है अपदेवता : वे नाकसे बोलते है, डराते है, गरदन मरोड़ देते है, और कई तरहके उपद्रव मचाते है। लेकिन प्रेत ऐसा नहीं होता : जीवित अवस्थामे उसका जैसा स्वभाव था, प्रेत हो जानेपर भी वैसा ही रहता है। लेकिन चालू भाषामे लोग प्रेतको भी भूत कहते है।"

तभी एक अजनबी कमरेमे दाखिल हुआ। उम्र लगभग पैंतालीस, छह फुट लम्बा, मजबूत डीलडौल, और ऐंठी हुई मोटी 'कैजरी' मूँछें। बदनपर काला खाकी फ़ौजी ओवरकोट, अन्दर निकर पहने है या धोती, यह समझ मे नहीं आता, सिरपर पगड़ीके ढंगपर बँधा हुआ कम्फ़र्टर। आगन्तुक कमरेमे आते ही दबंग आवाज़मे बोला, "नमस्कार सज्जनो, मै यहाँ आप लोगोंके साथ बैठकर चाय पी सकता हूँ ?"

"कई लोग एक साथ जवाब दे बैठे, "हाँ, ज़रूर-ज़रूर चाय पीजिए ! इसमे कौन बात ? यह तो चायकी दुकान ही है। काली बाबू, काली बाबू,

---

१. चैत्रके महीनेमें गाजन नामक शिव-आराधन उत्सवमें अस्थायी कालके लिए संन्यास लेनेवाला गृहस्थ।

इन महाशयको चाय दो। आपको इससे पहले कभी देखा नहीं, शायद नये ही आये हैं ?"

"नया नहीं साहब, दिल्ली तो मेरी बहुत जानी-पहचानी हुई जगह है, फ़िलहाल जरूर बहुत दिनों बाद आया हूँ। पुरानी दिल्लीके तो कितने ही लोगोंको शायद अभी तक मेरा नाम भी न भूला हो – जटाधर बक्शी। ओ मनेजर साहब, मुझे कृपाकर बडे प्यालेमें चाय दें, खूब गरम और कडी। एक मोटा-सा बर्मी सिगार, दस बीड़े पान, काफ़ी-सा चूना और जर्दा भी दीजिएगा। हाँ, आप लोगोंमे भूत-प्रेतके बारेमे क्या बात-चीत हो रही थी ? क्या मै भी जरा सुन सकूँगा ? इन बातोंमे मुझे बहुत दिलचस्पी है।"

एक नया और उत्सुक श्रोता पाकर रामतारण बाबू खुश हो उठे; बोले, "हाँ हाँ, जरूर सुनिए। मै यही कह रहा था कि भूत और प्रेत दरअस्ल अलग-अलग जीव है, लेकिन आम-तौरसे लोग उस फ़र्कसे वाकिफ़ नही। मुसलमानी और अँगरेजी हुकूमतोंके जमानेमे भूत-प्रेतोंके बारेमे काफ़ी सुन पडता था, पर अब आजकलके इस सेक्युलर भारतमे तो उन लोगोंका जैसे खात्मा ही होता जा रहा है। गुरु महाराज, पानी महाराज, ज्योतिषीजी महाराज, नेपाली बाबा आदिपर तो लोगोंकी भक्ति काफ़ी-कुछ बढी है पर भूत-प्रेतोपर आस्था घट गयी है; इसलिए उन लोगोंका दर्शन पाना अब मुश्किल है।"

कपिल गुप्त बोले, "विश्वाससे मिलते है भूत, तकरारसे तो दूर हो ही जायेंगे !"

जटाधर बक्शी बोले, "सही बात है। लेकिन भूत अगर प्रबल हो तो बड़ेसे-बड़े अविश्वासीको भी दर्शन देता है। मुझे इजाज़त हो तो मै भी कुछ कहूँ।"

रामतारणने भौंहे सिकोड़कर कहा, "आप भूतके बारेमे क्या जानते है ? पिछले साल जब चाँदनी-चौककी घड़ी गिर पड़ी—"

तीन-चार जने एक साथ ही बोल पड़े, "मुकर्जी बाबू, मेहरबानी करके

आप ज़रा रुकिए, इन्हे कहने दीजिए—"

जटाधर बक्शी कहने लगे—

"बादशाह जहाँगीरके जमानेमे दिल्लीमे एक दफ़ा भूतोने बडा उत्पात मचाया। हमारे कवि भारतचन्द्रने उसका बड़ा सुन्दर ब्योरा लिखा है। भवानन्द मजुमदारकी इष्टदेवीको जहाँगीरने भूत कहकर गाली दी थी। मालिककी शह पाकर बादशाही सिपाहियोने भवानन्दसे कहा—

अरे रे हिन्दूका पूत दिखलाओ कहाँ भूत
नहीं तुझे करूँगा दो टूक।
न होय सुन्नत देके कलमा पढ़ाऊँ लेके
जाति लूँ खिलायके थूक॥

"तब भवानन्दने विपन्न होकर देवीको पुकारा। भक्तके स्तवसे तुष्ट होकर महामायाने भूतसेना भेजी। उन लोगोने दिल्लीपर हमला बोल दिया—

डाकिनी योगिनी शंखिनी पेतिनी गुह्यक दनु दाना।
भैरव राक्षस बोक्कस खोक्कस समरे दिल्लेक हाना॥
लपटे झपटे दपटे रबटे झड़ थड़कड़ बहे खरतर।
लप-लप लम्फे झप-झप झम्पे दिल्ली सब काँपे थर-थर॥
ताथई-ताथई हो-हो हई-हई भैरव-भैरवि नाचे।
अट्ट-अट्ट हासे कट-मट भाषे मत्त पिशाचि पिशाचे॥

अन्तमें मामला तूल पकड़ता देखकर बादशाह भवानन्दकी शरणमे आये। काफ़ी धन-दौलत खिलअत और शाही फ़रमान देकर उन्हे मनाया, तब भूतोंका यह उपद्रव शान्त हुआ। उस ज़मानेकी तुलनामे आजकल भूत-प्रेत कुछ दुर्लभ ज़रूर हो गये है पर दिल्लीमें भूत अब भी दिखायी पड़ जाते है।"

कपिल गुप्त बोला, "क्यों मुकर्जी बाबू, आप तो प्राचीन व्यक्ति है,

बहुत दिनोसे दिल्लीमें है, भूतोंके साथ कभी आपकी मुलाक़ात हुई ?"

रामतारण बोले, "मै निष्ठावान् ब्राह्मण हूँ, तुम लोगोंकी तरह अण्ट-शण्ट नही खाता हूँ, रोज सन्ध्या-जप भी करता हूँ। भूतकी क्या हिम्मत कि मेरे नजदीक आवे।"

कपिल गुप्त बोले, "क्यों जटाधर बाबू, आप तो चौकस व्यक्ति लग रहे है, क्या आपने कभी भूत देखा ?"

जटाधर बोले, "बहुत बार देखा है। भूत देखना बड़ा आसान है।"

"क्या कहते है ! एक बार हमे भी दिखाइए न ?"

रामतारण बोले, "मेरे साथ यह धोखेबाजी नही चलेगी। भूत-प्रेत मानता ज़रूर हूँ, अकेले अँधेरेमे डर भी जाता हूँ, लेकिन यह जटाधर या घटाधर बाबू भूत दिखा सकते है इस बातपर मै विश्वास नही करता हूँ। कॉलेजमे मैने भी बाक़ायदा साएन्स पढी है, मैजिक दिखानेवालोंकी हाथ-सफाई भी मुझे खूब मालूम है।"

क़हक़हा लगाते हुए जटाधरने कहा, "अगर आपको भूत दिखाऊँ ही तो ?"

"दिखाऊँ ही कहनेसे क्या होता है ! कब दिखाइएगा ? कहाँ दिखाइएगा ? किस समय दिखाइएगा ?"

"आज ही, यहीं, और अभी दिखा सकता हूँ।"

कपिल गुप्त बोले, "दिखा डालिए तो ! देर मत कीजिए, हम लोगोंके घर लौटनेका वक़्त हो गया है। लेकिन दिखाइएगा क्या : भूत या प्रेत ?"

रामतारण बाबूसे किसीका विरोध सहा नहीं जाता। बिगड़कर बोले, "बहुत अच्छा, अभी दिखाइए—भूत-प्रेत, ब्रह्मदैत्य, शंख-चुन्नी जो दिखा सकते हों। मैं शर्त लगा सकता हूँ कि आप कुछ नहीं दिखा सकेंगे, सिर्फ़ बहका रहे हैं।"

जटाधर बोले, "आपका चैलेंज मैंने क़बूल किया। ज्यादा रुपया तो मैं बदना नहीं चाहता, क्योंकि आप अवश्य हार जायेंगे—बाल-बच्चेदार

पेन्शनपर गुजारा करनेवाले बूढे व्यक्ति है : आपका नुक़सान करना मैं नही चाहता। इसलिए शर्त बस इतनी ही रहे कि आपको अगर मैं भूत दिखा सकूँ तो मेरी चाय और सिगार-पानकी क़ीमत आप चुकाएँगे और न दिखा सकूँ यानी अगर मै हार जाऊँ तो आपके आजके सारे जलपानका बिल मै दूँगा। राज़ी है न आप ? आप सबकी क्या राय है ?"

सभी बोलने लगे, "बड़ा सुन्दर प्रस्ताव है, वेरी फ़ेयर ऐण्ड जेण्ट्ल-मैन्ली !"

बर्मी सिगारका तेज़ धुआँ निकालते हुए जटाधर बक्शी कहने लगे—

"सन् उन्नीस सौ इकतालीसकी बात है। उस समय मै जनरल सिटवेलके सैपर्स ऐण्ड माइनर्सके दलमे सीनियर हवलदार अमीन था। बर्मा-से चीन तक जो सड़क बन रही थी उसीकी जरीबका काम मुझे करना पड़ रहा था। मेरे ऊपरवाले अफ़सर थे कैप्टन बैबिट।"

रामतारण बाबू बोले, "यह सब क्या बकवास कर रहे है आप ? आप-की नौकरीका ब्योरा हम नही सुनना चाहते, अगर भूत दिखा सकते हो तो दिखाइए।"

दोनों हाथ हिलाकर आश्वासन देते हुए जटाधर बोले, "जल्दबाज़ी न कीजिए जनाब, मेरी बात खत्म होते ही आप भूत देख पायेंगे। उस समय जापानी दक्षिण बर्मामे दाखिल हो चुके थे और उन लोगोंकी एक टुकडी थाइलैण्डके भीतर होती बर्माके उत्तर-पूर्वकी ओर हमला कर रही थी। हम लोगोंकी सर्वे-पार्टी उस समय शान स्टेटके उत्तरमे काम कर रही थी। दल बहुत छोटा था : कैप्टन बैबिट, मैं, पाँच गुरखा सिपाही, पाँच बर्मी कुली, एक जोप और हमारे तम्बू, रसद, थियोडोलाइट लेवल-चेन-झण्डा आदि ढोनेके लिए चार खच्चर। हम लोगोंने जहाँपर डेरा डाला था वह जगह जंगल और पहाड़ोसे घिरी हुई थी, बस्ती वहाँ नहीं थी। शेर, भालू, हुड़ार आदि जानवरोंका बड़ा उपद्रव था। बन्दूक़से मारना मना

था : कहीं दुश्मनोके कान न खड़े हो जायें। बैबिट साहबके साथ एक डब्बा स्ट्रिक्नीनकी टिकियें थीं—जिलेटिनमें लिपटी हुई टिकिया पेटमे जानेपर तीन मिनिटमे गल जाती। गोश्तके टुकडोंके साथ ये टिकियें मिलाकर कैम्पके बाहर रख दी जातीं, और रोजाना दो-चार जानवरोंकी मौत हो जाती।

"एक रोज़ अफ़वाह सुन पड़ी कि जापानी हम लोगोंसे कुल बीस मीलके फासले पर है। कैप्टन बैबिट बोले, 'बक्शी, चलो तुम और मैं ज़रा आगे बढकर देखें, और सब लोग कैम्प ही मे रहे। च्यांग काइ शेकने हम लोगोंकी सहायताके लिए एक चीनी पल्टन यूनानसे भेजी है, आज उसके यहाँ पहुँच जानेकी बात है। उसकी भी खोज-खबर लेना है।'

"हम दोनों उत्तर-पूर्वकी ओर चार-पाँच मील पैदल चले। सामने ही एक घना जंगल था और उसके दूसरी ओर एक छोटा-सा पहाड़। साहब बोले, 'हम लोगोंको उस पहाड़पर चढकर दूरबीनसे चारों ओर देखना चाहिए। हम लोग जंगलमे घुसे ही थे कि जापानियोने हमे चारों ओरसे घेर लिया।"

रामतारण बाबू अधीर होकर बोल पड़े, "बक्शी, तुम तो बस, बक-बक किये चले जा रहे हो। आखिरमे शायद कह दोगे कि तुमने अपनी आँखों एक जापानी भूत देखा। यह सब नही चलेगा भाई, तुम्हारा देखा हुआ भूत हम लोग नहीं मानेंगे।"

जटाधर बोले, "आप निश्चिन्त रहिए, थोड़ी ही देर बाद आप लोग अपनी ही आँखोंसे भूत देख लेंगे। आप आगे सुनिए तो। कैप्टन बैबिट बोले, 'बक्शी, आत्मरक्षाका कोई उपाय नहीं, हाथ ऊपर उठाकर सरेण्डर कर दो।' हम लोगोंके हाथ ऊपर उठाते ही जापानी झपटकर नज़दीक आ गये। ऐसे दुबले-पतले ढाँचे-पंजर-भर फ़ौजी मैंने कभी न देखे थे। उनमे-से तीन-चार जन तो हम लोगोके गाल कन्धे और पैर दाब-दाबकर देखने लगे। एकने तो साहबका कन्धा दाँतोसे काट ही लिया, दूसरोंने घुड़का तब वह हटा।

"बैबिट साहब थोड़ी-बहुत जापानी भाषा समझते थे। मैने पूछा, 'इन लोगोका क्या इरादा है ?' साहब बोले, 'माइ पूअर बक्शी, नही समझ पा रहे ? इन लोगोका भण्डार शून्य है, जो राशन आ रही थी वह सब शान के डाकुओने लूट ली है, सात रोजसे ये भूखे है—इनके पेटमे चूहे कूद रहे है।' थोड़ी ही देर बाद मैने देखा कि उनमे-से कुछ लोगोने एक चूल्हा बना-कर आग जलायी और उसके ऊपर एक बड़ा-सा देगचा चढा दिया।"

टी कैबिनमे जो लोग मौजूद थे उनमे-से बीरेश्वर सिंह सबसे ज़्यादा डरपोक थे। वह सिहरकर पूछ ही बैठे, "क्या तभी चीनी पल्टन वहाँ आ पहुँची ?"

जटाधर बोले, "पल्टन वहाँ कहाँ ? चार जापानी आगे बढ़ आये, दोके हाथोमे रस्सी थी और दोके हाथोमे नंगी तलवार। साहब बोले, 'बक्शी, ये चार टिकियें फ़ौरन निगल जाओ।' मैने कहा, 'पहलेसे ही ज़हर खाकर क्यो मरूँ, जब तक साँस तब तक आस !' साहबने धमकाते हुए कहा, 'जो कहता हूँ सो करो, मै तुम्हारा कमाण्डिग अफ़सर हूँ, हुक्म-अदूली करोगे तो कोर्ट-मार्शलमे फँस जाओगे !' करूँ भी तो क्या ? चार टिकियें सटकी; साहबने भी सटकी।"

बीरेश्वर सिंह आतङ्कसे चिहुँक पड़े, "ऐं ज़हर खा लिया ? उसके बाद क्या चीनी पल्टनके डाक्टरोने आकर ज़हर निकाला ?"

"चीनी पल्टन घण्टे-भरके बाद आयी। हम लोगोके साथ जो हुआ सो सुनिए। दो जापानियोंने हाथ-पैर बाँधकर हमारी गरदन नीचेको झुकायी और दो जापानी तलवारसे खप्प—"

बीरेश्वर बाबू सिर पीटते हुए चिल्ला पड़े, "अरे बाप रे बाप !"

"जी हाँ, तलवारके एक वारसे ही उन लोगोने हम दोनोंके सिर काट डाले।"

रामतारण बाबूने क्षीण कण्ठसे पूछा, "तो आप ज़िन्दा किस तरहसे है ?"

वज्र-गम्भीर स्वरमे जटाधर बक्शीने कहा, "कौन कहता है कि मै ज़िन्दा हूँ? अब क्या आपके हुक्मसे मुझे जीना पड़ेगा? हम लोगोके तो उन लोगोंने काट-काटकर टुकडे किये, देगचेमे पकाया, और चाट-चाटकर खा डाला—भूखके मारे स्ट्रिकनीनका कड़ुवापन तक उन्हे नही लगा। उसके बाद सब जापानी तीन मिनिटके अन्दर ही पट-पट मर गये। कैप्टन बैबिट-सा विचक्षण अफ़सर देखनेमे नही आता जनाब—क्या दूरन्देशी थी! अच्छा, आप लोग बैठिए, मै चलता हूँ। काली बाबू, मेरा बिल रामतारण बाबू ही चुकायेंगे। नमस्कार।"

# जटाधरकी मुसीबत

नयी दिल्लीके गोल मार्केटके पीछेवाली गलीमें काली बाबूकी चायकी मशहूर दुकान है—कैलकटा टी कैबिन। इस अड्डेके बारेमें आप ज़रूर सुन चुके होंगे।

पूस मासकी सत्रहवीं तिथि, शामके छह बजे। पेन्शनयाफ़्ता बूढ़े रामतारण बाबू, स्कूल मास्टर कपिल गुप्त, बैंक-क्लर्क बीरेश्वर सिंह, अख़बारके रिपोर्टर अतुल हालदारके अलावा वहाँ और भी बहुत-से लोग थे। न्यू ईयर्स डे था। इसलिए मैनेजर काली बाबूने ज़रा खास इन्तजाम किया था। गोश्तके चाँप बन रहे थे। रामतारण बाबू निष्ठावान् सात्त्विक व्यक्ति हैं : वे कालीबाड़ीके बलिके बकरेके अलावा दूसरा मांस नहीं खाते। उनके लिए अलग चूल्हेपर मछलीका चाँप तलनेका बन्दोबस्त किया गया था।

सिगरेट, तमाखू और चाँप तलनेके धुएँसे कमरेमें धुँधलका छाया हुआ था और घनी गन्धोंसे कमरा महमहा रहा था। उपस्थित सज्जनोंमें-से कुछ लोग पाँसा खेल रहे थे, कोई अख़बार पढ़ रहे थे, और कोई-कोई राजनैतिक बहसमें व्यस्त थे।

अतुल हालदार बोले, "अरे भाई काली बाबू, कितनी देर है ? चायके लिए तो दिल तड़प रहा है। पर खाली पेट तो चाय पी नहीं जा सकती, झटपट दो-चार तल डालो।"

काली बाबू बोले, "यह लीजिए साहब, बस पाँच मिनिटमें ही चाँप तैयार हो जायेगा।"

ऐसे ही समय जटाधर बक्शीका प्रवेश हुआ। नाक-नक़्शा, वेश-भूषा पहले-सी ही है, छह फ़ीटका लम्बा डीलडौल, 'कैज़री' मूँछें, बदनपर काला खाकी फ़ौजी ओवरकोट, सिरपर पगड़ीकी तरह बाँधा हुआ कम्फ़र्टर; फ़ालतू

कुछ था तो माथेपर चन्दनका टीका और गलेमे गेंदेका हार। कमरेमे दाखिल होते ही अपनी दबंग आवाज़मे बोले, "नमस्कार सज्जनो, खैरियत से है न आप लोग ?"

बीरेश्वर सिह जरा आतंकित हो गये, रामतारण बाबू गुस्सेसे फूलने लगे। कपिल गुप्तने हँसकर कहा, "आइए आइए जटाधर बाबू, देख रहा हूँ कि आप जिन्दा हो गये है। क्या आज भी भूत दिखलाइएगा ?"

पड़ाकेकी तरह फटकर रामतारण बाबू बोले, "तुम्हे पुलिसमे दूँगा, बेहया, ठग, कपटी ! तुम्हे भूत दिखानेकी और कोई जगह नहीं मिली।"

जटाधर बक्शी प्रसन्न मुद्रामे बोला, "मुकर्जी महाशयके बिगड़नेकी ही बात है, सो मेरा मज़ाक़ जरा बेढब क़िस्मका हो गया था यह बात मैं माने लेता हूँ। मरा आदमी बनकर मैंने आप लोगोंको डराया यह ठीक नहीं ही था। उसके लिए मैं वेरी सॉरी। आप लोग अगर जरा धीरज धरकर सुनें तो साफ़ हो जायेगा कि मेरी मन्शा कुछ बुरी नहीं थी।"

रामतारण बाबू क्रुद्ध बिलौटेकी तरह गुर्राने लगे। कपिल गुप्त बोला, "आप क्या कहना चाहते है बताइए जटाधर बाबू।"

अतुल हालदारके बग़लमे बैठकर जटाधर बोले, "आप लोग उपन्यास तो पढ़ते ही होंगे ? प्रेम कथा, बड़े घरानोंके क़िस्से, जासूसी कहानी, रूपवती दस्यु इत्यादि। उसके लिए कुछ पैसा भी खर्च करते हैं। लेकिन बताइए, कहानी पुस्तकोंमे भला कोई सच्चो बात भी होती है ? जी नहीं, आप लोग जान-बूझकर पैसा खर्च कर सरासर झूठी बातें पढते रहते है, चाहे वह शरत् चटर्जीने लिखी हों चाहे पाँचकौडी देने। क्यों पढ़ते है ? मनमे थोड़ी-सी खुशी चुहल, गुदगुदी, कुछ चुभन या ठेस पानेके लिए। कहानी मनका मैसाज है, चित्तकी मालिश है, पढ़नेपर मन-मिज़ाज चंगे हो जाते है। मैने ऐसा कौन-सा बेजा काम किया है जनाब ? रामतारण बाबू बुजुर्ग है, उनका मै आदर करता हूँ, उनके सामने सस्ती प्रेम-कहानी तो सुना नहीं सकता हूँ, इसलिए खुद ही नायक बनकर मैंने एक निर्दोष तथा पवित्र भूत-कथा

सुनायी थी।"

रामतारणने कहा, "तुम्हारी चाय सिगार और पानके लिए मेरे ऊपर साढे चौदह आने जो दण्ड पड़ गये उसका क्या ?"

"मामूली-सी बात, बिलकुल मामूली ! छह-सात रुपयेसे नीचे आज-कल कहानीकी कोई अच्छी किताब मिलती ही नही जनाब ! मैंने तो उस दिन काफी सस्तेमे आप लोगोंका मनोरंजन किया।"

कपिल गुप्त बोले, "बहरहाल, आपने कोई अच्छा काम नही किया, सभीको अचानक शॉक पहुँचाना बहुत बुरी बात है। ज़रा और होता तो बीरेश्वर बाबूका हार्ट फेल हो जाता।"

जटाधरने हाथ जोड़कर कहा, "खैर उस क़ुसूरके लिए माफी भी माँग रहा हूँ और आज उसका जुर्माना भी चुका जाऊँगा। ओ मनेजर काली बाबू, अरे जनाब देख रहा हूँ कि आप काफ़ी चॉप बना रहे है। एक-एक की क़ीमत क्या है ? छह आना ? बहुत खूब, बहुत खूब। सस्ता ही कहना चाहिए—काफ़ी बड़े-बड़े बनाये हैं। अच्छा, मस्टर्ड तो है न ? सत्तू घोला हुआ बनावटी मस्टर्डसे काम नही चलेगा, कहे देता हूँ। देख रहा हूँ कि इस कमरेमे तेरह खानेवाले है, मुझे और काली बाबूको शामिल कर लिया जाये तो पन्द्रह। हरएक अगर औसतन चार-चार चॉप खाये तो पन्द्रह इण्टू चार इण्टू छह आना—यानी कुल साढ़े बाईस रुपये बनते है। उसके साथ चाय, केकी, पान, तमाखू आदिके लिए भी साढ़े बारह रुपया रख लीजिए। कुल बन गये पैंतीस रुपये। रुकिए, मुझे देखने दीजिए मेरी पूँजी कितनी है।"

जटाधरने जेबसे बटुआ निकाला और नोट गिननेके बाद बोला, "हो जायेगा, मेरे पास क़रीब पचास रुपये है। काली बाबू, आप कुछ ज्यादा ही सामान बनाइए। अब, आप महाशय लोग मेरा एक सविनय निवेदन सुन लीजिए। आप लोग सब आज मेरे गेस्ट है। मेरे खर्चसे सभी खायेंगे। नही नहीं, मै कोई एतराज़ नहीं सुनूँगा, मेरा अनुरोध आपको मानना ही

पड़ेगा, वरना मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।"

कपिल गुप्त बोले, "मामला क्या है जटाधर बाबू, इतने दरियादिल कैसे हो गये ?"

जटाधरकी मोटी-मोटी मूँछोंके नीचे एक सलज्ज मुसकराहट दौड़ गयी। गरदन खुजलाकर, सिर नीचा किये हुए बोले, "आप लोग तो घर के आदमी हैं, आप लोगोंसे कहनेमें क्या एतराज है ? क्या बताऊँ, आज बड़े आनन्दका दिन है, आज मेरा शुभविवाह है—"

रामतारण बोले, "पूसके महीनेमें यह शुभविवाह कैसा ? तुम ब्राह्म हो या ईसाई ? आज ब्याह हैं तो तुम यहाँपर कैसे आये ?"

"जी मैं विशुद्ध हिन्दू हूँ। विवाहका अनुष्ठान आज दिनके ग्यारह बजे मैंने रजिस्ट्रेशन दफ्तरमें चुका डाला है। सिविल मैरेज तो पंचांग देखकर की नहीं जा सकती, रजिस्ट्रारकी मर्जीके मुताबिक़ विवाह-लग्न तय होती है। शादी खत्म होते ही मैंने सोचा कि इस समय दिल्लीमें मेरे परिचितोंमें ख़ास कोई है नहीं। मौसेरे भाईके घरपर टिका हुआ हूँ, वह भी पेट-पतला आदमी है : अच्छी-अच्छी चीजें खानेकी शक्ति ही नहीं उसमें ! लेकिन शादीके रोज़ अगर पाँच-दस लोग एक साथ बैठकर खायें-पियें नहीं तो कैसे बने ? आप लोगोंकी याद आयी। और माना जाये तो आप ही लोग मेरे नाते-रिश्तेदार, वरपक्ष-कन्यापक्ष सभी-कुछ हैं ! सो मैं यहाँ चला आया। देखता हूँ कि काली बाबू अन्तर्यामी हैं : उन्होंने फ़ीस्ट तैयार कर रखी है। जो कुछ बना है वही कृपाकर आज आप लोग खाइए। पर यहाँ खिलाकर मुझे सन्तोष नहीं होगा, मेरे ग़रीबखानेपर भी आप लोगोंको एक बार आना ही पड़ेगा – बहूकी बनायी रसोई भी तो खानी होगी ! ज़्यादा कुछ नहीं, बस ज़रा-सा पुलाव, ज़रा-सा मांस, थोड़ी-सी खीर और घण्टेवाली दुकानका जहाँगीरी बालूशाही। मुकर्जी महाशय निष्ठावान् व्यक्ति हैं, यह मुझे मालूम है—कालीबाड़ीसे ही बकरा मँगाऊँगा। मेरी पत्नीके हाथका बना पकवान बहुत स्वादिष्ट होता है : आप लोग खाकर शतिया तारीफ़

करेंगे। एक और निवेदन है जनाब। यहाँके म्युनिसिपल दफ़्तरमे एक काम के लिए कोशिश कर रहा हूँ। सर्वेयर अमीनकी पोस्ट है। मुकर्जी साहब अगर कृपा कर सिफ़ारिश कर दें तो अभी काम मिल जाये। उनका बड़ा रोब-दाब है न ?"

रामतारण बाबूने कहा, "खैर सिफ़ारिशी-चिट्ठो मै लिख दूँगा। लेकिन एक बात पूछता हूँ : तुम्हारी उम्र तो पैंतालीसके लगभग लगती है, क्या यह दूसरी शादी है ?"

"जी नहीं जनाब, पहली ही है। इतने दिन जगह-जगह भटकता रहा, शादी-ब्याहकी ओर रुचि ही न थी, सोचा था बिना झंझट जिन्दगी बिता दूँगा। लेकिन ऐसा न हो सका, अन्तमे बन्धनमे उलझना ही पड़ा। आप चाहे तो सारी बातें कह सुनाऊँ ?"

रामतारण बोले, "अच्छी बात, सुनाओ आज अपनी यही, बशर्ते कि कुछ गोपनीय न हो।"

जीभ दाँतसे काटते हुए जटाधर बोला, "राम कहिए, मेरे जीवनमे कोई भी राज़ नहीं है। यह जटाधर बक्शी जरा मजाक़िया ज़रूर है पर पक्का इनसान है, इसके चरित्रमे आपको कोई कलंक न मिलेगा। ओ मनेजर काली बाबू, आप खाना परोसिए, खाते-खाते ही बताता जाऊँगा। सुनिए जनाब—

लड़ाईके जमानेमे मै उत्तरी बर्मामें फ़ौजी नौकरी करता था। बयालीसकी शुरूआतमे जब जापानियोंने रंगूनपर बमबारी शुरू की तब अंग्रेजों पर हम लोगोका कोई भरोसा न रहा। जान बचा-बचाकर हम सभी लोग भागने लगे। टामू-इम्फल रोडपर विभिन्न जातियोके नर-नारी और बच्चे-बूढ़े ताँता-बँधे दिन-रात चलने लगे। बीमारी और दुर्घटनासे कितने मरे इसकी कोई गिनती नही। अखबारोंमे आप लोग यह सब बातें पढ भी चुके होंगे। बड़ी-बड़ी मुसीबतोको झेलता हुआ जब मैं बर्माकी सीमा पार कर इम्फल

पहुँचा तब एक लड़की मेरी शरणमे आयी। उसकी कथा बड़ी करुण है। कम आयुमे ही उसने बहुत दुःख झेले थे। उसके पतिका नाम था बलहरि जोयारदार, रगूनमे मोटर-मरम्मतका कारखाना था उसका। अच्छा-खासा कमा लेता था। जापानी उसे ज़बर्दस्ती पकड़ ले गये क्योंकि उनके पास मोटर मेकैनिकोंकी बड़ी कमी थी। जाते वक़्त बलहरिने अपनी पत्नीसे कहा, 'अचला, मैं चला, इस ज़िन्दगीमे शायद अब फिर मुलाक़ात न हो सके। तुम जैसे भी हो सके भागो। स्वदेश लौट जानेकी कोशिश करना।' और रोती-कलपती अचला एक बंगाली दलके साथ रवाना हो गयी। दलके सभी एक-एक कर मर गये – हैज़ेसे, टायफॉएडसे, या शेरके पेटमे चले गये। किसी तरह अधमरी हालतमे अचला मणिपुर पहुँची। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि किसीका दुःख मुझसे देखा नहीं जाता, खास-तौरपर औरतोंका। अचला से मैंने कहा, मेरे साथ ही चलो, अगर मै ज़िन्दा रहा तो तुम भी ज़िन्दा रहोगी।"

रामतारण बाबूने सवाल किया, "अचलाके माँ-बाप कहाँ थे ?"

"ओह, उसके माँ-बाप ! वे लोग बहुत दिनोंसे ही पेगू शहरमे रहते थे, वहींपर बलहरिके साथ अचलाकी शादी हुई थी। जापानियोके आ जानेपर अचलाके माँ-बाप भाई-बहन कौन कहाँ भाग गये, ज़िन्दा रहे या नहीं : कोई नहीं जानता। उसके बादकी सुनिए। अचलाको लेकर किसी तरह खतरेकी सीमा मै पार कर आया। फिर बारह साल तक जगह-जगहपर मै तरह-तरहके काम करता रहा : डिब्रूगढ, चिटागांग, नोआखाली, रंगपुर—सभी जगहोंपर। कोई नौकरी पक्की नहीं थी, किसी जगह जमकर टिका भी नहीं। अन्तमे घूमते-घामते इस दिल्लीमे आ पहुँचा हूँ। अब निश्चय कर लिया है कि यहाँसे नही हिलूँगा। यहींपर एक काम जुटा लूँगा। काम भी खोज लिया है, बस मुकर्जी साहब ज़रा कृपा कर दें तो मिल ही गया है।"

रामतारण बोले, "कण्ट्रैक्टर सिकन्दर सिंहसे मैं कह दूँगा, उसका बड़ा इन्फ़्लुएन्स है, वह तुम्हारे लिए कोशिश करेगा। क्यों, तुम तो इतने दिन

आवाराकी तरह घूमते रहे—अचला कहाँ रही ?"

"कहाँ रहती जनाब, मेरे ही पास थी। बड़ी भली लड़की है। रंग कुछ उजला नही, पर नाक-नक़्शा अच्छा है। शुरूमे बहुत रोती-धोती रही। उसके बाद धीरे-धीरे सँभल गयी। लेकिन दो महीने हुए एकाएक वह भिनभिनाने लगी। मैंने पूछा, क्या हुआ है ? जवाब दिया, 'मुझे मौत क्यो नहीं आ जाती ? मैने फिर पूछा, अरे मामला क्या है, साफ़-साफ कह न। तब अचला बोली, 'तुम्हारे लिए क्या मुझे अब ज़हर खाकर, पानीमे डूबकर या गलेमे फाँसी लगाकर मरना होगा ?' मै कुछ न समझा। मैंने कहा, अरी मेरा कुसूर क्या है ? अचला बोली, 'लोग मेरी बदनामी कर रहे है, तुम्हे क्या पता नहीं ?' कैसी मुश्किलकी बात ! मैं बोला, तो मुझे तुम क्या करने को कहती हो ? अचला फफकती हुई बोली, 'जटाई बाबू तुममे क्या अक्ल-वक़्ल जरा भी नही है ?"

कपिल गुप्त बोले, "बेशक, अचलाने कुछ बेजा नही कहा।"

जटाधर बोला, "नही जनाब, अचलाने बेजा कुछ नहीं कहा और अक़्ल-वक़्ल भी मेरे पास काफ़ी है। विवाहके बन्धनमे फँसनेकी मेरी ही बिलकुल इच्छा न थी, लेकिन प्रजापति अगर नारीका रूप लेकर पीछे पड़ जायें तो उनसे छुटकारा पाना किसी पुरुषके बूतेका है ? किसी कविने कहा है—'शारद लतिका सम ललित ललनाकाय।' यह बिलकुल ग़लत बात है। ललनाएँ बिलकुल जोंक-सी होती है। सोचकर मैंने यही निश्चय किया कि इस ललनासे शादी ही कर लेनी चाहिए। उसके पति बलहरिकी कोई खोज-खबर अबतक न मिली—ज़रूर कही मर-खप गया ! लेकिन हिन्दू पद्धतिसे शादी करनेमे इधर झंझटें हैं, इसीलिए सिविल मैरेज करना ही मैंने तय किया। रजिस्ट्रार लाला हंसराज चोपड़ा बड़े सज्जन व्यक्ति है। बोले, 'बारह साल बीत चुके है तो अब चिन्ता करनेकी बात नहीं, बेफ़िक्र हो शादी करो।' इसीलिए आज शादी कर डाली।"

रामतारण बाबू बोले, "पर एक कर्त्तव्य तो बाक़ी रह गया। पूर्वपतिका श्राद्ध करना जरूरी था।"

"उसका जिक्र न कीजिए जनाब। मेरे काममे कोई नुक़्स न पाइएगा। बारह साल पूरे होते ही अचलाने अपने सुहागकी चूड़ी तोड़ दीं, सिन्दूर पोंछ डाला, और सफेद धोती पहन ली थी। उसीसे विधिपूर्वक श्राद्ध करवाया, पाँच ब्राह्मणोंको भोजन भी कराया। उसके अशौचका अन्त हुए तीन ही दिन तो हुए है। उसके बाद अब शादीके होते ही अचलाने सुहागिनके सब लक्षण धारण कर लिये है। हाँ, भली याद आयी—ओ काली बाबू, ये सात चाँप मैने जेबमे रख लिये, खुद तो गपागप खाता जाऊँ और सह-धर्मिणीको एक भी न दूँ ऐसा नही हो सकता! ऐसा ख़ुदग़र्ज़ मैं नही हूँ। बेचारी पन्द्रह दिनसे शाकाहारी है। इन सात चाँपोंका दाम भी मै दूँगा।"

अतुल हालदार बोले, "बड़ा दिलचस्प इतिहास है। मैने नोट कर लिया है। अपने 'हिन्दुस्तान मिरर' मे छापूँगा। आपको कोई एतराज़ तो नहीं है जटाधर बाबू?"

"बिलकुल नहीं, खुशीसे छापिए। अगर चाहते हों तो और डिटेल्स भी दे सकता हूँ। अचलाका और अपना फ़ोटो भी दे सकता हूँ।"

इसी समय एक आदमी टी कैबिनके दरवाज़ेके पास आकर भर्रायी-सी आवाज़में बोला, "जटाधर बक्शी यहाँपर है?"

आगन्तुक दुबला-पतला, और नाटे क़दका, गन्दा-सा खाकी पैण्ट, नीली जर्सी, और उसपर मोटे पट्टूका खुला कोट पहने; और हाथमे एक बड़ा-सा रेंच लिये हुए। उसके सवालके जवाबमे जटाधर बोला, "मैं ही जटाधर बक्शी हूँ, आप कौन है जनाब?"

"तुम्हारा यम," यह कहते हुए उस आदमीने लपककर जटाधरका हाथ पकड़ लिया।

रामतारण बाबू बोले, "कौन हो जी तुम ? क्यों यहाँ आकर इस तरह हमला कर रहे हो ? जानते हो इसे ट्रेसपास कहते है—क्रिमिनल केस ? क्या नाम है तुम्हारा ?"

"मेरा नाम बलहरि जोयारदार है। आप लोगोंसे कुछ नही कह रहा हूँ। मेरा लेना-देना है इस साले जटाधरके साथ !"

रामतारण बाबू बोले, "बड़े ताज्जुबकी बात ! क्या तुम ही अचलाके भूतपूर्व पति हो ?"

"सिर्फ़ भूतपूर्व हो नहीं, बाक़ायदा वर्त्तमान पति भी हूँ और भविष्य-पति भी। इस पाजी जटे सालेको अगर मैं जेल न कटाऊँ तो मेरा नाम बलहरि जोयारदार नहीं !"

रामतारण बाबू बोले, "बड़ी मुसीबत है ! क्यों जी जटाधर, अब क्या करोगे ?"

जटाधरने करुण स्वरमे कहा, "मेरा तो सर्वनाश हो जायेगा जनाब, आप ही अब एक फ़ैसला कर दीजिए।" यह कहकर वह रामतारण बाबूके पैरोंसे लिपट गया।

रामतारण बाबू बोले, "तुम घबड़ाओ मत, जटाधर ! ऐसे मामलों-मे दिमाग़ ठण्डा रखना चाहिए। इसका फ़ैसला तो अचलाके हाथोमे है। वह अगर कहे कि यही आदमी उसका पति है तो तुम्हे वही बात मान लेनी पड़ेगी। क्यों भाई जोयारदार, आपने भला अचलासे भी भेंट की ?"

"उसीके पाससे तो आ रहा हूँ। मुझे देखते ही वह फूट-फूटकर रोने लगी। मेरे धमकानेपर बोली, 'जटाई बाबूको बुला लाओ। उनकी सम्मतिके बिना मैं कुछ नहीं कर सकती हूँ।' ओह, जटाई मानो उसका गुरू है !"

रामतारण बाबू बोले, "मामला तो और पेचीदा बनता जा रहा है। अचला अगर अब जटाधरके पास ही रहना चाहे और बलहरि उसे न माने तब तो महा झंझट खड़ा हो जायेगा। अदालतका मामला हो जायेगा।

लेकिन कोई भी काम ग़ैरकानूनी नहीं हुआ है। नष्टे मृते प्रव्रजिते—शास्त्र वचन है न? बारह बरस बीत जानेपर यथाविधि श्राद्धशान्ति करनेके उपरान्त अचलाका पुनर्विवाह हुआ है। ऐसे क्षेत्रमे भूतपूर्व पतिका लौट आना ही बेजा है।"

कपिल गुप्त बोले, "एनॅक आर्डेनकी तरह उसे ही अपनी इज़्ज़त लिये हुए खिसक जाना चाहिए था।"

बलहरि बोला, "वाह क्या बात सुनायी आपने भी, दिल बाग़बाग़ हो गया! अपनी बीबीके पास नहीं आऊँगा तो क्या इस कमीने जटेको देखकर शर्मसे जीभ गालमे दबाकर भाग जाऊँगा?"

जटाधर बोला, "मै इस बलहरि जोयारदारको मुआवजेके बतौर कुछ रुपये देनेको तैयार हूँ। अभी पचास दे सकता हूँ—घर जाकर और पचास—"

बलहरि गरजकर बोला, "चुप रह सुअर, सौ टकेमे मेरी बीबी खरीदना चाहता है? एक बकरी भी इस कीमतपर नहीं मिलती।"

कपिल गुप्त बोले, "ए भाई, ज़रा समझ-बूझकर अकड़ो! तुम हो सीक-भरके : जटाधरका डील-डौल कुछ देखा है? एक ही झाँपड़मे तुम्हारा काम तमाम कर देगा!"

"वाह, झाँपड़ कैसे मारेगा? देखते नहीं साला डरके मारे केंचुआ बन गया है। पाँच साल मंचूरियामे जापानियोंके साथ था मैं; जुजुत्सूके दाँव-पेच अच्छी तरह सीख आया हूँ। उसके बाद सात बरस चीनियोंके साथ बिताये हैं। वे क्या छोड़ना चाहते थे? तीन काँमरेडोंका गला घोंटा, दम निकलते ही भाग आया। इस जटुआको तो दो उँगलियोंसे गिरा दूँ! कमीना कहींका!"

काँचपोका जिस तरह अपनेसे बड़े तिलचट्टेको पकड़कर ले जाता है उसी ठीक तरह बलहरि जोयारदार जटाधरको हाथसे पकड़कर घसीटता

हुआ ले गया। रामतारण मुकर्जीने एक लम्बी साँस ली और कहा, "ऐसी भी आफ़तमे कोई पड़ता है ! हाय, बेचारेने दोपहर शादी की है और शाम को ही यह छीछालेदर ! अचलाके लिए सचमुच अफ़सोस हो रहा है !"

मैनेजर काली बाबू एकाग्र मनसे हिसाब लगा रहे थे। फिर ऊँची आवाज़मे बोले, "भाड़मे जाये अचला, आजका खर्च कौन देगा ?"

# ललित निबन्ध

# जीवन-स्तर

'सादा जीवन और उच्च विचार'—यह वाक्य कभी बहुत सुनायी पडता था। अब उसके बदले सुनायी पड़ता है—'जीवन-स्तर उच्च करना होगा' इन दोनों बाह्यतः विरोधी वाक्योमें क्या कोई सामञ्जस्य है? उच्च विचारों मे बाधा न आने देनेके लिए जीवन-स्तर कितना सरल बनाया जा सकता है? उसका निम्नतम मान क्या है?

यूनानी संन्यासी डायोजिनीज रात एक बड़े-से पीपेमें काटते थे और सारा दिन बाहर निकलकर धूप तापते रहते थे। शायद उनके पास कोई कपड़े आदि न थे और लोग दया या भक्तिसे जो कुछ दे देते उसीसे वे अपनी भूख मिटा लेते। इस रिक्त जीवन-स्तरसे उनके उच्च विचारणमे कोई बाधा नहीं आयी। बंगलामें 'उञ्छ' शब्द हीन, नीच अथवा तुच्छके अर्थमे चलता है। लेकिन इसका मूल अर्थ है—खेतोंमें पड़ा धान आदि बटोरना यानी बहुत ही कम उपकरणों-द्वारा जीवन-निर्वाह करना। महाभारत में उञ्छवृत्ति-व्रतधारियोंकी बड़ी प्रशंसा मिलती है। शान्तिपर्वमें लिखा गया है—एक उञ्छव्रती समाधिनिष्ठ अनासक्त ब्राह्मण फलमूल, जीर्णपत्र और वायु भक्षण कर सर्वभूतके हित-साधनमे लगा रहता था। हरप्रसाद शास्त्रीने 'प्रबल नैयायिक' जंगली रामनाथके बारेमें लिखा है कि वे वनमें छात्रोंको पढ़ाते थे और अपनी पत्नीके साथ सिर्फ़ भात और इमलीके पत्तोंके रसके सहारे प्राण धारण करते थे। महाराज शिवचन्द्रके प्रश्नके उत्तरमें इन्होंने बताया था कि उन्हें कोई अनुपपत्ति नहीं है।

जो लोग निस्पृह संन्यासी हैं या जिनका कोई परिवार नहीं, या जिनका परिवार बहुत कमसे ही खुश है, उनके भी जीवन-स्तरके लिए कुछ चीजें होना जरूरी है। सबसे पहले स्वस्थ-सबल शरीर चाहिए जो कि धर्मका

आद्य साधन है और जिसके न होनेपर उच्च विचारण ज्ञानचर्चा अथवा सत्कर्म कुछ भी नहीं चल सकता। फिर स्वास्थ्यके लिए यथोचित खाद्य, वस्त्र और आश्रय चाहिए। जो प्राकृतिक रूपसे स्वस्थ और बलवान् है वह जितने कम साधनोंसे जीवन-धारण कर सकता है उतनेसे बीमार या कमज़ोर नहीं कर सकता।

उच्च विचारण या ज्ञानचर्चा और सर्वभूतका हित-साधन या लोक-सेवा इन दोनोंका अर्थ पुराने ज़मानेमे जो था बिलकुल वैसा ही अब नहीं है। इस युगके आदर्शोका पालन करनेके लिए जो निम्नतम जीवनोपाय या 'नसेसैरीज़ ऑव लाइफ़' आवश्यक है वह भो बदला हुआ है, उस युगका उञ्छव्रत अब असाध्य है। यथोचित खाद्य, वस्त्र और आश्रयके अलावा भी कुछ विषयोंका प्रबन्ध न होनेसे जीवन-यात्रा आगे नहीं बढती।

अत्यल्पमे तुष्ट होनेवाले लोगोंकी संख्या हमेशासे ही कम है, सामान्य जन भोग-विलास चाहते है। बहुत-से विलासी लोग भी ज्ञानचर्चा और लोकसेवा करते है, बहुत-से अविलासी लोगोमे भी उच्च विचारण और सत्कर्मकी प्रवृत्ति नहीं रहती। फिर भी देखा जाता है कि भोगीकी तुलनामे त्यागी ही अधिकतर लोकहितैषी होते है। इस कारण 'सादा जीवन और उच्च विचार' सब देशों और सब युगोंमें मनुष्यके श्रेष्ठ आदर्शके ही रूपमें स्वीकार किया गया है।

अधिकांश भारतवासियोंको आवश्यक जीवनोपाय प्राप्त नहीं। आदर्शका पालन तो दरकिनार, ज़िन्दा रहना ही बहुतोंके लिए कष्टसाध्य है, रोटीके अलावा उन्हें दूसरी चिन्ताओंके लिए अवकाश ही नहीं है। कोई व्यक्ति ज्ञानचर्चा और लोक-सेवा करे या न करे, वह राजपुरुष, व्यापारी, वैज्ञानिक, शिक्षक, कलाकार, किसान या मज़दूर कुछ भी हो, उसे मनुष्योचित जीवन-यात्राके लिए कुछ वस्तुएँ चाहिए ही—इसमे दो राय नहीं हैं। लेकिन मनुष्योचित जीवन-स्तरका निम्नतम मान क्या है? देशभेदसे और शीतातप आदि प्राकृतिक कारणोंसे जीवनोपायमें भी भिन्नता होगी। पेशेकी भिन्नता

से भी कुछ-कुछ परिवर्त्तन होगा : श्रमिकका भोजन अश्रमिकके समान होने से नहीं चलेगा। इस तरह ख़ास-ख़ास प्रयोजनोंको मान लेनेपर भी सर्व-साधारणके लिए जीवन-स्तरका मान क्या तय किया जा सकता है ?

जिस व्यवस्थामे मध्यमवर्गी या धनी और दरिद्रके बीचके लोगों (जिनका आधुनिक नाम बुर्जुआ है) की स्वस्ति और स्वच्छन्दताका बोध बना रहता है उसीको छोटेसे बड़े तक समस्त जन-साधारणके जीवन-स्तरका निम्नतम मान समझा जा सकता है। मेरा जन्म मध्यमवर्गी समाजमें हुआ। पिछले साठ-सत्तर सालमें इस समाजके जीवन-स्तर और उसके साथ स्वस्ति व स्वच्छन्दता बोधका जो परिवर्त्तन देखा है उसपर विचार करनेसे शायद मान तय करनेका सूत्र मिल जायेगा। इस दीर्घ कालके आरम्भकी ओर मैं उत्तर बिहारके एक सामान्य शहरमें था। बिहारियोंकी तुलनामे बंगालियोंके जीवन-स्तरमे आडम्बर अधिक था। जो शरीफ़ बंगाली महीनेमे बीस-पचीस रुपये कमा लेते थे उन्हे खाना, कपड़ा और रहनेके लिए मकानकी कमी नहीं होती थी। हमारे घरमें आधुनिक सामान नहीं था, बहुत-से तख्त और कुछ बेडौल मेज-कुरसी और अलमारियाँ ही थीं। पानीका बम्बा और बिजली नहीं थी। शौचालय बहुत दूर था, बारिशमें छतरी लगाकर जाना पड़ता था। चाय कभी-कभार ही दवाके तौरपर पी जाती थी। सिगरेट तब नयी-नयी निकली थी, धनियोंके कुछ लड़के छिप-छिपाकर पीते थे, पीनेवाले वयस्क लोग सब तम्बाकू ही पीते थे। सुगन्धित केश-तैल और दन्त-मंजन आदि प्रसाधनोंका चलन नहीं था। बाइसिकिल, फ़ाउण्टेन पेन, कलाई-घड़ी नहीं थी : जो लोग अच्छी नौकरी करते थे उन्हींके पास जेब-घड़ी होती थी। फुटबॉल और क्रिकेटका परिचय नाम मात्रको था। मनोरंजनकी व्यवस्था थी कालीपूजाके दिनों शौक़िया थिएटर, कभी-कभार जात्रा ( नौटंकी-सी ), और यहाँ वहाँ घरोंमे गाना, ग़पशप, ताश, पाँसा या शतरंजका अड्डा। साप्ताहिक 'बंगवासी' में देश-विदेशकी जो खबरें होती थीं उन्हींसे साधारण भद्र जनोंका कुतूहल शान्त हो जाता था।

बगला कहानी, लेख और कविताकी पुस्तके बहुत कम थीं, मिलनेपर निकृष्ट पुस्तकें भी लोग साग्रह पढ़ते थे। उस वक़्तकी प्रधान ऐयाशी थी अच्छी चीज़ें खाना।

इस मध्यमवर्गीय समाजके जो लोग आजकल कलकत्ता अथवा दूसरे शहरोंमे रहते है उनका जीवर-स्तर काफ़ी बदल चुका है। ये लोग उस ज़मानेकी तुलनामे कही बढ़ा-चढ़ा हुआ रोज़गार-धन्धा करते है लेकिन इनका अभावबोध फिर भी बहुत बढ़ा हुआ है। इसका कारण यह है कि रुपयेका मूल्य अब घट गया है, खाने-कपड़ेका दाम बढ गया है, और कितने ही विषयोमे लोगोने अपने जीवन-स्तरका मान भी बहुत-बहुत बढ़ा लिया है। भोजन निकृष्ट हो गया है लेकिन पोशाक, नशा, शौक और विनोदकी मात्रा खूब बढ़ गयी है। इस युगके युवक और किशोर धोती-कुरतेमे सन्तुष्ट नही, उन्हे क़ीमती-क़ीमती पैण्ट और तरह-तरहकी शौक़ीन क़मीज़ें चाहिए। स्त्री-पुरुष सभीको शृङ्गार-प्रसाधनोंकी आवश्यकता है। जिस प्रकार औरतोके लिए एक जोड़ी चूड़ी पहनना ज़रूरी है उसी प्रकार पुरुषों-के लिए कलाई-घड़ी और फ़ाउण्टेन पेन लगाना जरूरी है। चाय नौजवान और बूढ़े सभीको दिनमे कई-कई बार चाहिए। पीनेका सस्ता तम्बाकू क़रीब-क़रीब उठ ही गया है, बहुत-से लोग तो अब दिनमे तीस-तीस चालीस-चालीस तक सिगरेटें पी जाते है। रोज़-रोज़ सिनेमा और फ़ुट-बॉल मैच देखे बिना चलता ही नहीं। ग्रामोफ़ोन और रेडियो न रहनेसे घरपर वक़्त नहीं कटता। मानसिक भोजनके लिए कहानी-पुस्तकें ख़रीदनी पड़ती हैं, अच्छी पुस्तक छह-सात रुपयेसे कममें नहीं मिलती। सारी दुनियाके हालचाल जाननेके लिए रोज़ एकाधिक अख़बार भी पढ़ने ही पड़ते है।

अपने और अपने समकालीन सम्बन्धियों-मित्रोंके अनुभवके आधारपर कह रहा हूँ कि इस युगकी तुलनामें उस युगके मध्यमवर्गकी स्वस्ति और स्वच्छन्दताका बोध कम बिलकुल नहीं था। ऋष्यशृङ्ग तपोवनमे अपने

पिताके पास बड़े सुखसे थे। लेकिन जैसे ही उन्होंने लोमपाद राजाकी दूतियोंको देखा और उनके दिये हुए अच्छे-अच्छे लड्डू खाये और सुपेय पिया, बस उन्हे लगने लगा कि इतने दिन व्यर्थ ही बीते हैं।

उस युगके किसी मध्यमवर्गीको अगर मन्त्रबलसे इस युगके कलकत्तेमें ले आया जाये तो उसे कैसा लगेगा? खाना-कपड़ा, मकान-किराया और नौकर-खर्च देखकर वे सिहर उठेंगे, बच्चोंके रंग-ढंगपर झुँझलायेंगे, लेकिन विभिन्न आधुनिक सुख-सुविधाएँ भोगकर खुश भी होंगे। इस युग के किसी व्यक्तिको अगर कलकत्तेसे उस युगके किसी मुफ़स्सिल शहरमें जा पटका जाये तो वह खुश नही होगा। अच्छी-अच्छी चीजें खाकर वह जिन्दा रहेगा, इसमें सन्देह नहीं; लेकिन बम्बेका पानी, फ़्लशवाला शौचालय, बिजलीके बत्ती-पंखे, दैनिक पत्र, सेफ्टी अस्तुरा, दाढ़ी बनाने का साबुन, बेइन्तहा चाय और ट्राम-बस आदि न होनेमें वह तकलीफ़ में पड़ जायेगा। अगर उसकी उम्र कम हुई तो सिनेमा, रेडियो, रेस्तराँ का खाना, फ़ुटबॉल-क्रिकेट मैच, नाच-गानेके जलसे, सरस्वती देवीका सालाना श्राद्ध, सार्वजनीन हुल्लड़बाज़ी और ताज़ासे-ताज़ा राजनैतिक खबरोंके न होनेसे छटपटायेगा।

पचास बरस पहले कलकत्तेमें दो-एक ही मोटरकारें दीख पड़ती थीं, सामान्य व्यक्तियोंके लिए टेलिफ़ोन न था। मगर तो भी बड़े-बड़े कर्मचारी, वकील-डॉक्टर या व्यापारियोंको इससे कोई असुविधा नहीं होती थी। लेकिन प्रचलनके कुछ दिनोंके अन्दर ही मोटर और टेलिफ़ोन अति आवश्यक बन गये। अमुक-अमुकके यहाँ है इसलिए दूसरोंको भी रखना पड़ेगा, वरना कर्मक्षेत्रमें पराभव अवश्यम्भावी है। जैसे रूसने बहुत-से फ़ौजी विमान बनाये हों इसलिए अमेरिकाको भी बनाने पड़ें! अमेरिकाने ऐटॅम बम बना लिया है इसलिए रूस और ब्रिटेनको भी बनाना है। उस ज़मानेके लोगोंका काम रेलगाड़ीपर सफ़र करनेसे ही हो जाता था, अब हवाई जहाज़के बिना बहुतोंका काम नहीं चलता। आज अगर कुछ धनी व्यक्ति

हेलीकॉप्टर रखकर एक मकानकी छतसे दूसरेकी छत तक जाना शुरू कर दें तो बहुतेरे लोगोंको वही करना पड़ेगा।

सिर्फ़ कामकी सुविधा, आराम या विलासिताके लिए अथवा व्यापार-की होड़के कारण ही नयी-नयी चीज़ें अति आवश्यक हो गयी हों ऐसी बात नहीं, अनुकरण और फ़ैशन भी एक कारण है। अनाजकी कमीके कारण सरकारने क़ानून बनाकर बड़ी-बड़ी दावतें दिया जाना बन्द करा दिया है। क़ानूनको माननेपर एक सामाजिक कुप्रथा भी दूर होती है। लेकिन चूँकि अमुक रिश्तेदार या दोस्तने क़ानून न मानकर हज़ार मेहमानोंको दावत दी है इसलिए मुझे भी वही करना है वरना इज़्ज़त नहीं बचती। सरकार शराब बन्द करनेकी कोशिश कर रही है, शराबकी क़ीमत भी बहुत बढ़ गयी है, लेकिन ऊँचे समाजकी पार्टियों और बैठकोंमें स्त्री-पुरुष सभीके लिए थोड़ी-बहुत शराब पीना अब प्रगतिका लक्षण बन गया है। कितने ही लोग पैसा खर्च करके बॉलडान्स सीख रहे है। भारतवासी जिस समय स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहा था उस समय विदेशी वस्तुओंके इस्तेमालमें सङ्कोच और विलासितामे जो संयम था वह एकदमसे लुप्त हो गया है। पहले जो चीजें नहीं थीं या रहनेपर भी जो आवश्यक नहीं समझी जाती थीं अब वे बहुतोंके लिए अत्यावश्यक बन गयी हैं। देशके लोग 'क्विट-इण्डिया' कहकर विदेशी सरकारको हटा चुके हैं लेकिन विदेशी विलास और व्यसनको सादर अपना बैठे हैं।

आधुनिक सभी कृत्रिम आदतें ( या व्यसन ) यदि अनावश्यक मान लिये जायें तो जीवन-स्तरका न्यूनतम उपकरण या जीवनोपाय बनता है—यथोचित ( बहुलतावर्जित ) खाद्य, वस्त्र, आश्रय, सफ़ाई, शिक्षा, चिकित्सा, व्यायाम और परिमित मात्रामे चित्त-विनोदकी व्यवस्था—

**अन्न चाइ, प्राण चाइ, चाइ मुक्त वायु**
**चाइ बल, चाइ स्वास्थ्य, आनन्द उज्ज्वल परमायु**
**साहस विस्तृत वक्षपट।.....(रवीन्द्रनाथ)**

अमेरिका और युरोपके कई देशोंका जीवन-स्तर बहुत ऊँचा है। इस देशकी आम जनताकी नज़रोंमे अब भी जो अमीरी या अतिरिक्त आडम्बर है, पाश्चात्य देशोंमें वह 'नेसेसेरी' है—जैसे, मोटरकार, रेफ्रीजेरेटर, बिजलीका चूल्हा, धूल झाड़नेकी मशीन, कपड़ा धोनेकी मशीन, खानेका टीनबन्द सामान, विभिन्न प्रकारकी पोशाकें, मुँह-होंठ और नाखूनोंके रंग, नाचघर, नाइट-क्लब आदि। जीवनका स्तर बढ़ाना होगा—यह उपदेश पाश्चात्य पण्डित निरन्तर हमे देते रहते है। वे शायद अपनी समृद्धिके साथ हमारी दुर्दशाकी तुलना करके करुणावश ही ऐसी बातें करते हैं। पर जीवन-स्तर बढ़ानेपर विलासिता बढ़ेगी, विदेशी सामान बिकनेकी सुविधा होगी, इस देशका श्रमिक कम वेतनपर काम कर विदेशी श्रमिकके साथ होड़ नहीं लेगा—यह स्वार्थबुद्धि भी इस उपदेशके पीछे हो सकती है।

भोग-विलासकी प्रवृत्ति मनुष्यके लिए स्वाभाविक है। अगर वह परिमित हो और आम जनताकी सामर्थ्यके बाहर न हो, तब आपत्तिका कोई कारण नहीं। युरोपके अनेक देशों तथा उत्तर-अमेरिकाकी तुलनामे इस देशमें धनी-दरिद्रका अन्तर बहुत भारी है, दरिद्रोंकी संख्या भी बहुत अधिक है। ब्रिटेनमे विभिन्न टैक्सोंके कारण धनी-दरिद्रका अन्तर क्रमशः घट रहा है, धनीका जीवन-स्तर गिर रहा है। इस देशकी सरकार भी आयकर आदिके द्वारा और विदेशी विलास-सामग्रीपर अन्य करादि बढ़ाकर वही प्रयास कर रही है। लेकिन कौन-सी वस्तु जीवन-निर्वाहके लिए अति आवश्यक है इसका यथोचित विचार नहीं हुआ है, न ही उसके अनुसार देशवासियोंको संयम सिखानेकी कोशिश की गयी है।

हालमें इस देशमे धनियोंकी संख्या कुछ बढ़ गयी है, बहुत-से लोग उचित या अनुचित ढंगसे क़ाफी-काफ़ी कमाकर बहुत विलासी बन गये हैं। लेकिन अब भी धनियोंकी संख्या दरिद्रोंकी तुलनामे मुट्ठी-भर है। कहा जा सकता है कि अमीर विलास-व्यसनमे डूबे रहकर जहन्नुम जायें उसमें किसका क्या नुक़सान है। उनकी दौलत छीनकर सारी प्रजामे बाँट देनेपर

भी ग़रीबोंकी कुछ खास भलाई न होगी। लेकिन भ्रष्टाचार जिस प्रकार संक्रामक होता है उसी प्रकार विलासिता भी, इस कारण उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पिछले कुछ वर्षोंसे चोरी और रिश्वतका जो देशव्यापी प्रसार हुआ है उसका एक कारण विलासिताका लोभ है। इस देशके शरीफ़ घरानेके लड़के श्रमसाध्य जीविका नही चाहते इसीलिए उनमे बेकारोंकी संख्या ज्यादा है। उनमे विलास-वासना तो है पर अच्छे उपायोंसे वे उसे तृप्त नहीं कर पाते इसलिए उनका असन्तोष बढ़ता जाता है। कम्युनिस्ट डिक्टेटरी-राष्ट्रमे जीविका चुन लेनेकी विशेष सुविधा नही है, पर ऊँच-नीच सभीको काफ़ी मेहनत करनी पड़ती है। लोहेके परदेका उद्देश्य यह हो सकता है कि दरिद्र सोवियत प्रजा विदेशी धनी राष्ट्रोंको विलासिता जानकर अपनी दशासे असन्तुष्ट न हो जाये।

पाश्चात्य अर्थनीति कहती है—want more, work more, earn more यानी अधिक चाहो, अधिक करो, अधिक कमाओ—इच्छाकी मारसे मेहनत करते चलो, कमाई बढाते चलो तभी नयी-नयी कामनाएँ पूर्ण होगी और क्रमशः जीवन-स्तर ऊँचा होता जायेगा। भारतका शास्त्र उल्टी बात करता है—घी डालनेसे जिस तरह आग बढ़ती ही जाती है उसी तरह काम्यवस्तुके उपभोगसे केवल कामना ही नहीं बढ़ती बल्कि शान्ति भंग होती है, विश्वमें जितने भोग्य विषय है वह एक व्यक्तिके लिए भी पर्याप्त नही है। कामनाको संयत न करनेसे मनुष्यका कोई कल्याण नहीं होगा।

अमुक देशमे सौमे पचीस आदमियोंके पास मोटर गाड़ी है, हर पाँच-हज़ार व्यक्तियोके लिए सिनेमा है, सभीके पास रेडियो है; हर व्यक्तिके पीछे सालमे इतनी बिजली, इतने पौण्ड मक्खन, इतने पौण्ड साबुन, इतने गैलन पेट्रोल खर्च होता है; हर व्यक्तिके पास कमसे-कम इतने वर्गफ़ुट लेटने की जगह है, इसलिए इस देशका आदर्श भी वही होना चाहिए—इस प्रकारकी अन्धी आकांक्षाओंसे बुद्धि भ्रान्त हो जाती है। राष्ट्रकी आय और उत्पादन शक्ति कूतकर ही जीवनोपायकी व्यवस्था करना आवश्यक है। जो

अति आवश्यक है उसके मिटानेके लिए बहुत-से विलास और सुविधाओंको अभी मुलतबी रखना होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रमिकको सन्तुष्ट करना पड़ेगा। लेकिन धनीका मुनाफ़ा बरक़रार रखकर अगर मज़दूरी बढ़ायी जाये तो बहुत-सी अत्यावश्यक वस्तुओं ( जैसे कपड़ा ) का दाम बढ़ जाता है, उसके कारण सभीके खर्च बढ़ जाते है, दूसरे सौदे भी महँगे हो जाते हैं इसीलिए फिर मजदूरी बढ़ानेकी जरूरत पड़ जाती है। इस दुष्ट चक्रका नतीजा देशवासी अच्छी तरहसे भुगत रहा है।

हम लोग धर्मप्राण जातिके हैं, इहसर्वस्व नही, जनक-कृष्ण-बुद्ध आदि की शिक्षा हमने हृदयंगम कर ली है—ये सब बातें कोरी आत्मप्रतारणा है। राष्ट्रीय-चरित्रका सुधार न होनेपर हम लोगोंका बचाव नही। सरकार ने काफ़ी खरचकर अनेक प्रकारकी योजनाएँ चलायी है जिनके सुफल मिलने मे देर होगी। धरतीकी खेतीसे मानव-मनकी खेती कुछ कम ज़रूरी नहीं है। इस समय जो लोग अल्पवयस्क हैं वे ही भविष्यमें राष्ट्र चलायेंगे, उनकी शिक्षा और चरित्र-निर्माणकी व्यवस्था सबसे पहले आवश्यक है। उसके लिए ऐसा शिक्षक चाहिए जिसमे योग्यता हो और जो अपनी दशासे तुष्ट हो। सिर्फ़ विद्या ही नही, छात्रोंको बचपनसे वे आचार और विनय ( discipline ) सिखाना होगा, मन्त्रदाता गुरुकी तरह सदभ्यास तथा सत्कर्मकी प्रेरणा देनी होगी। हमारी सरकार इच्छा या अनिच्छापूर्वक मजदूरोंकी बहुत-सी माँगें मान लेते हैं, उसकी दृष्टिमें शिक्षकोंसे श्रमिकोंकी मर्यादा अधिक है क्योंकि श्रमिकोंके कार्योंका फल प्रत्यक्ष होता है। शिक्षक यदि योग्य हों तो उनके कार्यका फल मिलनेमे विलम्ब होनेपर भी उसका महत्त्व कितना ज्यादा है वह समझने लायक़ दूरदर्शिता न तो सरकारके पास है और न जनताके पास, इसीलिए शिक्षकवर्ग सबसे ज्यादा उपेक्षित हैं।

# साहित्यिकका व्रत

साहित्यका स्थूल अर्थ है एकका चिन्तन बहुतोंको ज्ञापित करना। विषयके अनुसार साहित्यको मोटे-तौरपर तीन वर्गोंमें बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग है तथ्यमूलक; उसका उद्देश्य है विभिन्न विद्याओंकी आलोचना : स्थान, काल, घटना या पदार्थका विवरण—विज्ञान, इतिहास, जीवन-चरित्र आदि। दूसरा वर्ग है प्रचारमूलक जिसका उद्देश्य धर्म, समाज, राजनीति आदिसे सम्बन्धित मतवाद या पण्यद्रव्यका यश गाना है। तीसरा वर्ग भावमूलक है। रसोत्पादन या चित्तविनोदन ही उसका मुख्य उद्देश्य है, लेकिन उसके साथ थोड़ा-बहुत तथ्य और प्रचार भी रह सकता है। प्रथम वर्गके साहित्यका विषय और क्षेत्र निर्दिष्ट है, उसमें अनावश्यक विषयोंकी आलोचनाका स्थान नहीं। दूसरे वर्गका प्रतिपाद्य और क्षेत्र भी सीमित है, लेकिन पाठककी आस्था बनाये रखनेके लिए अनावश्यक प्रसङ्गोंकी सहायता भी ली जाती है। तीसरे वर्गका उद्देश्य है रसका उत्पादन, पर क्षेत्र बहुत लम्बा-चौड़ा है, उपजीव्य असंख्य हैं और साधनके उपाय भी विभिन्न प्रकार के हैं। काव्य, नाटक, कहानी और 'बेले लेटर्स' श्रेणीके सन्दर्भ इसी वर्गमें आते हैं। पुराने ज़मानेमें 'काव्य' या 'साहित्य' नामसे ऐसी ही रचनाएँ समझी जाती थीं। आजकल काव्यका अर्थ संकुचित हो गया है; साहित्यका अर्थ भी प्रसारित हो गया है। साहित्य शब्द अब भी प्रधानतः पुराने अर्थोंमें ही लिया जाता है, फिर भी शेषोक्त वर्गकी अगर एक नयी द्व्यर्थशून्य संज्ञा हो तो अच्छा। शायद 'ललित साहित्य' नाम चल सकता है।

साधारण तौरपर रचनाकी प्रकृति या विषयके अनुसार रचनाकारका परिचय दिया जाता है, जैसे कवि, नाट्यकार, कहानीकार, इतिहास-लेखक, शिशु-साहित्य लेखक आदि। एक समय था जब लेखकको कभी-कभी जातिके

अनुसार विशेषित किया जाता था, जैसे, महिला कवि, मुसलमान कवि। लेकिन अब ऐसा सुननेमे नहीं आता। जीविकाके अनुसार भी लेखकोंको चिह्नित करनेकी रीति अब नही रही। बंकिमचन्द्र, अन्नदाशंकर और अचिन्त्यकुमारको हाकिम-साहित्यिकके वर्गमे और तारक गंगोपाध्यायको कॉनन डॉयल और वनफूलको डॉक्टर-साहित्यिकके वर्गमें नहीं डाला जाता।

जो ललित साहित्य लिखते है उनका अपना कोई विशेष मतवाद रह सकता है, लेकिन उसके लिए उन्हे किसी छाप-लगे दलवाला समझनेकी जरूरत नहीं। लेखक शाकाहारी भोजनके पक्षमे या फलित ज्योतिषमे विश्वासी हो सकता है, राजनीतिके क्षेत्रमे योगबलका हिमायती हो सकता है, विलायती सभ्यताका परम भक्त या सोवियत तन्त्रका एकान्त अनुरागी हो सकता है, लेकिन इन सब लक्षणोंके अनुसार ललित साहित्यका उत्कर्ष नहीं नापा जाता। लेखककी रचनामें उनकी व्यक्तिगत आस्थाका उल्लेख रह सकता है पर रस-विचारके समय उसे भी कोई खास महत्त्व नही दिया जाता।

उस जमानेकी तुलनामे आज ललित साहित्यकी विषयवस्तु बहुसंख्यक हो गयी हैं। स्वदेशी, राजद्रोह, सविनय-अवज्ञा, अगस्त विप्लव, तैतालीसका अकाल, स्वतन्त्रता-प्राप्ति और देशके बँटवारेसे सम्बन्धित हत्याकाण्ड, शरणार्थियोंकी दुर्दशा, देशव्यायी बेईमानी—सभी कुछ काव्य कहानी व निबन्धोंमे स्थान पा चुका है। सहृदय लेखक नर-नारियोंका साहस और वीरत्व देखकर मुग्ध हुए है, अन्याय देखकर क्षुब्ध हुए हैं, निर्यातन देखकर कातर हुए है, और विगत और वर्त्तमान घटनाओसे वीर, करुण, बीभत्स और भयानक रसोका उपादान लेकर अपनी उपलब्धिको उन्होंने साहित्यिक रूप दिया है। इस प्रकारको रचनाके साथ लेखकके राजनैतिक मतवादका कोई सम्बन्ध नहीं।

ललित साहित्यकी निरपेक्षता हालमें टूट गयी है। लगभग दस साल पहले फ़ासिस्त-विरोधी लेखक संघका उद्भव हुआ था। उसके कुछ दिनों

बाद कांग्रेस-साहित्य-संघ भी बना। कम्युनिस्ट लेखक व कलाकारोंका भी संघ हैं। हिन्दू महासभा, समाजवादी और प्रजा-पार्टी लेखक-संघ भी बनाने का प्रयास हो रहा है या नहीं, मालूम नहीं।

काव्य नाटक या कहानीका सहारा लेकर मत-प्रचारकी रीति नयी नहीं है। इस देशके बहुत-से प्राचीन काव्योंमे किसी खास-खास देवताका माहात्म्य प्रचारित हुआ है। 'टॉम काकाकी कुटिया' या 'नीलदर्पण' एक ही साथ ललित साहित्य और प्रचार-ग्रन्थ दोनों हैं। चेचकका टीका न लगवानेका परिणाम कितना भयानक हो सकता है यह राइडर हैगर्डने ब्रिटिश सरकार की फ़रमाइशपर लिखे एक उपन्यासमे दिखाया है। एमिल ब्रियोने यौन-व्याधिके बारेमे एक नाटक लिखा है। युरोप और अमेरिकाकी बहुत-सी कहानियों और नाटकोंमे सामाजिक तथा राजनैतिक मतवादोंका प्रचार है।

किसी काव्य नाटक या कहानीमें यदि किसी खास मतवादका समर्थन हो तो उसमे एतराज करनेका कोई कारण नही है। ललित साहित्यका लेखक अपने अवकाशके समय चाय, सिगरेट या केशतैलका विज्ञापन लिख सकता है या अपनी कहानीमे ही अहिंसा, कांग्रेस-निष्ठा, हिन्दू-राष्ट्रीयता या कम्युनिस्ट आदर्शकी प्रशंसा कर सकता है। चाहे लेखक हो या अलेखक, सभीको राजनैतिक-संघ, गोष्ठी या क्लब संगठित करनेका अधिकार भी है। लेकिन जो लोग मतवादका लेब्ल चिपकाकर लेखक-संघ बनाते है, साधारण व्यक्ति उन्हे जरा सन्देहकी दृष्टिसे देखते है: सोचते है इनकी आँखोंपर राजनैतिक धूल छा गयी है, ये लोग सत्यसन्ध निरपेक्ष दृष्टि खो चुके हैं।

राजनैतिक नाम देकर साहित्य-संघ बनानेका उद्देश्य ठीक-ठीक समझमें न आनेपर भी उसका कुछ-कुछ अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। साहित्य-सेवीका दलबद्ध होकर लेब्ल ग्रहण करना भी एक प्रकारका व्रत है। इन व्रतधारियोंका संकल्प है अपनी-अपनी रचनाओंके द्वारा यथासम्भव अपने दलके मतवादका प्रचार और विपक्षके मतवादका खण्डन करना। दल न

बनाकर भी ये लोग यह काम कर सकते थे, लेकिन संघका अनुशासन न रहनेपर एकनिष्ठ समक्रियता नहीं आती।

इस गठबन्धनके कारण प्रचारकी सुविधा हो सकती है। लेकिन ललित साहित्यके रचनाकार, पाठक और विचारकके लिए जो निरपेक्षता अति आवश्यक है वह लेब्लके कारण नहीं आ पाती। साहित्यमे विज्ञापनकी गन्ध आ जाती है, लगता है कि लेखककी कोई स्वतन्त्रता नहीं, वे दलके द्वारा नियन्त्रित हो रहे है। जो पाठक साम्यवादके अनुरागी है वे कांग्रेसी लेखक की रचनामे बुर्जुआ स्वार्थबुद्धि मात्र देख पाते है। जो कांग्रेसी पन्थके विश्वासी है उन्हे छाप-लगे कम्युनिस्ट लेखककी रचना दुर्बोध्य या दुष्ट अभिप्राय-युक्त ही लगती है। जो लेखक दलभुक्त न हो स्वतन्त्र रूपसे अपना मतवाद प्रकाश करते है वे पाठकोंसे ज्यादा सुविचार पाते है।

राजनीतिके अलावा और भी बहुत-से विषय है जहाँ दलगत विवाद नहीं है, जिनके साथ देशका कल्याण-अकल्याण अटूट रूपसे जुड़ा हुआ है, जिनका महत्त्व दूसरे विषयोंसे बहुत ज्यादा है। कालाबाजार, प्रतारणा, अमानविक स्वार्थ आदिके बारेमे बहुत कुछ लिखा गया है, लेकिन इसके अलावा भी छोटे-बड़े जितने पाप हमारे समाजमे महामारीकी तरह फैल रहे है उनके प्रतिकारके लिए सभी साहित्यिक कोशिश कर सकते है।

पहले सुना जाता था कि हमारे जातिगत जितने दोष है उनके मूलमे हमारी परतन्त्रता है, देश स्वतन्त्र होते ही सब दोष क्रमशः दूर हो जावेंगे; स्वतन्त्रता मिल गयी है पर दोष पहलेसे ज्यादा ही बढ़ते जा रहे है, जो पहले नही थे वे भी आ पहुँचे है। इस दोष-वृद्धिका एक कारण राष्ट्र-शासनमे हमारे अनुभवकी कमी है, पर उससे भी बड़ा कारण है विश्वभरमे युद्धसे जनमा विपर्यय। जो पाश्चात्य राष्ट्र बहुत दिनोंसे स्वतन्त्रताके आदी है उनका भी नैतिक पतन हुआ है, पर हमारे जैसा नही। दरअस्ल बात यह है कि हम कितना ही अपनेको धर्मप्राण कहकर गर्वका अनुभव करें, पर हमारा धर्मबोध यानी सामाजिक कर्त्तव्यबोध दीर्घ कालसे ही क्षीण है,

जितना-भर था भी वह युद्धकी चपेटमें आकर नष्ट हो गया है : अज्ञानी प्रभुत्वशक्ति और नयी-नयी व्यवस्थाओंकी सुविधा पाकर देशके कितने ही लोग निरंकुश स्वार्थी बन गये हैं, कितने ही ईमानदार व्यक्ति भी ग़रीबीके कष्टसे या दूसरोका दृष्टान्त देखकर बेईमान बन गये हैं।

हम सभीकी आँखोंके सामने रोज़-रोज जो अन्याय हो रहे हैं उसके विरोधकी आवश्यकता आज सभी राजनैतिक विवादोंके ऊपर है। कांग्रेस राजके बदले समाजवादी, हिन्दू महासभा, किसान-मज़दूर-प्रजा या कम्युनिस्ट शासन आते ही हमारा चरित्र सुधर जायेगा, ऐसा सोचनेका कोई कारण नहीं है। अपनी वर्त्तमान दुर्दशाके अधिकांशका उत्तरदायित्व हमींपर है, यह बात ठीक है, लेकिन जो दोष हमारे स्वभावका अंग बन गया है उसका इलाज हमारे ही हाथोंमे है, किसी भी सरकारमे उसे दूर करनेकी शक्ति नहीं है।

धर्मका अर्थ है समाज-हितकर विधि, धर्म-पालनका अर्थ है सामाजिक कर्त्तव्य-पालन। यह धर्मबोध लुप्त होते ही समाज व्याधिग्रस्त हो गया है, असंख्य बीभत्स लक्षण समाज-देहपर उभर आये है। धनपतिका तोषण, दरिद्रका शोषण, कालाबाज़ारका प्रसार, सरकारी अर्थका अपव्यय, ऊँचे वर्गका कलंक संशोधन आदि बड़ी-बडी घिनौनी करतूतोंकी बातें अनेक पत्र-पत्रिकाओंमे निकलती है और लोगोके मुँह भी फैलती रहती है। लेकिन जो अनाचार जनतामे फैल चुका है उसकी ओर खास ध्यान नहीं दिया जाता। कुछ उदाहरण दे रहा हूँ। बहुत लोग जान-बूझकर और बहुत लोग भेड़ोंकी तरह अनजानमे दुष्ट व्यक्तियोंको वोट देते हैं। जो व्यक्ति बुरे कार्योंके द्वारा धनी बना है उससे सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए कितने ही ईमानदार व्यक्ति भी लालायित रहते हैं। अमुक-अमुक तो बुरे काम करके धनी बन गये, तब तुम्हीं क्यों धर्मपुत्र युधिष्ठिर बनकर रहोगे !– इस तरहका उलाहना बहुत-से गृहस्थोंको अपने परिवारसे मिला करता है। रिश्वत देना और लेना हमेशासे था लेकिन अब हज़ार गुना बढ़ गया है। छात्र-वर्ग बग़ैर पढ़े ही

पास होना चाहता है और अपनी ताक़तसे ही डिक्टेटर बनना चाहता है। सरस्वती-पूजा और होलीके समय जो भद्दी उच्छृंखलता दिखायी पडती है उससे लगता है जैसे हम जंगली जातिके है। शहरके कितने ही रास्ते नैश-शौचालय बन चुके है। घरोंकी ऊपरी मंजिलोसे कागजमे लिपटा हुआ मैला अचानक रास्ता-चलतोंपर आ गिरता है। बम्बई और मद्रासके साथ कलकत्तेकी सड़कें बाजार और मिठाईकी दूकानें आदि मिलाकर देखनेसे ही स्पष्ट हो जाता है कि हमारा नगर-निगम कितना अक्षम है और नागरिकोंमे सफाईका बोध कितना कम है। जिन सब विशिष्ट व्यक्तियोंकी मूर्त्तियाँ देशवासियो द्वारा प्रतिष्ठित हुई है उनपर विज्ञापन चिपकाकर अपमानित किया जाता है। हमारा स्वयं इस तरफ ध्यान भी नही जाता, अगर एक दिन जब 'स्टेट्स्-मैन' अखबारमे इस अनाचारकी खबर छपती है तब हमे होश आता है। दवा और प्रसाधन-वस्तुओके आधार, विज्ञापनो-लेब्लोको खराब न करके भद्र गृहस्थ बडी सावधानीसे उठा रखते है और जालियोके प्रतिनिधि फेरीवालोके पास जा-जाकर उन्हे कुछ ज्यादा दामोमे बेचते है। जाल, बनावट और नक्काली दिनों-दिन बढती ही जा रही है। अन्य अधिक घिनौनी करतूतोकी तुलनामे ये उदाहरण शायद मामूली हो किन्तु इन लक्षणोसे ही समझा जा सकता है कि समाज सिरसे पैर तक व्याधिग्रस्त हो चुका है।

अपनी अक्षमताके लिए हम अब भी अंग्रेज, केन्द्रीय सरकार और अन्य प्रान्तवालोको गालियाँ देकर सोच लेते है कि हमारा कर्त्तव्य पूरा हो गया। बचपनमे एक देशप्रेम-मूलक कविता पढी थी, उसकी सिर्फ़ पहली पंक्ति याद है : "महापापी शाबुद्दीन राहुग्रासे जेइ दिन।" इसके आगेकी पंक्तियोका भावार्थ है : उस राहुग्रासके उपरान्त ही भारतका सुखसूर्य अस्त-मित हुआ। शहाबुद्दीन महापापी हो सकता है लेकिन आत्मरक्षामे असमर्थ एकताहीन भारतवासियोंका पाप कितना बड़ा था, यह लेखकने नहीं लिखा। कुछ साल पहले भी हमारी रक्षाका भार विदेशियोके हाथोमे था, अब हम भारत सरकारपर अपनी रक्षाका भार छोड़कर निश्चिन्त बने बैठे है।

आत्मरक्षा तो हर एकको सीखनी होगी, हमारी शक्तिसे ही सरकारकी शक्ति है—यह सत्य अभी देशवासियोंकी समझमें नहीं आया। हमारी जो ख्याति है वह प्रतिघात-समर्थ शान्त अहिंस वीरोंकी ख्याति नहीं, कायरोंकी ख्याति है। हिन्दू बड़ा निरीह है, मार खाना ही जानता है, बंगाली रोना ही जानता है—तर्क या बहसके द्वारा इन झूठे लांछनोंको दूर नहीं किया जा सकता, अपने आचरणके द्वारा ही उनका खण्डन करना होगा।

व्यक्तिगत राजनैतिक मत कुछ भी हो, हमारे सभी लेखक अपनी रचनाओंके द्वारा देशव्यापी मोह, आलस्य और बुरी प्रवृत्तियोंको दूर करनेका प्रयास कर सकते हैं। इस समय इससे बड़ा व्रत और कोई नहीं है। कुछ लोग राजनीतिको लेकर वितण्डा करें तो भले ही करें, पर राजनीतिसे भी मानवता और समाजधर्म बड़े हैं। देशके साहित्यिक सामाजिक कर्त्तव्य-बुद्धि जागृत करनेकी कोशिश करें। हमारी आवश्यकता है हैरियट बीचर स्टो और दीनबन्धु मित्रके समान अनगिनत लेखकोंकी जो सामाजिक पापोंके खिलाफ़ जनताको उत्तेजित कर सकते हों। दो-तीन साल पहले शरदिन्दु वन्द्योपाध्यायने एक छोटे-से लेखमें विलासी बंगालियोंको कुछ कड़ी-कड़ी बातें सुनायी थीं। प्रमथनाथ विशीकी भी ऐसी ही एक रचना कहीं पढ़ी है। हालमें कविशेखर कालिदास रॉयने वर्त्तमान अविनय, असंयम और असामाजिकताके बारेमें एक सार्थक निबन्ध लिखा है। निबन्ध प्रधानतः विद्यार्थी और अल्प-वयस्कोंके उद्देश्यसे ही लिखा गया है पर उनके हलके बेंत आबालवृद्ध वनिता, हम सभीकी पीठपर पड़े हैं।

# मिलावटी और नक़ली

नन्द ग्वाला दूधमे खूब पानी मिला रहा है। कुछ कहनेपर ऐसा मुँह बनाता मानो आसमानसे गिरा हो और धोरेसे जवाब देता, "अरे आप भी क्या कहते है बाबू ! आप पुराने गाहक हैं, आपको भी क्या ठग सकता हूँ ? इससे तो पाप ही होगा।"

मै बोला, "सुनो नन्द, दूधमे थोड़ा-बहुत पानी रहनेपर तो मैं कुछ नही कहता, पर अब बहुत ज्यादती करने लगे हो। तुम्हारे साथ मेरा बहुत दिनोंका सम्बन्ध है। सच्ची बात जो हो, कह डालो।"

नन्द सज्जन है। सिर खुजलाते हुए बोला, "जी, सेर पीछे आधा पाव पानी मिलाता हूँ, बम्बेका साफ पानी। मुझसे आपके साथ बेईमानी न की जा सकेगी।"

"नन्द, सचकी तरफ़ थोडा और बढ़ो।"

"जी, पाव-भरसे तो ज्यादा पानी किसी दिन नही मिलाता, गलेकी इस कण्ठीकी क़सम।"

लगा कि नन्दने इस बार सच कहा है। पूछा, 'बिलकुल ख़ालिस दूध किस भाव दे सकते हो ?"

"जी, रुपयेमे तीन पाव।"

"हमेशा ख़ालिस ही देते रहोगे न ? हाथ तो नहीं खुजलायेगा ?"

"वह कैसे कहूँ हजूर ? बीच-बीचमे थोड़ा-बहुत पानी भी न मिलानेसे कैसे चलेगा—ग़रीब आदमी जो हूँ !"

"अच्छा, अगर सरकार क़ानून बना दे कि दूधका दाम जितनी मरजी बढ़ा सकते हो, पर पानी क़तई नहीं मिला सकोगे, मिलानेपर भारी जुर्माना या जेलखाना भरना होगा, तो क्या करोगे ?"

"तब तो अच्छा ही होगा बाबू । रुपयेमे आधा सेर बेचूँगा, हमारा मुनाफ़ा बढ़ेगा ।"

"लेकिन नामीसे नामी डेयरीका खालिस दूध तो रुपयेमे एक सेर मिलता है ।"

अवहेलनाकी मुसकराहट बिखेरता हुआ नन्द बोला, "खालिस कहाँ, भैंसके दूधमे पानी मिला दिया जाता है !"

"अच्छा, रुपयेमे आधा सेर होनेपर तो पानी नही मिलाओगे और ?"

नन्द गरदन झुकाये मुसकराता रहा ।

"जो सचमुच जी मे हो तो कह डालो नन्द ।"

"तो सुनिए बाबू, मौका-महल देखकर पानी तो मिलाना ही पड़ेगा ! यही रोजगारका दस्तूर है । फिर इन्स्पेक्टरको खिलाना होता है, बीच-बीचमे जुर्माना भी देना पडेगा । बाल-बच्चेदार ग़रीब आदमी हूँ, ये सब खर्च भी तो भरने है !"

अब मामला कुछ-कुछ समझमे आया । रोजगारके दस्तूरके मुताबिक ग्वाला सनातन-प्रथा बनाये रखते पानी मिलायेगा ही । कितने भी इन्स्पेक्टर रहे, शहर-भरके दूधकी जाँच करना नामुमकिन है । बीच-बीचमे कभी मिलावट पकडी जायेगी, तब इन्स्पेक्टरको खुश करना होगा और वह नाराज हो जाये तो जुर्माना भी करना पडेगा । इसलिए इन सब सम्भावनाओको पूरा करानेके लिए पानी मिलाना ही पड़ेगा । दर बढाने या क़ानून बनाने या बहुतसे इन्स्पेक्टर रखनेपर भी हमेशा जलहीन दूध नही मिलेगा । जो भाग्यवान् अपने सामने दूध दुहा ले सकते है उनकी बात अलग है ।

शिवराम पाँड़े कभी हमारे घर रसोई बनाया करता था, अब स्वाधीन व्यापार करता है । एक दिन एक टीन लाकर बोला, "बाबूजी, बढ़िया भैंस का घी मँगवाया है, सस्ता भी है, छह रुपया सेर, ले लीजिए ।"

घी काफ़ी सफेद और कडा था, थोडी-थोडी गन्ध भी थी। पूछा, "कितनी मिलावट है इसमे ?"

"वनस्पति ? अरे राम राम !"

"सुनो पाँड़े, तुम चुटिया रखे हुए हो, जनेऊ भी है, गलेमे रुद्राक्षकी माला और माथेपर तिलक भी है। झूठ मत बोलो, पाप लगेगा।"

शिवरामने हँसते हुए कहा, "गाँवसे मँगाया है बाबूजी, ग्वालेने क्या किया है सो तो मालूम नही। यो वह भला आदमी है, सेरमे आधा पाव से ज़्यादा नही मिलायेगा।"

"तुमने उसके बाद कितना मिलाया ?"

"सच बात बता रहा हूँ बाबू, मैने सेरमे पाव-भर मिलाया है।"

"सूरत और बू-बाससे तो लग रहा है कि साढे तीन पावसे ज़्यादा मिलावट है। ऐसा घी मैं खुद भी बना सकता हूँ, उससे सवा तीन रुपये मे सेर-भर बन जायेगा।"

"अरे छी-छी ! आप मिलावटी घी बनाइएगा ?"

"क्यों क्या बुरा है ! बेचूंगा तो नही, जान-बूझकर खुद ही खाऊँगा।"

दूध-घीका कालाबाजार नही होता, मिलावट करके ही मुनाफा कमाना पडता है। नक़ली दूध अभी तक आविष्कृत नही हो सका है, इसलिए असलीमे भरसक पानी ही मिलाया जाता है। घी नकली बन सकता है, लेकिन शिवराम पाँड़ेमें विद्याकी कमी है इसलिए उसकी मिलावट आसानीसे पकडी जा सकती है—स्वाभाविक घीका रंग नही, जमावट ज़्यादा है, और गन्ध बहुत कम। पहले जब चर्बीकी मिलावट चलती थी तब रूप और रंग खालिस भैंसके घीसे काफी मिलता-जुलता रहता था। अब घीके कारबारी लोग जरा नरम जमाया हुआ तेल ( हाइड्रोजेनेटेड ऑएल )मे पीला रंग और रासायनिक गन्ध मिलाकर बेचते है। घीका एसेन्स बाजारमे ढूँढ़ते ही मिल जायेगा। उसकी गन्ध बड़ी तीखी है,

कुछ-कुछ सड़े घी-जैसी, सेर-भरमे चन्द बूँदें डालकर ही आम गाहकको ठगा जा सकता है। सरसोंके तेलका एसेन्स और भी बढ़िया है, राई-सरसोंकी तरह ही उसमे बेहद झाल होती है। मूँगफली, तिल, अलसी—जो तेल जिस समय सस्ता हो उसीमे थोड़ा-सा एसेन्स डाल देनेसे काम बन जाता है। जिनकी हिम्मत ज्यादा है वे इससे भी सस्तेमें निबटते है : अपाच्य पैराफ़िन या मिनरल ऑएलमे एसेन्स मिलाकर बेचते है।

बीच-बीचमे अखबारोमे छपता है कि मिलावटी घी या तेल बेचनेपर अदालतने फ़लाँ-फ़लाँ आदमियोंपर जुर्माना किया है। जिनके नाम छपते है वे ज्यादातर अदना दूकानदार होते है। जो लोग बडे कारबारी है उन्हे कभी-कभार सज़ा मिल भी जाती हो पर उनका नाम नही छपता। रिपोर्टरको ठण्डा करना वे जानते है। अगर सभी सजायाफ़्ता लोगोंके नाम सरकारी विज्ञापनों-द्वारा नियमित रूपसे प्रकाशित किये जायें तो बदनामी होने और गाहकी चली जानेके डरसे बनावटी मालके कारबारी कुछ काबूमे आ सकते है। अगर सरकारी अधिकारी इतना-भर इन्तज़ाम नही कर सकते तो लोग उनपर भी शक करेंगे।

राशनमे जो विदेशी मैदा मिलता है वह हमारे चिर-परिचित मैदेसे मेल नही खाता, लूची-पूरी बेलते वक़्त रबड़-जैसा फैल जाता है। क्या यह स्थितिस्थापकता कनाडा—ऑस्ट्रेलियाके मैदेका स्वाभाविक धर्म है या उसमे की गयी कुछ मिलावटके कारण ऐसा होता है? आम जनताका शक दूर करना अधिकारियोंका कर्त्तव्य है। क्या आटा सिर्फ़ गेहूँ-जौके मिश्रणसे बनता है या कोई अन्य अनाज भी उसमे मिला रहता है? राशन के आटेमे भूसेकी मात्रा बहुत ज्यादा है। कहाँसे आता है वह? चावलके साथ छोटा-छोटा इतना कंकड़-पत्थर और भूसा भी मिलता है कि उसे स्वाभाविक नही कहा जा सकता। यह मिलावट कहाँ होती है उसकी खबर सरकारी अधिकारी अवश्य रखते है। क्या वे इसका प्रतिविधान करनेमे असमर्थ है, या वज़न बढ़ानेके हेतुसे इस मिलावटपर एतराज़ नही

करते ? बहुत-सी राशनकी दूकानोंमे अच्छे चावलके बोरे आड़मे रहते है, खास-खास खरीदारोंको ही वह दिया जाता है ।

कुछ बरस पहले किसी आटेकी मिलमे ढेर सारा सोप स्टोन मिला था, कई गाड़ी इमलीका चिआँ भी एक बार पकड़ा गया था । ये सब खबरें आडम्बरके साथ अखबारोंमे छापी जाती है । लेकिन उसके बाद एकदम चुप्पी ! आगेकी जाँच-पडताल सम्बन्धी खबर देनेसे क्या नुकसान होता ? अफ़वाहोंपर लोगोकी असीम आस्था है । बच्चे पकडनेवाले, सिल-बट्टेवाली चेचक, मिट्टीके तेलमे पानी, बम्बेके पानीमे सॉप आदि विभिन्न प्रकारकी अफ़वाहोसे लोग बिगड़ खडे होते है, खाद्यके बारेमे तो जनताको निश्चिन्त करना सरकारका आवश्यक कर्त्तव्य है ।

आये दिनके इस्तेमालकी कितनी ही चीजें नकली या मिलावटी होती है । मौसम न हो पर बाजारमे ढेरों हरे मटरके दाने बिकते है । सूखा मटर हरे रंगमे डुबोकर बोरोंमें भरकर रखा जाता है । थोकदार वह रंगीन मटर आढ़तसे खरीदता है और जरूरतके मुताबिक़ पानीमे भिगो और फुलाकर उसे बाज़ारमे बेचा करता है । अज्ञ लोग उसे हरे मटरके ताजे दाने समझकर खरीदते हैं । जो रंग दिया जाता है वह निर्दोष है या ज़हर, इसके बारेमे कोई नहीं सोचता । म्युनिसिपैलिटी उदासीन है और मार्केटके अध्यक्षोंके सामने तो यह अपवस्तु बिकती ही है ! मिठाइयों मे भी विभिन्न प्रकारके रंग रहते है, वे निर्दोष है या नहीं यह भी देखा नहीं जाता । अगर हलवाईसे पूछो कि रंग क्यों देते हो, तो वह जवाब देगा—खरीदार रंग न रहनेपर खरीदता जो नहीं ! निर्बोध खरीदार सोचता है कि रंगका होना ही दस्तूर या फ़ैशनके अनुसार है । पाश्चात्य देशोंमे खाद्य पदार्थोंमे देनेके लिए कुछ खास-खास निर्दोष रंगोंका विधान है, उनसे भिन्न रंग देनेपर सज़ा मिलती है । इस देशमे जबतक ऐसी व्यवस्था नहीं होती तबतक खाद्य पदार्थोंमें रंग देना ही एकदम बन्द कर देना चाहिए ।

सरकारी और म्युनिसिपल अधिकारियोंको चाहिए कि बार-बार विज्ञापन प्रकाशित करके जनताको होशियार कर दें।

चायकी दूकानों या होटलोंमे इस्तेमाल की हुई चायकी जितनी भी पत्ती होती है वह सब इकट्ठा सुखाकर अच्छी पत्तीके साथ मिला दी जाती है। इलायची, लौंग, दालचीनी आदि सत ( एसेन्शल ऑएल ) निकालने के बाद ही बाजारमे आने दी जाती है। सबसे ज्यादा मिलावट और नकल दवाओंमे चल रही है। क्वीनीन, एमेटोन, ऐड्रेनालीन आदिका लेब्ल लगी जाली दवाओंसे बाजार पट गया है। शीशी-बोतलवाले नामी-नामी देशी और विलायती दवाओं और प्रसाधन-सामग्रीकी खाली शीशी और डब्बे कुछ ज्यादा दाम देकर गृहस्थोंके घरसे खरीद ले जाते है। और जाल करनेवाले उन्हीमे राख-मिट्टी भरकर बेचते है। बहुतसे भद्र गृहस्थ तो जान-बूझकर इस पाप-व्यवसायमे सहायता करते है। पाकिस्तानमे भी यह रोज़गार बे-रोकटोक चल रहा है।

मिलावट या नकल इस देशमे नयी नही है। देशी विक्रेताओंपर हमारी इतनी अनास्था है कि बहुत-से क्षेत्रोंमे खालिस चीजके लिए हमे सीधे साहबी-दूकानोंमे जाना पडता है। इस जातिगत नीचतासे हम ग्लानिका बोध नही करते। युद्धके बाद और स्वतन्त्रता-प्राप्तिके साथ-साथ तो देशमे जो महा-कलजुग आरम्भ हुआ है उसमे सभी प्रकारकी दुष्क्रियाएँ बढ गयी है। इसका सम्पूर्ण प्रतिकार सरकारके बूतेका नही। जनतामे अधिकाशको सामाजिक कर्त्तव्य-बोध कम है, और एक-जुट होकर अन्यायके विरुद्ध खड़े होनेका तो उत्साह किसीमे नही। इधर हमारे देशमे बड़े-बड़े दिलेरोका उद्भव हुआ है। ये लोग ट्रैम-बस जलाते, बम-पटाखे फेंकते, पुलिसको पीटते, जाने-माने लोगोपर हमला करते, मजदूरो और स्कूल-कॉलेजके लड़के-लड़कियोंको भड़काते है; मगर मिलावट, नक़ल, जाल-फ़रेब और कालाबाज़ार आदि दुष्कर्मोके बारेमे बिलकुल विकार-शून्य रहते है।

महज अशान्तिका प्रसार ही जैसे इनका काम्य हो।

कोई भी अनाचार जब देशव्यापी हो जाता है और जनता उसे विना विरोधके मान लेती है तब कुछ समाज-सुधारकोंके प्रयाससे ही उसका प्रतिकार आरम्भ हो सकता है। सतीदाह-निरोध, स्त्री-शिक्षा प्रवर्त्तन, परतन्त्रताका विलोप आदि इसी ढंगसे हुए है। मिलावट और नकल रोकने के लिए भी कुछ निःस्वार्थी उत्साही व्यक्तियोंकी जरूरत है। वे अगर प्रचार-द्वारा जनताको उद्‌बोधित करें और खालिस वस्तु वेचनेके लिए सहकारी-भण्डार खोलें तो दाम कुछ ज़्यादा होनेपर भी क्रमशः आम जनताका सहयोग पायेंगे। उनके प्रभावसे दूसरे व्यापारी भी अपना रवैया बदलनेको बाध्य होंगे।

अकालके समय विश्वामित्र भी प्राणरक्षाके हेतु कुत्तेका मास खाने गये थे। हम लोग जिन अनाजोंके आदी है उनकी कमी होनेपर एवजीकी खोज करनी ही पड़ेगी, निकृष्ट खाद्यपर सन्तोष करना ही पड़ेगा। जन-साधारण नासमझ है, अनभ्यस्त खाद्यकी ओर सबकी प्रवृत्ति आसानीसे न होगी। इसलिए जो लोग धनी और ज्ञानी है उनका कर्त्तव्य यह है कि वे नया और निकृष्ट खाद्य स्वयं खायें और इस प्रकार जन-साधारणको प्रोत्साहित करें। सरकार ऐसे खाद्योंकी उपयोगिताका प्रचार करे, लेकिन कोई अत्युक्ति न करे न कुछ झूठ कहे, वरना नतीजा उलटा ही होगा। झूठे प्रिय वाक्योंसे अप्रिय सत्य अच्छा है। कई बरस पहले किसी खाद्य-विशारदने आश्वासन दिया था कि शीघ्र ही घाससे एक सस्ता और पुष्टिकर खाद्य बनाया जायेगा। सरकार अगर इसके विवेचनाशून्य प्रचार-को प्रश्रय देती है तो जन-साधारणकी श्रद्धा खो बैठेगी। चावल-आटा दुर्लभ होनेपर लाल आलू और टैपिओका आदिकी उपयोगिताका प्रचार करना होगा; साथ ही यह भी बताना पड़ेगा कि चावल या आटेके समान पुष्टिकर न होते भी इन खाद्यों-द्वारा जीवनकी रक्षा हो सकती है, इनसे

स्वास्थ्य खोनेकी शंका नही है, और खर्च कुछ ज़्यादा पड सकता है पर इस दु:समयमे और कोई चारा भी नही।

हालमे ही एक सरकारी खबर प्रकाशित हुई कि किसी लैबॅरेटरीमे भुट्टा टैपिओका आदिसे सिन्थेटिक चावल बनानेका प्रयास सफल हुआ है। आजकल कृत्रिम उपायोंसे बहुत-से रासायनिक द्रव्य बनाये जा रहे है। जैसे नील ( इण्डिगो ), कपूर, मेन्थॅल। लेकिन रासायनिक या अन्य किसी कृत्रिम प्रक्रियाके द्वारा कोई अनाज, फल या प्राणी बनाना अब भी विज्ञान के लिए असम्भव है। आँवलेसे आम या मेढकसे मछली बनाना जैसे असंभव है, भुट्टा या टैपिओकासे चावल बनाना वैसे ही असम्भव है। सरकार ने जिस वस्तुके बारेमे कहा है उसे सिन्थेटिक राइस कहनेपर सत्यका लंघन होता है, वह है इमीटेशन राइस या नकली चावल—जैसे सोनेकी नक़ल केमिकल सोना। टैपिओकासे जिस तरह नक़ली साबूदाना बनाया जाता है, मुमकिन है उसी पद्धतिसे चावलकी तरहके दाने बनाये जा रहे हो और प्रोटीनकी मात्रा पूरी करनेके लिए शायद मूँगफलीका चूरा भी उसमे मिलाया जा रहा हो। देखनेमे चावल-जैसा होनेपर ग़रीबोको भरमाया जा सकेगा, खानेसे पेट भी भरेगा, लेकिन इस वस्तुका गुण तो चावलके समान न होगा। सरकारी प्रचारमे असावधान उक्तिको एकदम छोड़ना होगा। 'सत्यमेव जयते'—इस राष्ट्रीय मन्त्रकी कभी मर्यादा हानि न हो।

# रवीन्द्र परिवेश

जिन्दगीके दौरानमे किस्म-क़िस्मकी चीजोकी जरूरत पड़ती है पर सिर्फ़ आवश्यकताके कारण ही हम उन्हे मर्यादा नही देते। जिन सब वस्तुओंको हम बहुत जरूरी समझते है उनके उद्भावक या निर्माता महा-प्रतिभावान् होनेपर भी हमारे लिए परोक्ष है, वे एकदम ओटमे ही रह जाते है, भोग करते समय हम उनके बारेमे सोचते भी नहीं। रेलगाड़ी न होनेसे हम लोगोका काम नहीं चलता, लेकिन गाडीपर सवार होकर कितने लोग उसके प्रवर्त्तक स्टीवेन्सनकी याद करते है ? दूसरी ओर, जो वस्तु स्थूल सासारिक मामलोमे अनावश्यक है लेकिन आनन्द देती या रसोत्पादन करती है, जिसके रचयिता रचनाके साथ एकांगी बने रहते है, उसके भोगके साथ-ही-साथ हम रचयिताका भी स्मरण करते है, रचनासे रचयिताका तनिक भी बिछोह नहीं सह पाते। यन्त्रका रद्दो-बदल बिना विरोधके हो सकता है क्योकि यन्त्रके साथ हमारा केवल स्थूल स्वार्थका सम्बन्ध है, लेकिन कवि या चित्रकारकी रचनाओंके साथ हमारे हृदयका सम्बन्ध है इसलिए ऐसी स्पर्धा किसीमे नहीं होगी कि उनके ऊपर क़लम चलायें।

रस-सर्जन और रस-स्रष्टाका यह जो अंगांगीभाव है इसमें भी तहे है। जितना ही अधिक रचयिताका परिचय हमे होता है, उसकी रचनाके साथ उतने ही गहरे सम्पर्ककी उपलब्धि हम करते है। जिन्होने वेद-बाइबिलकी रचना की है वे अति दूरके नक्षत्रोके समान अस्पष्ट है, उनका परिचय सिर्फ विभिन्न ऋषियों और प्रॉफ़ेट्सके नामके रूपमे है। वेद-बाइबिल अपौरुषेय है क्योकि उनके रचयिता अज्ञातप्राय है। वाल्मीकि-कालिदासके बारेमे किञ्चित् किंवदन्तियाँ है इसी लिए पाठ करते समय हम उनका स्मरण

करते है। शेक्सपीयरके बारेमे जो तथ्य मिला है उसीके सहारे पाठक उन्हे अपना आदर निवेदित करता है, हालाँकि वे उस नामसे ख्यात इन नाटकोके रचनाकार है या नही इसका वितर्क अभी चल ही रहा है। लिओनार्दो दा विंचीके बारेमे लोगोंका जितना ज्ञान था वह कुछ समय हुए उसकी एक नोटबुक प्राप्त हो जानेके बाद काफ़ी बढ गया है, अब उसके द्वारा अंकित चित्रोंके साथ उसकी अज्ञातपूर्व बहुमुखी प्रतिभाके इतिहासने जुड़कर उसके व्यक्तित्वको और उभार दिया है।

रवीन्द्रनाथका परिचय हम लोग जितना और जिस प्रकारसे जानते है, किसी और रचयिताका परिचय किसी देशके लोग उसी ढंगसे जानते है या नहीं, इसमे हमे सन्देह है। हमारा यह परिचय केवल उनके साहित्य, सगीत, चित्र या शिक्षायतन तक ही सीमित नहीं, बल्कि हम उनके आकार, उनकी प्रकृति, उनके धर्म-कर्म, अनुराग-विराग, सभीसे परिचित है और आनेवाली पीढ़ियाँ भी जानेंगी। इस सर्वांगी और सप्रेम परिचयके कारण उनकी रचना और व्यक्तित्वका जो संश्लेषण हुआ है वह विश्वमे दुर्लभ है।

युरोप-अमेरिकामे ऐसे बहुत-से लेखक है जिनके ग्रन्थोकी बिक्रीका ओर-छोर नही है। लेकिन उनकी रचना जितनी मात्रामे जनप्रिय है वे स्वयं उतनी मात्रामे जनहृदयोमे स्थान नहीं पा सके है। बायरनके अनगिनत भक्त थे, उसकी वेष-भूषाकी नक़ल भी खूब की जाती थी, लेकिन उसके भाग्यमे प्रीति जैसे लिखी ही न थी। बर्नार्ड शॉ किताबें लिखकर काफ़ी धन और असामान्य ख्याति कमा चुके है। वे अशेष कुतूहलके पात्र बने; लोग उनके नामसे सच्चे-झूठे किस्से तक बनाकर उन्हे सम्मानित करते रहे; लेकिन वे जनवल्लभ न बन सके।

इस देशमे एकाधिक धर्मनेता और जननेता यश और प्रीति एक ही साथ कमा सके, जैसे चैतन्य, रामकृष्ण, महात्मा गान्धी। लेकिन नेता न बनकर भी जन-हृदयपर देवताका आसन मिल सकता है यह सिर्फ रवीन्द्रनाथ-द्वारा ही प्रत्यक्ष हो सका है। केवल रचना-प्रतिभा या कर्म-

साधनाके-द्वारा यह घटना सम्भव नहीं हुई, लोकोत्तर प्रतिभाके साथ-साथ महानुभावता और कान्तगुणने मिलकर उन्हे देशवासियोंके हृदयासनपर बिठाया। इस देशमे उन्हे जो मिला वह सूखा सम्मान नही, यथार्थ रूपसे पूजा ही थी।

गुरु कहनेपर सामान्यतया हम जो समझते है—यानी मन्त्रदीक्षादाता—उसके लिए जिन बाह्य और आन्तरिक लक्षणोंकी आवश्यकता है वे सभी उनमे पर्याप्त मात्रामे थे। लेकिन जिन्होने यह लिखा है—"इन्द्रियोके द्वार बन्द कर योगासन वह मेरा नही"—उनके लिए मामूली गुरु बनना असम्भव है। जो अगुह्य मन्त्र उन्होने देशवासियोको दिया उसकी साधना योगासनमे बैठकर जप करनेसे भी नही होती और भक्ति-विह्वल होनेपर भी नही, इसलिए वे प्रशस्त अर्थमे अगणित भक्तोके गुरुदेव है। उनके लोकचित्त-विजयका इतिहास अलिखित है पर अज्ञात नहीं। कृती गुणीको उत्साह देकर उन्होने दक्षतर बनाया है, भीरु निर्वाक् अनुरागीको सप्रेम बुलाकर अभयदानसे उसे मुखर बनाया है, भक्त प्राकृत जनको बोधगम्य सरस वार्तालापसे कृतकृत्य किया है। मूढ अमूयक उनके सौजन्यसे पदानत हुए है, क्रूर निन्दक उनकी नीरव उपेक्षासे लुप्त हो गये है।

बुद्ध-चैतन्य आदिपर काल-क्रमसे देवत्वारोप हुआ। कालिदास केवल कवि ही है, फिर भी उन्हे छुटकारा न मिला, किंवदन्तियोने उन्हे वाग्देवी का साक्षात् वर-पुत्र बना दिया। रवीन्द्र चरितका भी यही परिणाम होगा ऐसी आशंका नहीं करता। सभी प्रकारकी अतिकथाओके विरुद्ध वह जो कुछ लिख गये है वही अमानवतासे उनकी रक्षा करेगा।

रवीन्द्र-रचना अति विशाल है, रवीन्द्रके बारेमे जितने साहित्यकी रचना हुई है वह भी कुछ कम नहीं—समयके अतिक्रमके साथ-साथ वह और भी बढ़ेगा। कविसे जिनका भेंट या परिचयका सम्बन्ध हुआ उनमे-से कितने ही अभी बरसों जियेंगे, उनके द्वारा रवीन्द्र-तत्त्व विवर्धित ही होगा। इसके अलावा कविके सहस्रो पत्र, असंख्य प्रतिकृति, स्वरचित अनेक चित्र

बिखरे पड़े हैं, उनके गीतोंसे समूचा देश प्लावित है, उनका कण्ठस्वर भी यन्त्रधृत होकर स्थायित्व पा चुका है। इन सबकी समष्टिसे और उनके स्वरचित भारतोक्षेत्रसे जिस विशाल रवीन्द्र-परिवेशका सर्जन हुआ उससे रवीन्द्र-रचनाके साथ रवीन्द्र-आत्माका निविड़ संयोग अक्षय बना रहेगा। उस महान् अज्ञातकी ओर प्रस्थान कर जानेपर भी वे हमारे निकट चिर-काल जीवितवत् प्रत्यक्ष रहेंगे। ऐसी अमरता बहुत कम लोगोंके भाग्यमें मिल सकी है।

# ईसाई आदर्श

मित्रराष्ट्र किस महाप्रेरणासे प्रेरित होकर युद्धमे लड़ते रहे इसका ब्योरा बीच-बीचमे ब्रिटिश नेताओंके मुँहसे सुननेको मिला है। उन्होने बहुत बार दोहराया है कि हमारा उद्देश्य "क्रिश्चियन आइडियल्स' की प्रतिष्ठा करना है। कितने ही गैर-ईसाई भी ब्रिटेनके पक्षमे थे, जैसे चीन, भारत, मिस्र, अरब। रूसके प्रधान भी ईसाई-धर्म नही मानते। इस ईसाई आदर्शका विरोध एक बार विलायतके मुसलमानोकी ओरसे हुआ। लेकिन उससे बहुत पहले ब्रिटिश युक्तिवादी और नास्तिक सम्प्रदायवाले अपनी आपत्ति जोरदार ढगसे जाहिर कर चुके है।

ईसाई आदर्श कहनेपर अगर ईसाका उपदेश समझा जाये तो उसमे कौन-सा नया विषय है जो उनसे पूर्व किसीने नही कहा? यहूदी, बौद्ध, हिन्दू या इस्लाम धर्ममे क्या नीतिवाक्य नही है? विलायत, अमेरिका या रूसमे जो लोग ईसाई धर्म नहीं मानते उनमे क्या उच्च आदर्श नहीं है? 'ईसाई आदर्श' शब्दसे भौंरेके छत्तेपर चोट की गयी है। अब ब्रिटिश नेता अटकते-हकलाते कह रहे हैं: "हमारा कोई बुरा इरादा नही है, तुम लोगोंके यहाँ भी ऊँचे-ऊँचे आदर्श हैं जिन्हे ईसाई आदर्शोंसे घटिया हमने कभी नहीं कहा, 'ईसाई आदर्श' नाम लेनेसे सभी सम्प्रदायोकी उच्चतम धर्म-नीतियाँ उसमे आ जाती हैं।" यह नहीं कहा जा सकता कि विरोधी लोग इस व्याख्यासे सन्तुष्ट हुए या नहीं, लेकिन 'ईसाई आदर्श'का तो एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है।

गौतम बुद्ध बौद्ध नहीं थे और ईसा मसीह भी ईसाई नहीं थे। जो लोग धर्म-प्रवर्त्तक हुए उनके तिरोधानके बाद धीरे-धीरे बहुत दिनों तक धर्म-सम्प्रदाय गठित होता रहता है और परिवर्त्तन भी क्रमशः होता रहता

है ! अन्तमे मठाधीश प्रचारक, पुरोहित और लोकाचारके द्वारा धर्म शासित होने लगता है ओर जो लोग आदि-प्रवर्त्तक थे उनका नाम-भर रह जाता है । विलायतमे भी ऐसा ही हुआ है । 'ईसाई आदर्श' का अर्थ 'ईसा-कथित मार्ग' नहीं, 'आधुनिक प्रोटेस्टेण्ट धनी समाजका आदर्श' है । वह आदर्श क्या है ? पिछले दो-सौ सालमे विलायतमे जो समृद्धि हुई है वह इस प्रोटेस्टेण्ट समाजके उद्यमसे ही हो सकी है, हालाँकि इस समृद्धिका कारण प्रोटेस्टेण्ट धर्म नहीं है जैसे इस देशकी पारसी जातिकी धनाढ्यता उसके जरथुस्त्रीय धर्मके कारण नही । ब्रिटिश साम्राज्यका जिन लोगोने विस्तार किया है और अपने देशमे बडे-बडे कारखाने खोलकर देश-देशान्तरोको मालका निर्यात करके जो धनशाली बने है, देवयोगसे वे प्रोटेस्टेण्ट है—खासकर इग्लैण्डका ऐंग्लिकन और स्कॉटलैण्डका प्रेस्बिटेरियन समाज । धनके साथ-साथ राजनैतिक शक्ति भी आती है : इस कारण ये दोनों समाज ही विलायतमे प्रबल है । ये लोग चर्चके पोषक है, चर्च भी इनकी आज्ञा का पालन करता है । गीतामे है :

"देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्ति वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥"

यज्ञके द्वारा देवताओंको तृप्त करो, वे देवता भी तुम्हे तृप्त करेंगे; परस्परको तृप्त करके परम श्रेय प्राप्त करो ! विलायतके देवताओने विलायत-वासियोको ऐश्वर्य देकर तृप्त किया है, विलायतके लोग भी उनके याजक संघको सरकारी और ग़ैर-सरकारी सहायताओं-द्वारा तृप्त करते है । वे सिर्फ़ तृप्त ही नही करते, परोक्ष रूपसे उनपर हुक्म भी चलाते है । जिस प्रकार पार्लमेण्ट धनियोंकी मुट्ठीमें है, उसी प्रकार चर्च भी है । पादरी लोग धनिकोके इशारेपर चलते है और निरंकुश राजाको हटानेका विधान देते है, कम्युनिस्टोंको शैतानके प्रभावमे कहकर विरोधी-प्रचार करते है, अधीर होते दीनों-दरिद्रोंको स्वर्गराज्यका आश्वासन देकर शान्त बनाये रखनेकी कोशिश करते है, अधीन दुर्बल जातियोंकी चिरस्थायी

सुरक्षाका आयोजन करते हैं। हमारे देशमे भी धनिकों और पुरोहितोमे कुछ-कुछ ऐसा ही सम्बन्ध है। लेकिन धर्मका भेद यहाँपर अधिक है, राज-सहायता भी नही है, इसलिए "परस्पर भावयन्तः" वाला मामला देशव्यापी नही बन सका।

जिस ईसाई धर्मके साथ इतनी श्रीवृद्धि सम्बद्ध है उसीके नामसे ब्रिटेनका युद्धोत्तर आदर्श घोषित हो इसमे कोई आश्चर्य नही। लेकिन नये तौरसे उस आदर्शको थोपनेका कारण यह नही कि पहलेका आदर्श धर्म-विरोधी था, वह बात ही विदेशियोसे नही कही गयी, वह तो ब्रिटिश जातिकी आत्मतुष्टि-रक्षाके लिए कही गयी जिससे इस विपदके समय किसीके मनमे ग्लानि और वैराग्य न आये। इस आदर्शका आन्तरिक अर्थ है : जो उत्तम व्यवस्था उस दिन तक युरोप-एशिया-अफ्रीकामे चलती आयी है उसीको किञ्चित् शोधनसहित स्थायी बनाना। आदर्श धुएँमे लिपटा हुआ है, स्पष्ट रूपसे व्यक्त नही किया जा सकता, इसलिए एक पवित्र विशेषणकी आवश्यकता है। हमारे भी बहुत-से छोटे-छोटे आदर्श है : एक वाक्यमे, हमे रामराज्य चाहिए। विलासी-धनी लोग इससे समझते है कि उनकी जायदाद हिफाजतसे रहेगी, दार्जिलिङ्-शिमला-विलायत सुगम होंगे, हीरे-जवाहिरात रेशम-साटन और 'सर'-खिताब सुलभ होगे, गृहिणी पुत्र कन्या दो ही मोटरोंसे सन्तुष्ट रहेगे! अति निरीह मध्यमवर्गी सज्जन समझते है कि उनकी कमाई बरक़रार रहेगी, टैक्स नही बढेगा, दूकानदार सस्तेमे सामान देगा, नौकर कम तनख्वाहपर काम करेगा, लड़के-लडकियाँ गैरकानूनी काम या शादीसे पहले प्रेम नही करेंगे। ईसाई आदर्श या हम लोगोंका क्षुद्र आदर्श कितना ही प्रच्छन्न क्यों न हो उसका मतलब यही है कि जो कुछ है वह बना रहे तथा और अधिक सुविधाजनक हो। लेकिन हमारा एक बहुत बड़ा आदर्श और भी है—स्वतन्त्रता, जो अभूतपूर्व है।

ईसाई आदर्श जिनकी सहायतासे प्रतिष्ठित होगा उनमे रूस भी है। अभी उस दिन तक जो रूस आधा-दुश्मन था, बादको परम मित्र हुआ।

लेकिन राजनैतिक मित्रता और वेश्याका प्रेम एक ही प्रकारके है। जब आदर्श प्रतिष्ठित करनेका समय आयेगा तब यह साम्यवादी मित्र क्या कहेगा ? शायद कहेगा : ब्रिटेन अपना साम्राज्य लेकर जो खुशी हो करे, हम अपना देश पहले सँभालें। शायद ब्रिटेन उसी भरोसे अपने आदर्शके बारेमे निश्चिन्त है।

# भाषा और संकेत

भाषा एक नरम पदार्थ है। उसे हम खींच-खाँचकर, तोड़-मरोड़कर, सान-सूनकर विभिन्न प्रयोजनोंमें लगाते हैं। लेकिन ऐसी नरम वस्तुसे कोई पक्का काम नहीं हो पाता, बीच-बीचमें मज़बूत खम्भोंकी जरूरत होती है—वही परिभाषाका उद्भव होता है। परिभाषा सुदृढ़-सुनिर्दिष्ट शब्द है: उसमें अर्थका संकोच नहीं, प्रसार भी नहीं। आलंकारिककी भाषामें कहा जा सकता है: परिभाषामें अभिधा शक्ति है किन्तु व्यञ्जना तथा लक्षणाका उससे कोई सरोकार नहीं। परिभाषा मिलाकर भाषाको संहत न करनेपर वैज्ञानिक अपना वक्तव्य नहीं दे पाता।

लेकिन भाषा और परिभाषासे भी हर समय काम नहीं बनता। तब संकेतकी सहायता लेनी पड़ती है। जो लोग इमारत बनाते हैं वे वर्णनके द्वारा ही अपनी योजनाको नहीं समझा पाते, उन्हें नक्शा बनाना पड़ता है। वह नक्शा चित्र नहीं, बल्कि संकेतोंकी समष्टिमात्र है: पुरानी चुनाईके लिए पीला रंग, नयी चुनाईके लिए लाल, कंक्रीटके लिए चिल्ली-बिल्ली, मेहराबकी जगहपर सीधा निशान आदि। वस्तुके साथ नक्शेका परिमाप से साम्य है, लेकिन कोई खास समानता और नहीं है। अनुभवी व्यक्ति के लिए नक़्शा वस्तुकी प्रतिमाके समान है पर अनाड़ीके लिए वह बेमानी जैसा है; बल्कि चित्र देखकर या वर्णन पढ़कर वह थोड़ा-बहुत समझ भी सकता है।

गीतकी स्वरलिपि भी संकेतमात्र ही है। गाना सुननेसे जो सुख मिलता है वह स्वरलिपि पढ़नेसे सम्भव नहीं, परन्तु गीतका स्वर, ताल, मान, लय समझनेके लिए स्वरलिपिका प्रयोजन तो है ही।

एक व्यक्तिका उपलब्ध विषय दूसरे व्यक्तिको यथावत् समझानेका

सुप्रयोज्य संक्षिप्त और सहज उपाय संकेत ही है। संकेतका पूर्व-निर्धारित अर्थ जो जानता है उसके लिए निर्दिष्ट विषयके बारेमे धारणा बनाना बहुत आसान है, जिसमे ग़लती होनेकी कोई सम्भावना नही, अच्छा या बुरा लगनेकी भी बात नही, सिर्फ़ विषयका बोध होना होता है। संकेतका लेन-देन बुद्धिवृत्तिके साथ है, हृदयके साथ नही—हालाँकि नायक-नायिकाओके संकेतकी बात अलग है।

वैज्ञानिकोने बहुत प्रकारके संकेतोकी उद्भावना की है। वे आशा करते है कि ज्ञानेन्द्रियकी बहुत-सी उपलब्धियाँ समयपर संकेत-द्वारा व्यक्त की जा सकेंगी। एक दिन शायद गीतकी स्वरलिपिके समान रसलिपि, गन्ध-लिपि, स्पर्शलिपि भी उद्भावित होगी। उस समय हम अंगूरके रसका स्वाद, आमके बौरकी गन्ध और मलय-पवनका स्पर्श फ़ारमूलोंके द्वारा व्यक्त कर सकेंगे। शरद् ऋतुका आकाश ठीक किस प्रकार नीला है, समुद्र-कल्लोलमे कौन-कौन-सी ध्वनि कितनी मात्रामे है—यह भी चारखाने वाले काग़ज़पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओसे दिखायेंगे। अब जिस प्रकार जूता खरीदते समय कहते है : ८ नम्बर चाहिए, भविष्यमें उसी प्रकार क़लाक़न्द खरीदते समय कहेगे : मिठास ६, कड़ाई २। शायद सुन्दरीके रंगका बयान करते लिखेगे : दूध ३, महावर २, स्याही ५। उस समय भाषाकी अक्षमतासे वस्तु अपरंजित न होगी, जो सत्य है वही साकेतिक वर्णनके द्वारा बताया जायेगा।

कविका व्यापार क्या खत्म हो जायेगा? उसका कोई लक्षण नहीं देख रहा हूँ। भाषाकी जो शृंखला-शून्य नरमी हिसाबी लोगोंको हर पगपर परेशान करती है उसीपर कवि सम्पूर्ण रूपसे निर्भर है। वे वैज्ञानिककी तरह विश्लेषण नहीं करते, प्रत्यक्ष विषय यथावत् समझानेकी कोशिश नहीं करते। प्रत्यक्षके अलावा भी जो अनुभूतियाँ है, जो मनुष्यके सुख-दुःखसे उपजी हुई है और विज्ञान जिनके इर्द-गिर्द सिर पटक रहा है, उन अव्यक्त अनुभूतियोंको कवि भाषाके इन्द्रजाल-द्वारा पाठकके मनमे संचारित कर

सकता है। परिभाषा और संकेतसे कविका क्या बनेगा? वह भावोंका पिंजरा मात्र है।

आदिकविसे नारदने कहा है :

"सेइ सत्य या रचिबे तुमि,
घटे या ता सब सत्य नहे।—"

वही सत्य होगा जो तुम रचोगे, जो घटित होता वह सदा सत्य नही होता।

जो लोग ठोस सत्यके कारोबारी है वे भी अब सिर खुजलाते हुए सोच रहे हैं—होगा भी।

# रस और रुचि

ऋग्वेदके ऋषिने अर्धस्फुट भाषामे कहा, "कामस्तदग्रे समवर्ताधि—" पहले जो उदित हुआ वह है काम। उसके बाद नवरसकी तालिका बनाने जो हमारे आलंकारिक बैठे तो उन्होंने पहला स्थान कामरसको दिया। अन्त मे फ्रॉएडने अपने चेले-चपाटोके साथ आकर साफ़-साफ़ ही बता दिया कि मनुष्यका जो भी श्रेष्ठ सौन्दर्य-सर्जन है, जितनी भी कोमल मनोवृत्तियाँ है, उनमे-से बहुतोंके मूलमे कामकी ही बहुमुखी प्रेरणा है।

उस दिन एक मनस्तत्त्व-विषयक गोष्ठीमे एक लेख सुना था : रवीन्द्र-नाथकी कृतियोंका साइकोऐनैलिसिस। वक्ता महोदय परम आदरके साथ रवीन्द्र-साहित्यके हाड-मांस-चामकी चीड-फाड़ करके स्पष्ट कर रहे थे कि कविकी कविताओका मूल स्रोत कहाँ है। कवि अगर उस भैरवीचक्रमे उपस्थित रहते तो अवश्य मूर्च्छित हो जाते और मूर्च्छा समाप्त होनेके बाद भागकर किसी स्मृति–भूषणको पकड़ते और प्रायश्चित्तकी व्यवस्थाकी याचना करते।

कितनी भयानक बात है ! जो कुछ भी हमारी दृष्टिमे स्पृहणीय, वरेण्य तथा अत्यन्त उपभोग्य है उसके अधिकांशके मूलमे एक हीन रिपु है! फ्रॉएड के दलने काफ़ी लिहाज करके उसका नाम 'लिबिडो' रखा है, लेकिन है वह लालसाका ही एक विराट् रूप। और लालसा भी वह क्या सीधी-सादी है ! उसकी सौ-सौ जीभें सौ-सौ दिशाओंमे लपलपा रही हैं, वह देवताका भोग और गिद्धकी जूठन एक ही साथ चाटना चाहती है, उसे पात्र-अपात्र और समय-असमय तकका ज्ञान नही। क्या यही घृणित वृत्ति हमारे रसज्ञान की जननी है ? 'पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः'—सोचता था कि यह वाक्य भगवान्को खुश करनेके लिए अतिरञ्जित विनय-वचन मात्र

है। पर सचमुच हम लोग ऐसे उत्कट पापात्मा है, इसकी सुधि अबतक हमे न थी। विधाताने हमारे जन्मके साथ-ही-साथ हमे नरकस्थ किया है : हम लोगोंकी सुरुचि भी क्या और कुरुचि भी क्या !

षड्रिपुओंमें प्रथमकी ही इतनी धाक क्यों जमी ? काव्य-साहित्य, चौसठ कलाएँ, भक्ति-प्रेम : सभी कामज है—बहुत बढ़िया बात। लेकिन क्रोधसे क्या कोई अच्छी वस्तु नहीं मिलती ? गीताकारने काम-क्रोधको एकाकार कर दिया है, कहा है—"काम् एष, क्रोध एष"। लोभ-मोह आदि अन्य रिपु भी उनके मतसे शायद कामका ही रूपान्तर है। फ्रॉएडके शिष्य अगर गीताकी एक सरल टीका लिख मारें तो बडा अच्छा हो।

पर हमारे-जैसे अनाड़ियोंके मनमे एक दूसरा संशय उठ खड़ा होता है। वैदिक ऋषिसे लेकर फ्रॉएडवादियो तक सभीने शायद एक भूल की है : पहले काम है या पहले क्षुधा ? कहीं यह पाचक रस ही तो आदि-रस नही ? काम-कॅम्प्लेक्स जिस प्रकार नये-नये रूपोंमे उभर आता है, क्षुधा-कॅम्प्लेक्स मे भी क्या कोई ऐसी शक्ति नहीं ?

आधुनिक 'मनोज्ञ' गण कहते है : अतृप्ति या निग्रह ही कामका रूपान्तर है, और उसीका परिणाम है यह विचित्र मानव-चरित्र। भोजनकी भी अतृप्ति होती है; पर वह अतृप्ति इतनी तीव्र नही, इसीलिए मनुष्यके मनमे उसका प्रभाव बहुत कम है। यानी अनाहारसे विरहकी ही शक्ति अधिक है। यह ज़रूर कि 'विरह' शब्दका ज़रा व्यापक अर्थ ही लेना पड़ेगा। उचित, अनुचित, पवित्र, पाशविक, अस्वाभाविक—हर प्रकारकी अतृप्ति विरह है और वह मनसे अगोचर रहकर ही काम करती है।

ऐसी बात नही कि क्षुधा-कॅम्प्लेक्समे कुछ भी सर्जनकी शक्ति नही। सुना है कि पुराने जमानेमे लोग 'खाना' खानेके लिए अन्यधर्म ग्रहण कर लेते थे। हालाँकि वे दूसरोंके और अपने समक्ष आध्यात्मिक हेतु ही रखते थे। पँचकौड़ी वन्द्योपाध्याय महाशयने स्वीकार किया था कि उन्होने तुच्छ डबल रोटीके लालचमे कुछ दिनोके लिए सनातन समाजका वर्जन कर दिया

था। इस समयका भद्र हिन्दूधर्म बड़ा उदार है—कमसे-कम खाने-पहननेके मामलेमे; इसलिए लुब्ध रसनाके कारण मनमे धर्म-रसका सञ्चार अब नही होता। लेकिन विवाहमे जो बाधाएँ है वे अब भी समाज और उपन्यासोमे दुर्घटनाएँ संघटित कर रही है।

साहित्यमे भोजन-रसकी कोई धाक नहीं। कालिदासका यक्ष न सिर्फ विरही ही है बल्कि उपवासी भी। उसने अलकापुरीमे हर प्रकारके भोगका वर्णन किया है पर वहाँके बावर्चीखानेके बारेमे कुछ नही लिखा। रवीन्द्रनाथ भी इस रससे मुँह मोडे हुए है, पर वे इसके प्रभावको सम्पूर्णतया रद्द नहीं कर सके है। कमलापर गाज़ीपुर-यात्री चाचाजीका अचानक जो स्नेह उमडा उसके मूलमे कौन-सा कॅम्प्लेक्स था? चाचाकी उम्र काफी हो चुकी थी,पर भोजनके बारेमे वे उदासीन न थे। स्टीमरमे पकवानकी गन्ध पाकर वृद्ध लम्बी साँस खीचकर कह रहे हैं, "वाह क्या बढ़िया वास निकली है!" तरुण जिस तरह किसी अपरिचिता तरुणीकी मुसकान या खखार या छीक का अवलम्बन करके भावी दाम्पत्य-जीवनका स्वप्न गढ़ता है, यह वृद्ध भी वैसे ही कमलाके छौककी गन्धसे भावी पकवान-परम्पराकी कल्पना करके इस अनाथ लड़कीके स्नेह-बन्धनमे बँध गया था। फ्रॉएडके शिष्य अवश्य ही इसकी कोई दूसरी व्याख्या करेंगे पर हम कानोंमे उँगली डाले हुए है।

भोजनरस अब रहने दिया जाये, जो रस मनुष्यके मनमे सबसे प्रबल हो उसीकी बात शुरू की जाये। कामके परिवर्त्तनके हेतु यदि हमे प्रेम, भक्ति, स्नेह, कला, काव्य आदि अच्छी-अच्छी वस्तुएँ मिल गयी हों तो खेद किस बातका? रसग्राही भद्रजन फूल चाहता है, फल चाहता है; पेड़की जड़मे किस वस्तुकी खाद है इसकी खोज नहीं करता। नीरस वैज्ञानिक पेड़का मूल खोदकर देखे, खादकी व्यवस्था करे—हमे कोई एतराज नही। सड़े हुए जान्तव खादसे पेड़ सतेज होता है, यह एक सत्य है। लेकिन फूल-फलका उपभोग करते हों तब उस समय कोई भी खादका उल्लेख नही करता।

लेकिन बड़ी शर्मके साथ यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि केवल फूल-फलसे तृप्ति नही होती, पेड़के मूलमे जो जीवनदायक रस है उसका स्वाद लेनेकी कामना भी हम बीच-बीचमे करते हैं। सामाजिक जीवनमें जो घृणित या पीड़ादायक है, ऐसी बहुत-सी वस्तुएँ जब कुशल रस-स्रष्टाके हाथोमे पड़ जाती है तो हम उनका सादर उपभोग करते है। वरना शोक, दुःख, निर्दयता, लालसा, व्यभिचार आदिका वर्णन काव्य, कथा और चित्र मे स्थान ही न पाता।

असल बात यह है कि हमारी कितनी ही कामनाएँ विभिन्न कारणोसे हृदयके गुप्त कोनोंमे-को निर्वासित हुई और उनमे-से कुछ उच्चतर मनोवृत्तियोमे बदलकर बाहरको उभर आयी है। उनकी इसीमे सार्थकता है। ये मनोवृत्तियाँ समाजके लिए हितकारी है इसीलिए समाज बड़े यत्नपूर्वक उनका पोषण करता है और साहित्यादि कलाओंमे उनकी गणना उपादेयताओंकी सूचीमे होती है। लेकिन अन्य जिन सब कामनाओंमे रूपान्तर ग्रहण करनेकी शक्ति नहीं होती वे मिट्टी-तले दबी पड़ी होनेपर भी उभरने की कोशिश कर रही है। समाज कह रहा है, "ख़बरदार, अगर खिलना ही चाहती हो तो कमनीय वेशमे खिलो।" पर कुचली हुई कामना कह रही है, "छद्मवेशमे सुख नहीं, मैं अपने वास्तविक रूपमें ही प्रकट होना चाहती हूँ; मैं प्रस्तर-कारा तोड़ूँगी लेकिन करुणाका प्रवाह बहाना मेरा काम नहीं।" कुशल रस-स्रष्टा लोग स्नेहशील पिताकी नाईं उनसे कहते हैं, "बच्चो, चलो तुम्हे ज़रा बाहर धूपमे घुमा लायें, लेकिन ठीकसे कपड़ा-लत्ता पहनकर भद्रवेशमे चलो और कही धमा-चौकड़ी मत मचाना!" तृषित रसज्ञ उन्हे देखकर कहते है, "अहा, किनके बच्चे हो तुम लोग? कितने सुन्दर, पर कोई-कोई जरा नटखट-से लगते हो!" उनके स्रष्टा उन्हे समझा देते है, "ये तुम्हारे भी दुलारे है। डरो नहीं, शरारत ये कुछ न कर पायेंगे; मै इन्हे सँभालना जानता हूँ। इनमे जो सबसे ज़्यादा नटखट है उसकी मैं अन्तमे पिटन्नस करूँगा और उसे दुरुस्त कर दूँगा, जो कम

नटखट हैं उन्हे अनुतप्त रखूँगा, और जो किसी तरहसे भी न मानेगा उसे घने रहस्यके जालमें फँसाकर छोड़ दूँगा।" द्रष्टागणका दल खुश होकर कहता है, "वाह, यही तो आर्ट है !" लेकिन दो-एक अरसिक है जो इतनी सावधानीके बावजूद डरते हैं।

रस-स्रष्टाओंका एक दूसरा दल अपने आत्मजके प्रति अपरिमित रूपसे स्नेह-शील है। वह इन समस्त निग्रहकी मारी कामनाओंसे कहता है, "कैसी लाज, किसका डर ? इतने परिधान–पहनावेकी क्या जरूरत है, जाओ नगे ही रंग लगाकर नाच आओ !" कई लोलुप रसलिप्सु उनकी सादर आवभगत करते कहते है, "यही तो असल आर्ट है, आदि और चरम।" लेकिन संयमी द्रष्टा कहते है, "यह कभी आर्ट नहीं हो सकता, आर्टमे गन्दगी नहीं रह सकती; आर्ट अगर होता यह तो देखकर मनमे इतनी घृणा क्यों जाग पड़ती ?" समाजपति कहते है, "आर्ट-फ़ार्ट हम नही समझते; समाजका आदर्श हमे किसी तरह भी छोटा नहीं होने देना है। हमारे विधान सभी अच्छे है ऐसा हम नहीं कहते; मगर इनसे कोई उत्कृष्ट विधान दिखा सकते हो तो दिखाओ ! और यदि न दिखा सको तो आत्म-स्फूर्त्ति या 'सेल्फ-एक्सप्रेशन'की दुहाई देकर तुम हमारे समाजको उच्छृङ्खल बनाओ, हमारे लड़के-लड़कियोंको बिगाड़ो, यह नही हो सकता—हम है हो और पुलिस भी है।"

उक्त दोनों दलोंके रस-स्रष्टाओमे कोई सीमारेखा नही, सिर्फ़ मात्राभेद या संयमका तारतम्य है। शक्तिकी बात हम नही उठायेंगे क्योंकि दुर्बल शिल्पीके हाथोंमें स्वर्गका चित्रण भी बिगड जायेगा और गुणीके हाथोंमे नरक-वर्णन भी हृदयग्राही हो जाता है। किस सीमा-रेखापर सुरुचिका अन्त है और कुरुचिका आरम्भ यह भी निर्धारित नहीं हो सकता। एक युग और एक दल जिसे उत्तम आर्ट कहेगा, दूसरा युग और दूसरा दल उसीकी निन्दा करेगा, और समाज तो हमेशा ही आर्टके बारेमे अनधिकार चर्चा करता रहेगा।

विधाताकी रचना विश्व है और मनुष्यकी रचना आर्ट। विधाता एक है इसलिए उनकी सृष्टिमें नियमोंकी भरमार दिखती है। मनुष्य अनेक है इसलिए उनकी सृष्टियोंके बारेमे इतनी बकझक है। इसी सृष्टिका बीज मनुष्यके मनमे छिपा है, इसीलिए शायद पाश्चात्य मनोविद्का 'लिबिडो' और ऋषिप्रोक्त 'काम' है—

**कामस्तदग्रे समवर्त्ताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।**
**सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥**

( ऋग्वेद, १० म., १२९ सू. )

कामनाका उदय सबसे पहले हुआ, वही मनका प्रथम बीज थी। मनीषाकी शक्तिसे उभयके संयोगका भाव कैसे पैदा हुआ, असद्से सद्का प्रथम आविर्भाव कैसे हुआ, मनीषी और कविने अपने-अपने हृदयोंकी पर्यालोचना करनेके बाद ही इसका निरूपण किया। ( शैलेन्द्र कृष्ण लाहा-कृत अनुवाद )।

ऋषिने अवश्य ही विश्व-सर्जनकी बात कही होगी, इसलिए 'सद्' और 'असद्' शब्दोका आध्यात्मिक अर्थ ही लेना पड़ेगा। लेकिन सद्-असद्का हिन्दी अर्थ लेनेपर यह सूक्त आर्टपर भी प्रयोज्य हो जाता है। फ्रॉएडवादियोके सिद्धान्तके अनुसार असद् वस्तु कामसे सद् वस्तु आर्टकी उत्पत्ति हुई है। मनीषी कवि स्वयं अपने हृदयकी पर्यालोचना करके शायद अन्तरतममें आर्टके स्वरूपकी उपलब्धि कर सके है। लेकिन साधारण जनता की उपलब्धि अभी धुँधली है। क्या आर्ट है और क्या आर्ट नही है—इसका निरूपण विज्ञान आज भी नही कर सका है, अतः सुरुचि-कुरुचि, सुनीति-दुर्नीतिका विवाद फ़िलहाल चलता ही रहेगा। अगर किसी समय आर्टका लक्षण निर्धारित हो भी जाये तो समाजको शंका दूर होगी या नहीं इसमें सन्देह है।

रस क्या है यह हम समझते है पर समझा नही पाते। आर्टका प्रधान उपादान रस है लेकिन उसके अन्य अंग भी है, इसलिए आर्ट और भी

पेचीदा चीज बन जाती है। चीनी शुद्ध रसवस्तु है किन्तु निरी चीनी तुच्छ आर्ट है। चीनीके साथ अन्य रस-वस्तुओंका कुशल मिश्रन ही आर्ट है लेकिन सब जितने उपादान हम अपने आस-पास पाते हैं वे सभी अखण्ड रसवस्तु नहीं। उनमें थोड़ी-बहुत अनावश्यक मिलावट भी है। चुनावके दोषसे या मात्राज्ञानकी कमीसे अतिरिक्त अनावश्यक उपादान आ पड़ता है और फलतः अभीष्ट स्वादसे अवांछित स्वाद जन्म ले लेता है। और इस सबके साथ भोक्ताका पूर्व-अभ्यास, वातावरण, व्यक्तिगत राग-द्वेष भी तो है। इतनी विघ्न-बाधाओंको पार कर भोक्ताकी रुचि गढ़कर कल्याणका विरोधी बने बगैर जिसका सर्जन स्थायी होगा वही श्रेष्ठ स्रष्टा है।

# भारतीय ज्ञानोपठ
# काशी

उद्देश्य

ज्ञानका विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण

●

संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

●

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी ५